इस पुस्तक छपानेमें जिन महानुभावोंने साहाय-
ता दी है उनोंका यह संस्था सहर्ष उपकार मा-
नती है और धन्यवाद देती है।

---

१००) शा. हीराचन्दजी फूलचन्दजी कोचर—मु० फलोधी.
१००) मुताजी गीशुलालजी चन्दन मलजी—मु० पीसांगण.
८४१) सं. १९७९ के सुपनों कि आवादांनी का.

शेष खरचा श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला ऑफीस फ-
लोधीसे दीया गया है.

भावनगर—श्री आनंद प्रिन्टींग प्रेसमा शाह गुलाबचंद लल्लुभाइए
छाप्युं

प्रस्तावना।

प्यारे पाठक वृन्द !

इस आरापार ससारके अन्दर परिभ्रमन करते हुवे जीवोको शास्त्रकारोने मनुष्यजन्मादि अच्छी सामग्री मीलना अति दुर्लभ बतलाया है अगर कभी पूर्व पुन्योदयसे मील भी जावे तो आत्मकल्याण करना बहुतही दुष्कर है क्यो कि आत्मा निमित्तवासी है। जीवात्माको जेसा जेसा निमित्त मीलता है वेसी वेसी प्रवृत्ति हुवा करती है इस वास्ते आत्मकल्याणी पुरुषोंको सदेवके लिये शुद्ध निमित्त-कारणकी ही गवेषणा करना चाहिये

मोक्षमार्ग साधनेके लिये भी शास्त्रकारोंने प्रथम खास अच्छे निमित्त-कारणकी आवश्यक्ता बतलाइ है इसके लिये पूर्व महा ऋषियोने बहुतसे साधन और उपाय बतलाये है, जेसे सत्सग, ज्ञानाभ्यास, ज्ञानमय पुस्तकोका पठन-पाठन, सिद्धान्तश्रवण, सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध, प्रभुपूजा, प्रभावना, दान, शील, तप, भावना इत्यादि इनके अलावा महात्माओने पूर्ण परिश्रम द्वारा अनेक अपूर्व और परम उपयोगी ग्रन्थ बनाके जनसमाजपर बडाही उपकार किया है। परन्तु वे ग्रन्थ प्राय सस्कृत-प्राकृत भाषाके होनेसे साधारण समाजको उस ग्रन्थोका पूर्ण लाभ नही मिल सक्ता है। कारण आजकाल लोगोका ख्याल प्रचलित भाषाकी ओर विशेष है. वास्ते समयानुसार प्रचलित भाषाओके ग्रन्थकी अत्यावश्यक्ता है अगर एक ग्रन्थ एसा

चानके साथ बारह व्रत ग्रहन करना और १२४ अतिचारका संक्षिप्तमें अच्छा खुलासा किया गया है

जीवोके साथ कभी सुमति कभी कुमति आया करती है तथा यह जीव मोहराजाकी पासमें बन्धा हुवा चौरासीके अन्दर विविध प्रकारका नाटक कर रहा है इसका प्रदर्शन कक्काबत्तीसी द्वारा कराया है जिस्में नय, निक्षेप प्रमाण, स्याद्वाद, सप्तभगी आदिका खुलासा करते हुवे मोहराजापर विजयका रस्ता बतलाया है

जैन मुनि कैसे होने चाहिये और कितनी योग्यता हो तथा कहांतक परिक्षामे पास हुवे हो तो दीक्षा देना, इसको भी सविस्तारमे दरसाया गया है

यह लघु ग्रन्थ साधारण जनको ही उपयोगी नही परन्तु व्याख्यानदाता वक्तावोको भी पूर्ण साहितारूप है क्यो कि इसके अन्दर व्याख्याविलास सस्कृत, प्राकृत और हिन्दी भाषाके अन्दर बडी मनोरजक और असर करनेवाली कवितावोका भी समावेश किया गया है

वर्तमान समाजका दिग्दर्शन करानेके लिये एक वीनतीशतकने भी इस लघु ग्रन्थमे महत्वका स्थान रोक रखा है यह भी अवश्य पढने योग्य है

मूर्ति और दयादान नही माननेवाले ढुढीयो और तेरापन्थीयोका जन्म किस किस कारणसे कोनसे कोनसे समयमे हुवा है, वह मनो-रजक दृश्य कविताद्वारा बतलाया है. उक्त मतवालोकी कितनीक क्रिया

विषयानुक्रमणिका.

शीघ्रबोध भाग १७ वां

श्री मदुपकेशगच्छीय–

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज।

जन्म सं १९३७। दीक्षा सं १९६२।

(१) विषयानुक्रमणिका.

—— ० ——

(२४) प्रतिक्रमण सूत्र.

(३) जैननियमावली.

(४) सुबोधनियमावली

(५) ८४ आशातना.

(६) जिनस्तुति

(७) प्रभुपूजा.

(८) तीर्थयात्रा

(९) जैन दीक्षा

(२) श्री कप्पवडिसिया सूत्र.

(३) श्री पुप्फिया सूत्र.

(२४) पट्टावली.

१९] श्री शीघ्रबोध भाग १९ वां.

(१) श्री वृहत्कल्पसूत्र

अथ श्री

प्रतिक्रमण मूल सूत्रम्।

नमस्कार, इर्यावहि, तस्सोत्तरी, अन्नत्थ, लोगस्स, सामायिक लेना, पारना, चैत्यवन्दनो, स्थुइयो, स्तवनो, सझायो आदि सूत्रों इसी पुस्तकके प्रारभमें लिखा गया है। कण्ठस्थ करनेवाले भाइ इसी पुस्तकसे कर सक्ते है वास्ते वह सूत्र यहां नहीं लिखा है। यहांपर मात्र प्रतिक्रमणके शेष मूल सूत्र ही लिखा जावेगा। जो कि कण्ठस्थ करनेवाले सुभितेके साथ कर सके। सार्थ और सहेतु प्रतिक्रमण अन्य पुस्तक द्वारा प्रकाशित किया जायगा।

॥ प्रतिक्रमणकी आदिमें देववन्दन ॥

इरियावहि पडिकमके चैत्यवन्दनसे नमुथ्थुणं तक कहेना देखो पृष्ट ३ से बादमें अरिहंत चेइआणंका पाठ—

अरिहंत चेइआणं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तिआए पूअणवत्तिआए सकारवत्तिआए सम्माणवत्तिआए बोहिलाभवत्तिआए निरूवसग्गवत्तिआए सद्धाए मेहाए धीइए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं। अन्नत्थ०। एक नवकारका काउस्सग्ग करके एक थुई बोलना, देखो पृष्ट १७ से

[२०] श्री शीघ्रबोध भाग २० वां.

(१) श्री दशाश्रुतस्कन्ध छेद सूत्र.

२१] श्री शीघ्रबोध भाग २१ वा.

(१) श्री व्यवहार छेद सूत्र.

उज्जिंत सेले सिहरे । दिक्खा नाणं निसीहिआ जस्स ॥ तं धम्मचक्कवट्टिं । अरिट्ठनेमिं नमंसामि ॥ ४॥ चत्तारि अठ दस दो य । वंदिया जिणवरा चउव्वीसं ॥ परमठ निठिअठा । सिद्धा-सिद्धि ममदिसंतु ॥ ५ ॥

॥ अथ वेयावच्चगराणं ॥

वेयावच्चगराणं सतिगराणं । सम्मदिठि समाहिगराणं ॥ करेमि काउस्सग्ग । अन्नथ० यावत् एक थुइ कहके नमु-त्थुणं कहना ।

॥ अथ भगवानादि वंदनं ॥

भगवान् हं, आचार्य हं, उपाध्याय हं, सर्व साधु हं ॥इति॥

॥ अथ देवसिअ पडिक्कमणे ठाउं ॥

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् । देवसिअ पडिक्कमणे ठाउं ॥ 'इच्छं' सव्वस्सवि देवसिअ दुच्चितिअ । दुब्भासिअ दुच्चिठिअ ॥ तस्स मिच्छामि दुक्कडं । बाद करेमिभंते कहके-

॥ इच्छामि ठामि काउस्सग्गं ॥

इच्छामि ठामि काउस्सग्गं । जो मे देवसिओ अइआरो कओ ॥ काइओ वाइओ माणसिओ उस्सुत्तो उमग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ । दुव्विचिंतिओ अणायारो अणिच्छिअव्वो असावग पाउग्गो । नाणे दंसणे चारित्ताचरित्ते । सुए सामाइए तिण्हं गुत्तीणं चउण्हं कसायाणं । पंचण्हमणुव्वयाणं । ति-

[२२] श्री शीघ्रबोध भाग २२ वां.

(१) श्री लघु निशिथसूत्र (छेद)

॥ सुगुरुने वांदणा ॥

इच्छामि खमासमणो । वंदिउं जावणिज्जाए । निसी-हिआए । अणुजाणह मे मिउग्गहं निसीहि। अहो कायं काय-संफासं । खमणिज्जो भे किलामो । अप्पकिलंताणं वहुसुभेण भे । दिवसो वइक्कंतो जत्ता भे जवणि ज्जंच भे खामेमि खमा-समणो । देवसिअं वइक्कमं आवसिआए । पडिक्कमामि खमा-समणाणं। देवसिआए आसायणाए । तित्तीसन्नयराए जंकिंचि मिच्छाए । मण दुकडाए, वय दुकडाए काय दुकडाए, कोहाए, माणाए, मायाए, लोभाए, सव्व कालिआए । सव्व मिच्छोवयाराए । सव्व धम्माइक्कमणाए । आसायणाए जो मे अइआरो कओ । तस्स खमासमणो पडिक्कमामि । निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि ॥ १ ॥ दुजीवारके वांदणे 'आवसिआए' ए पद नहीं कहेना ।

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्। देवसिअं आलोउं 'इच्छं' आलोएमि जोमे देवसिओ० ॥

॥ अथ सात लाख ॥

सात लाख पृथिवीकाय । सात लाख अप्पकाय । सात लाख तेउकाय । सात लाख वाउकाय । दशलाख प्रत्येक वनस्पतिकाय । चउद लाख साधारण वनस्पतिकाय । बे लाख बेंद्री, बे लाख तेंद्री, बे लाख चौरिंद्री, चार लाख

सहर्ष निवेदन.

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला ऑफीस फलोदीसे आज स्वल्प समय में ७० पुष्पोंद्वारा १४०००० पुस्तके प्रकाशित हो चुकि है जिस्में जैन सिद्धान्तोंका तत्त्वज्ञान संक्षिप्त सुगमतासे समजाया गया है वह साधारण मनुष्य भी सुख पूर्वक लाभ उठा सक्ते है पाठक वर्ग एकदफे मंगवाके अवश्य लाभ लेंगें.

पुस्तक मीलनेका ठीकाना.

मेनेजर—

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला.

मु:—फलोधी-(मारवाड)

॥ अथ श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र ॥

[वंदिता सूत्र]

वंदित्तु सव्व सिद्धे । धम्मायारिए अ सव्व साहू अ ॥ इच्छामि पडिक्कमि ओ । सावग धम्माइआरस्स ॥ १ ॥ जो मे वयाइआरो । नाणे तह दंसणे चरित्ते अ ॥ सुहुमो अ बायरो वा । तं निंदे तं च गरिहामि ॥ २ ॥ दुविहे परिग्गहंमि । सावज्जे बहुविहे अ आरंभे ॥ कारावणे अ करणे । पडिक्कमे देवसिअं सव्वं ॥ ३ ॥ जं बद्ध मिंदिएहिं । चउहिं कसाएहिं अप्पसत्थेहिं ॥ रागेणव दोसेणव । तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ४ ॥ आगमणे निग्गमणे । ठाणे चंकमणे अणाभोगे ॥ अभिओगे अ निओगे ॥ पडिक्कमे० ॥ ५ ॥ संका कंख विगिच्छा । पसंस तह संथवो कुलिंगीसु ॥ सम्मत्तस्सइआरे । पडिक्कमे० ॥ ६ ॥ छक्काय समारंभे । पयणे अ पयावणे अ जे दोसा ॥ अत्तट्ठा य परट्ठा । उभयट्ठा चेव तं निंदे ॥७॥ पंचण्ह मणुव्वयाणं । गुणव्वयाणं च तिण्ह मइयारे ॥ सिक्खाणं च चउण्हं ॥ पडिक्कमे० ॥८॥ पढमे अणुव्वयंमि । थूलग पाणाइवाय विरइओ ॥ आयरिअ मप्पसत्थे । इत्थ पमाय प्पसंगेणं ॥ ९ ॥ वह बंध छविच्छेए । अइभारे भत्तपाण वुच्छेए ॥ पढम वयस्सइआरे ॥ पडिक्कमे० ॥ १० ॥ बीए अणुव्वयंमि । परिथूलग अलिअ वयण विरईओ ॥ आयरिय मप्पसत्थे । इत्थ पमाय प्पसंगेणं ॥ ११ ॥ सहसा रहस्स दारे । मोसुवएसे अ कूडलेहेअ ॥

परम योगिराज—

मुनि श्री रत्नविजयजी महाराज.

आभरणे ॥ पडिक्कम० ॥ २५ ॥ कंदप्पे कुक्कूइए। मोहरि अहिग-
रण भोग अइरित्ते ॥ दंडंमि अणट्ठाए। तइअंमि गुणव्वए
निंदे ॥ २६ ॥ तिविहे दुप्पणिहाणे। अणवट्ठाणे तहा सइ
विहूणे ॥ सामाइअ वितह कए। पढमे सिखावए निंदे ॥२७।
आणवणे पेसवणे, सद्दे रूवे अ पुग्गलक्खेवे॥ देसावगासिअंमि।
बीए सिक्खावए निंदे ॥ २८ ॥ संथारुच्चार विही। पमाय तह
चेव भोअणाभोए ॥ पोसह विहि विवरीए। तइए सिक्खावए
निंदे ॥ २९ ॥ सच्चित्ते निक्खिवणे। पिहिणे ववएस मच्छरे
चेव ॥ कालाइक्कम दाणे। चउत्थे सिक्खावए निंदे ॥ ३० ॥
सुहिएसु अ दुहिएसु अ। जा मे असंजएसु अणुकंपा ॥ रागे-
णव दोसेणव। तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ३१ ॥ साहूसु
संविभागो। न कओ तव चरण करण जुत्तेसु ॥ संते फासुअ
दाणे। तं निंदे तं च गरिहामि ॥ ३२ ॥ इहलोए परलोए।
जीविअ मरणे अ आसंस पओगे ॥ पंचविहो अइआरो। मा
मज्झ हुज्ज मरणंते ॥ ३३ ॥ काएण काइअस्स। पडिक्कमे वाइ-
अस्स वायाए॥ मणसा माणसिअस्स। सव्वस्स वयाइआरस्स
॥ वंदण वय सिक्खा गारवेसु। सन्ना कसाय दंडेसु ॥ गुत्तीसु
अ समिईसु अ। जो अइआरो अ तं निंदे ॥ ३५ ॥ सम्मद्दिठी
जीवो। जइवि हु पावं समायरे किंचि ॥ अप्पोसि होइ बंधो ॥
जेण न निद्धंधसं कुणइ ॥ ३६ ॥ तंपि हु सपडिक्कमणं। सप्प-
रिआवं सउत्तरगुणं च ॥ खिप्पं उवसामेई। वाहिव्व सुसि-

गुणोंमें मुग्ध हो ये पुष्प आपके आगे रखनेकी उत्कट इच्छा इस दासको हुई है.

मेरे हृदयमंदिरके देव ! आपने अति प्राचीन श्रीरत्नप्रभसूरीश्वर स्थापीत उपकेश पट्टनस्थ (ओशीयामें) महावीर प्रभुके मंदिरके जीर्णोद्धारमें अपूर्व सहाय कर जैनबालाश्रम स्थापीत कर जैनागमोंका संग्रहीत ज्ञानभंडार कर मरूभूमीमें अलभ्यलाभ कायम कर जैनजातिकी सेवा कर अपूर्व नाम कर गए. इन कारणोसे लालायीत हो ये आगम-पुष्प आपके सन्मुख रखूं तो मेरी कोई अधीकता नहीं है.

भव्योद्धारक ! इस दासपर आपकी असीम कृपा हुई है इससे यह दास आपका कभी उपकार नहीं भूल सकता. मुझे आपने मिथ्याजालमेंसे छूडाया है, सन्मार्ग बताया है, ढूढकोंके व्यामोहसे दृष्टि हटा कर ज्ञानदान दिया है, साध्वाचारमें स्थिर किया है. यह सब आपका ही प्रताप है. इस अहसानको मानकर इन बारे सूत्रोंका हिन्दी अनुवादरूपी पुष्पोको आपकी अनुपस्थितिमें समर्पण करता हूं. इसे सूक्ष्म ज्ञानद्वारा स्वीकार करीएगा. यही हार्दिक प्रार्थना है किमधिकम्.

आपश्रीके चरणकमलोंका दास

मुनि ज्ञानसुन्दर.

जीवा खमंतु मे। मित्तीमे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणइ ॥४६॥ एव महं आलोइअ। निंदिअ गरहिअ दुगंछिअ सम्मं॥ तिविहेण पडिकंतो । वंदामिजिणे चउव्वीसं ॥ ५० ॥ दोय वन्दना देना। अब्भुट्ठिओ खमायके। दो वन्दना।

॥ अथ आयरिअ उवझाए ॥

आयरिअ उवझाए। सीसे साहम्मिए कुल गणेअ॥ जे मे केइ कसाया। सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ १ ॥ सव्वस्स समण संघस्स। भगवओ अंजलि करिअ सीसे॥ सव्वं खमावइत्ता। खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ २ ॥ सव्वस्स जीव रासिस्स। भावओ धम्म निहिअ निअचित्तो॥ सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥३॥ बादमें करेमिभंते० इच्छामिठामि० तस्सोत्तरी० अन्नत्थ० दो लोगस्सका काउस्सग्ग० एक लोगस्स प्रगट, सव्वलोए अरिहंत चेइआणं यावत् एक लोगस्सका काउस्सग्ग०। पुक्खर० यावत् एक लोगस्सका काउ०। सिद्धाणं बुद्धाणं के बादमें—श्रुतदेवताका एक नवकारका काउस्सग्ग करके स्तुति—

वाग्देवी वरदेवी भूता, पुस्तीका पद्म लिख्यतु।
आपो न्या वि व्रजेस्तु, पुस्तीका पद्म लिख्यतु॥

बादमें वैरोट्यादेवीका एक नवकारका काउ० स्तुति।

सामानगास्ति पुत्राभो, वैरोट्यारंभयेत्रतु।
शान्तो रात्रिर्जाति य ग्रहं। वैरोट्यारंभयेवतु ॥ १ ॥

हे करूणासिन्धु ! आपश्रीने इस फलोधी नगरपर ही नहीं किन्तु अपने पूर्ण परिश्रम द्वारा जैन सिद्धान्तोंके तत्वज्ञानमय ७५००० पुस्तकें प्रकाशित करवाके अखिल भारतवासी जैन समाज पर बडा भारी उपकार किया है. यह आपश्रीका परम उपकाररुपी चित्र मदैवके लिये हमारे अन्त.करणमें स्मरणीय है।

हे स्वामिन् ! फलोधीसे गत वर्षमें जैसलमेरका सघ निकला, उसमें भी आप सरीखे अतिशयधारी मुनिमहाराजोंकि पधारनेमे जैन शासनकी अवर्णनीय उन्नति हुइ, जो कि फलोधी वसनेके बाद यह सुअवसर हम लोगोंको अपूर्व ही मीला था।

हे दयाल ! आपश्रीकी कृपासे यहाके श्रावकवर्ग भगवानकी भक्तिके लिये समवसरणकी रचना, अष्टाइमहोत्सव, नित्य नवी २ पूजा भणवाके ,वरघोडा और स्वामिवात्सल्यादि शुभ कार्योमें अपनी चल लक्ष्मीका सदुपयोगसे धर्मजागृति कर शासनोन्नतिका लाभ लिया है वह सव आपश्रीके विराजनेका ही प्रभाव है।

आपश्रीके विराजनेसे ज्ञानद्रव्य, देवद्रव्य, जिर्णोद्धारके चन्दे आदि अनेक शुभ कार्योका लाभ हम लोगोको मीला है।

अधिक हर्षका विषय यह है कि यहापर कितनेक धर्मद्वेषी नास्तिक शिरोमणि धर्मकार्योमें विघ्न करनेवालोको भी आपश्रीके जरिये अच्छा प्रतिबोध (नशियत) हुवा है, आशा है कि अव वह लोग धर्मविघ्न न करेंगे।

अन्तमें यह फलोधी श्रीसंघ आपश्रीका अन्तःकरणसे परमो-

पावंति न दुक्ख दोगच्चं ॥ ३ ॥ तुह सम्मत्ते लद्धे । चिंतामणि कप्पपायवब्भहिए ॥ पावंति अविग्घेणं । जीवा अयरामरं ठाणं ॥ ४ ॥ इअ संथुओ महायस । भत्तिब्भर निब्भरेण हिअएण ॥ ता देव दिज्ज बोहिं । भवे भवे पास जिणचंद ॥

॥ अथ श्री वरकनक ॥

वर कनक शंख विद्रुम । मरकत घन सन्निभं विगत मोहं । सप्तति शतं जिनानां । सर्वामर पूजितं वन्दे ॥ १ ॥

भगवानादि च्यारको नमस्कार करके ।

॥ अथ अड्ढाइज्जेसु=मुनिवंदन ॥

अड्ढाइज्जेसु दीव समुद्देसु । पन्नरससु कम्म भूमिसु ॥ जावंत केवि साहू । रयहरण गुच्छ पडिग्गह धारा ॥ पंच महव्वयधारा । अठारस सहस्स सीलंग धारा ॥ १ ॥ अखुयायार चरित्ता । ते सव्वे सिरसा मणसा । मत्थएण वंदामि ॥ २ ॥ बादमें देवसि पायच्छित विशुद्धार्थं च्यार लोगस्सका काउस्सग्ग करके एक लोगस्स प्रगट कहेना बादमें—

श्रीमदुपकेश गच्छ श्रृंगारहार भट्टारक दादाजी श्रीरत्नप्रभसूरिजी महाराज चारित्र चुडामणि आराधवा निमित्त काउस्सग्ग करुं ? 'इच्छं' करेमि काउस्सग्गं० च्यार लोगस्सका काउ० एक लोगस्स प्रगट कहके सभायका आदेश लेके सभाय कहेना सभाय इसी पुस्तकमें लिखी है देखो पृष्ट ४१४ । बादमें—

दुक्खक्खओ कम्मखओ निमित्त च्यार लोगस्सका काउ-

तानां । शांतिनतानां च जगति जनतानां ॥ श्रीसंपत्कीर्ति यशो । वर्द्धनि जयदेवि विजयस्व ॥ ११ ॥ सलिलानल विष विषधर । दुष्टग्रह राज रोग रणभयतः ॥ राक्षस रिपुगण मारी । चौरेति श्वापदादिभ्यः ॥ १२ ॥ अथ रक्ष रक्ष सुशिवं । कुरु कुरु शांतिं च कुरु कुरु सदेति ॥ तुष्टिं कुरु कुरु पुष्टिं । कुरु कुरु स्वस्तिं च कुरु कुरु त्वं ॥ १३ ॥ भगवति गुणवति शिव-शांति । तुष्टि पुष्टि स्वस्तीह कुरुकुरु जनानां ॥ ओमिति नमो नमो ह्राँ ह्रीं ह्रूँ ह्रः । यःक्षः ह्री फुट फुट् स्वाहा ॥ १४ ॥ एवं यन्नामाक्षर । पुरस्सरं संस्तुता जयादेवी ॥ कुरुते शांतिं नमतां । नमो नमः शांतये तस्मै ॥१५॥ इति पूर्वसूरि दर्शित । मंत्रपद विदर्भितः स्तवः शांतेः ॥ सलिलादि भय विनाशी । शांत्यादिकरश्च भक्तिमतां ॥ १६ ॥ यश्चैनं पठति सदा । शृणोति भावयति वा यथायोग्यं ॥ सहि शांतिपदं यायात् । सूरिः श्रीमानदेवश्च ॥ १७ ॥ उपसर्गाः क्षयं यांति । छिद्यंते विघ्नवल्लयः ॥ मनः प्रसन्नतामेति । पूज्यमाने जिनेश्वरे ॥१८॥ सर्व मंगल मांगल्यं । सर्व कल्याण कारणं ॥ प्रधानं सर्व-धर्माणां । जैनं जयतिशासनं ॥ १९ ॥ एक लोगस्स प्रगट कहके इरियावहि करना बादमें —

॥ अथ चउक्कसाय ॥

चउक्कसाय पडिमल्लुल्लूरणु । दुज्जय मयण बाण मुसुमूरणु ॥ सरस पिअंगु वन्नु गयगामिओ । जयउ पासु भुवण-

भावनगर—श्री ' आनंद प्रीन्टींग प्रेस ' मां

शा. गुलाबचंद लल्लुभाईए छाप्युं.

जिण, जयउ वीर सच्चउरि मंडण ॥ भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय। मुहरि पास दुह दुरिअ खंडण ॥ अवर विदेहिं तित्थयरा। चिहुं दिसि विदिसि जिं केवि ॥ तीआणागय संपइअ। वंदु जिण सव्वेवि ॥ ३ ॥ सत्ताणवइ सहस्सा। लक्खा छप्पन्न अट्ठकोडीओ ॥ बत्तीस बासिआइं। तिअलोए चेइए वंदे ॥४॥ पनरस्स कोडि सयाइं। कोडि बायाल लक्ख अडवन्ना ॥ छत्तीस सहस असिआइं। सासयबिंबाइं पणमामि ॥ ५ ॥

जं किंचि नाम तित्थं। सग्गे पायालि माणुसे लोए ॥ जाइं जिणबिंबाइं। ताइं सव्वाइं वंदामि ॥ १ ॥ यावत् जयवीयराय तक कहना। बादमें भगवानादिको च्यारों नमस्कार कर आदेशपूर्वक सभाय करना सो—

भरहेसर बाहुबली। अभयकुमारो अ ढंढण कुमारो ॥ सिरिओ अणिआउत्तो। अइमुत्तो नागदत्तो अ ॥ १ ॥ मेअज्ज थूलिभद्दो। वयररिसि नंदिसेण सीहगिरी ॥ कयवन्नो अ सुकोसल। पुंडरिओ केसि करकंडू ॥२॥ हल्ल विहल्ल सुदंसण। साल महासाल सालिभद्दो अ ॥ भद्दो दसन्नभद्दो। पसन्नचंदोअ जसभद्दो ॥३॥ जंबुपहु वंकचूलो। गयसुकुमालो अवंति सुकुमालो ॥ धन्नो इलाइपुत्तो। चिलाइपुत्तो अ बाहुमुणी ॥४॥ अज्ज गिरि अज्जरक्खिअ। अज्जसुहत्थी उदायगो मणगो ॥ कालय सूरी संबो। पज्जुन्नो मूलदेवो अ ॥५॥ पभवो विण्हुकुमारो। अद्दकुमारो दढप्पहारी अ ॥ सिज्जस कूरगड्डू अ। सिज्जंभव मेहकुमारो अ ॥ ६ ॥ एमाइ महासत्ता। दिंतु सुहं गुणगणेहिं

एक नगर था। उस नगरके बाहिरी भागमें अनेक जातिके वृक्ष पुष्प और लताओंसे अति शोभनीय दुतीपलास नामका उद्यान (बगीचा) था। और वहां अनेक शत्रुओंको अपनी भुजाओंके बलसे पराजय करके प्रजाको न्याय युक्त पालन करता हुआ जय शत्रु नामका राजा उस नगरमें राज्य करता था। और वहां आनंद नामका एक गाथापति रहता था। जिसको सिवानंदा नामकी भार्या थी वह बडा ही धनाढय और नीती पूर्वक प्रवृत्ति करके न्यायोपार्जित द्रव्य और धन धान्य करके युक्त था। जिसके घर चार करोड सोनैया धरतीमें गडे हुवेथे। चार करोड सोनैयाका गहना आदि ग्रह सामग्री थी। और चार करोड सोनैये वाणिज्य व्यापारमें लगे हुवे थे। और दश हजार गायोंका एक वर्ग होता है ऐसे चार वर्ग याने ४०००० गायेंथी। इसके सिवाय अनेक प्रकारकी सामग्री करके समृद्ध और राजा, शेठ, सेनापती आदिको बडा माननीय और प्रशंसनीय, गुप्त और रहस्यकी बातोंमें नेक सलाहका देनेवाला, व्यापारियोंमें अग्रेसर था। हमेशां आनंद, त्रिजसे अपनी प्राणप्रिया सुशीला सिवानंदाके साथ उचित भोग-विलास व ऐश्वर्य सुखोंको भोगवता हुवा रहता था। उस नगरके बाहिरी भागमें एक कोलाक नामका सन्नीवेश (मोहल्ला) था। वहांपर आनन्द गाथापतीके सज्जन संबधी लोक रहते थे। वेभी बडे ही धनाढय थे।

एक समय भगवान त्रैलोक्य पूजनीय वीर प्रभु अपने शिष्यवर्ग-परिवार सहित पृथ्वी मंडलको पवित्र करते हुवे, वाणीयग्राम नगरके दुतीपलास नामके उद्यानमें पधारे।

यह खबर नगरमें होते ही जहां दो, तीन, चार या बहुतसे रस्ते एकत्रित होते है। ऐसे स्थानोपर बहुतसे लोक आपसमें स-

लोगस्स प्रगट कहे । छठा आवश्यककी मुहपत्ति प्रतिलेखन करना, दोय वन्दना देना। बादमें सकलतीर्थ स्तव कहेना सो–

सकल तीर्थ वंदु करजोड। जिनवर नामे मंगल कोड ॥ पहिले स्वर्गे लाख बत्रीस । जिनवर चैत्य नमुं निशदिश ॥१॥ बीजे लाख अठावीस कह्यां । त्रीजे बार लाख सद्दह्यां ॥ चोथे स्वर्गे अडलख धार । पांचमे वंदु लाखज चार ॥ २ ॥ छठे स्वर्गे सहस पचास । सातमे चालिश सहस प्रासाद ॥ आठमे स्वर्गे छ हजार । नव दशमें वंदु शत चार ॥ ३ ॥ अग्यार बारमें त्रणशें सार । नवग्रैवेके त्रणशें अढार ॥ पांच अनुत्तर सर्वे मळी । लाख चोराशी अधिका वळी ॥ ४ ॥ सहस सत्ताणुं त्रेविश सार । जिनवर भुवन तणो अधिकार ॥ लांबा सो जोजन विस्तार । पचास उंचां बहुंतेर धार ॥ ५ ॥ एकसो एंशी बिंब प्रमाण । सभा सहित एक चैत्ये जाण ॥ सो कोड बावन कोड संभाल । लाख चोराणुं सहस चौंआल ॥ ६ ॥ सातशें उपर साठ विशाल । सवि बिंब प्रणमुं त्रण्य काल ॥ सात कोडने बहुंतेर लाख । भुवनपतिमां देवल भाख ॥ ७ ॥ एकसो एंशी बिंब प्रमाण । एक एक चैत्ये संख्या जाण ॥ तेरशें कोड नेव्याशी कोड । साठ लाख वंदुं करजोड ॥ ८ ॥ बत्रीशेंने ओगणसाठ । तीर्च्छा लोकमां चैत्यनो पाठ ॥ त्रण्य लाख एकाणुं हजार । त्रणशे वीश ते बिंब जुहार ॥ ९ ॥ व्यंतर ज्योतिषिमां वळी जेह । शाश्वता जिन वंदुं तेह ॥ रिखभ चंद्रानन वारिषेण । वर्द्धमान नामे

किया। जिसमें मुख्य जीव और कर्मोंका स्वरूप बतलाया कि हे भव्यात्माओं! यह जीव निर्मल ज्ञानादि गुणयुक्त अमूर्त है और सदा चिदानन्दमय है परन्तु अज्ञानसे पर वस्तुओंको अपनी कर मानी है। इन्हीसे उत्पन्न हुवा राग-द्वेषके हेतुसे कर्मोंका अनादि कालसे चय-उपचय करता हुवा इस अपार संसारके अन्दर परिभ्रमण कर रहा है। वास्ते अपनी निजसत्ताको पहिचानके जन्म जरा, मृत्यु आदि अनन्त दुःखोंका हेतु यह अनित्य असार संसारके बन्धनसे छूटना चाहिये। इत्यादि देशना देके अन्तमें फरमाया कि मोक्षप्राप्तिके मुख्य कारण दोय है (१) साधु धर्म-सर्वथा निवृत्ति। (२) श्रावक धर्मजो देशसे निवृत्ति. इस दोनों धर्मसे यथाशक्ति आराधना करनेसे संसार का पार हो के स्वसत्ताका राज मील सकता है।

यह अमृतमयी देशना देवता, विद्याधर और राजादि श्रवण कर सहर्ष बोले कि हे करुणासिन्धु! आपने यह भवतारक देशना दे के जगतके जीवोंपर अमूल्य उपकार किया है। इत्यादि स्तुति कर अपने २ स्थान पर गमन करते हुवे।

आनन्द गाथापति देशना सुनके सहर्ष भगवानको वन्दन-नमस्कार कर बोला कि हे भगवान! मैं आपकी सुधारस देशना श्रवण कर आपके वचनोंकी अन्तर आत्मासे श्रद्धा हुइ है। और मेरे वो प्रतीति होनेसे धर्म करनेकी रुचि उत्पन्न हुइ है परन्तु हे दीनोद्धारक! धन्य है जगतमें राजा, महाराजा। शेठ सेनापति आदिको जो कि राजपाट, धन धान्य पुत्र, कलत्रका त्याग कर आपके समीप दीक्षा ग्रहण करते है परन्तु मैं ऐसा समर्थ नहीं हूं। हे प्रभो! मैं आपसे गृहस्थ धर्म अर्थात् श्रावकके बारह व्रत ग्रहण करुंगा। भगवानने फरमाया कि "जहा सुखं" हे आनन्द! 'जैसा

कल्लाण कंदं पढमं जिणंदं । संतिं तओ नेमिजिण मुणिंदं ।। पासं पयास सुगुणिक ठाणं । भत्तीइ वंदे सिरि वद्धमाणं ॥ १ ॥ अपार संसार समुद्द पारं । पत्ता सिवं दिंतु सुइक सारं ।। सव्वे जिणंदा सुरविंद वंदा । कल्लाण वल्लीण विसाल कंदा ॥ २ ॥ निव्वाण मग्गे वर जाण कप्पं । पणा- सियासेस कुवाइ दप्पं ॥ मयं जिणाणं सरणं बुहाणं । नमामि निच्चं तिजगप्पहाणं ॥ ३ ॥ कुंदिंदुगोक्खीरतुसारवन्ना । सरोज हत्था कमले निसन्ना ॥ वाएसिरी पुत्थय वग्गहत्था । सुहाय सा अम्ह सया पसत्था ॥ ४ ॥

बादमें नमुत्थुणं कहके अड्ढाइज्जेसु कहेना ।

॥ अथ सीमंधर जिन चैत्यवंदन ॥

श्री सीमंधर वीतराग । त्रीभुवन उपगारी ॥ श्री श्रेयांस पिता कुले । बहु शोभा तुमारी ॥ १ ॥ धन्य धन्य माता सत्यकी । जेणे जायो जयकारी ॥ वृपभ लंछन बिराजमान । वंदे नरनारी ॥ २ ॥ धनुप पांचशे देहडीए । सोहीए सोवन वान ॥ कीर्त्तिविजय उवझायनो । विनय धरे तुम ध्यान ॥३॥

॥ अथ सीमंधर जिन स्तवन ॥

पुक्खलवइ विजये जयो रे । नयरी पुंडरिगिणि सार ॥ श्री सीमंधर साहिबा रे । राय श्रेयांस कुमार ॥ जिणंदराय । धरजो धर्म सनेह ।। ए आंकणी ॥ १ ॥ मोटा नाहाना अंतरो रे । गिरुआ नवि दाखंत ॥ शशि दरिसण सायर

बीअवयस्सइआरे ॥ पडिक्कमे० ॥ १२ ॥ तइए अणुव्वयंमि ।
थूलग परदव्व हरण विरइओ ॥ आयरिअ मप्पसत्थे । इत्थ
पमाय प्पसंगेणं ॥ ॥१३ ॥ तेनाहड प्पओगे । तप्पडिरूवे वि-
रुद्ध गमणे अ ॥ कूडतुल कूडमाणे ॥ पडिक्कमे० ॥ १४ ॥
चउत्थे अणुव्वयंमि । निच्चं परदार गमण विरईओ ॥ आयरिअ
मप्पसत्थे । इत्थ पमाय प्पसंगेणं ॥१५॥ अपरिग्गहिआ इत्तर ।
अणंग वीवाह तिव्व अणुरागे । चउत्थवयस्सइआरे ॥ पडि-
क्कमे० ॥ १६ ॥ इत्तो अणुव्वए पंचमंमि आयरिअ मप्पस-
त्थंमि । परिमाण परिच्छेए । इत्थ पमाय प्पसंगेण ॥ १७ ॥
धण धन्न खित्त वत्थू । रुप्प सुवन्ने अ कुविअ परिमाणे ।
दुपए चउप्पयंमि ॥ पडिक्कमे० ॥१८॥ गमणस्सओ परिमाणे ।
दिसासु उड्ढं अहे अ तिरिअं च ॥ वुड्ढि सइ अंतरद्धा । पढ-
मंमि गुणव्वए निंदे ॥ १९ ॥ मज्जंमि अ मंसंमि अ । पुप्फे
अ फले अ गंधमल्ले अ ॥ उवभोगे परिभोगे । बीअंमि गुण-
व्वए निंदे ॥ २० ॥ सच्चित्ते पडिबद्धे । अपोल दुप्पोलिअं च
आहारे । तुच्छोसहि भक्खणया ॥पडिक्कमे०॥२१॥ इंगाली वण
साडी । भाडी फोडी सुवज्जए कम्मं ॥ वाणिज्जं चेव य दंत,
लक्ख रस केस विस विसयं ॥ २२ ॥ एवं खु जंतपिल्लण
कम्मं । निल्लंछणं च दवदाणं ॥ सर दह तलाय सोसं । असई
पोसं च वज्जिज्जा ॥ २३ ॥ सत्थग्गि मुसल जंतग । तण कठे
मंत मूल भेसज्जे । दिन्ने दवाविए्वा ॥ पडिक्कमे० ॥२४॥ न्हा-
णुवट्टण वन्नग । विलेवणे सद्द रूव रस गंधे । वत्थासण

॥ अथ श्री सिद्धाचल स्तवन ॥

मारुं मन मोह्युंरे श्री सिद्धाचलेरे। देखी हरषित होय ॥ विधि शुं किजेरे यात्रा एहनीरे। भवभवना दुःख जाय ॥ मा० ॥ १ ॥ पंचमे आरेरे पावन कारणेरे। ए समुं तीर्थ न कोय ॥ मोटो महिमारे महीयल एहनोरे। आ भरते इहां जोय ॥ मा० ॥ २ ॥ इणे गिरि आव्यारे जिनवर गणधरारे। सिद्धा साधु अनंत ॥ कठिण कर्म पण इण गिरि फरसतांरे। होय कर्म निशान्त । मा०॥३॥ जैन धर्म ते साचो जाणीयेरे। मानव तीर्थ एह थंभ॥ सुरनर किन्नर नृप विद्याधरारे। करता नाटारंभ ॥ मा० ॥ ४ ॥ धन्य धन्य दहाडो धन्य धन्य ए घडीरे। धरी हृदय मझार ॥ ज्ञानविमल प्रभु एहना गुण-घणांरे। कहेतां न आवे पार ॥ मा० ॥ ५ ॥ इति ॥ सिद्धाचल आराधवा काउस्सग्ग एक नवकारका करना ॥

॥ स्तुति ॥

पुंडरगिरि महिमा। आगममां प्रसिद्ध ॥ विमलाचल भेटी। लहीये अविचल रिद्ध ॥ पंचमी गति पहोता। मुनिवर कोडाकोड। एणे तीरथ आवी। कर्म विपातिक छोड ॥

पूर्वविधि माफीक सामायिक पारे और हमेशोंके लिये भावना भावे ॥ शम् ॥

॥ अथ प्रभातनां पच्चखाण ॥

॥ नमुक्कारसहि मुठिसहि नुं ॥

“ उग्गए सूरे, नमुक्कार सहियं, मुठि सहियं, पच्चक्खाइ,

शकट-गाडाके परिमाणमें पांचसो गाडा जहाजों पर माल पहुंचानेके लिये तथा देशांतरसे माल लानेके लिये और पांचसो गाडा अपने गृहकार्यके लिये खुला रखके शेष शकट-गाडाओंका त्याग कर दिया (८) वहाण पाणीके अन्दर चलनेवाले जहाजके परिमाणमें च्यार बडे जहाज दिशावरोंमे माल भेजनेका और च्यार छोटे जहाज खुले रखके शेष वहाणका त्याग कीया। छठ्ठा व्रत पांचवेव्रतके अन्तर्गत हैं।

(७) सातवा उपभोग-परिभोग व्रतका निम्न लिखित परिमाण करते हुवे।

(१) अंगपूंछनेका रूमालमें गन्ध कर्षीत वस्त्र रखा है।

(२) दातणमें एक अमृति-जेटीमधका दातण॥

(३) फलमें एक श्रीर आंवलाका फल (केशधोनेको)

(४) कसरत करने पर मालिस करनेके लिये सौपाक और हजार पाक तेल रखाथा। सौ औषधिसे पकावे उसको सौपाक और हजार औषधिसे पकावे उसको हजार पाक कहते है तथा सौ सोनैयाका एक टकाभर ऐसा कीमतवाला तेल रखा था।

(५) उघटना एक सुगन्ध पदार्थ कुष्टादिका रखा है।

(६) स्नान मज्जन-आठ घडे पाणी प्रतिदिन रखा है।

(७) वस्त्रोंकी जातिमें एक क्षेमयुगल कपासका वस्त्र रखा है।

शावे तो छठ्ठा दिशाव्रत बीलकुलही नहीं रखाया तो उन्होंके च्यार बडे वहाण च्यार छोटे वहाण किस दिशामे चलतथे ऐसा प्रश्न स्वाभाविक उत्पन्न होता है। आनन्दको व्यवहार (व्यौपार) में कुशल कहा है और पांचमें व्रतमें च्यार क्रोड द्रव्य व्यापारके लिये रखा था। वास्ते संभव होता है कि पांचसे हलकी जमीन रखीथी उसीमें छठ्ठाव्रतका भी समावेश होगया हो। तत्व केवली गम्य।

अथश्री

देवगुरुवन्दनमाला

और

चैत्यवन्दन स्तवनादि.

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोएसव्वसाहुणं, एसो पंचनमुकारो, सव्वपावप्पणासणो, मंगलाणंच सव्वेसिं, पढमंहोइ मंगलम् ॥

चौवीस तीर्थंकरोंका स्मरण.

१ श्री ऋषभदेवजी	७ श्री सुपार्श्वनाथजी
२ श्री अजितनाथजी	८ श्री चन्द्राप्रभुजी
३ श्री संभवनाथजी	९ श्री सुवधीनाथजी
४ श्री अभिनन्दनजी	१० श्री शीतलनाथजी
५ श्री सुमतिनाथजी	११ श्री यंसनाथजी
६ श्री पद्मप्रभुजी	१२ श्री वासपूजजी

स्वामि बोले कि हे आनन्द जो सम्यक्त्व सहित व्रत लेते हैं उनको पेस्तर व्रतोंके अतिचार जो कि व्रतोंके भंग होनेमें मददगार हैं उसको समझके दूर करना चाहिये। यहांपर सम्यक्त्वके ५ और बारह व्रतोंके ६० कर्मादानके १५ संलेखनाके ५. सर्व ८५ अतिचार शास्त्रकारोंने बतलाये हैं। किन्तु वह अतिचार प्रथम जैन नियमावलीमें लिखे गये हैं वास्ते यहांपर नहीं लिखा है। जिसको देखना हो वह " जैन नियमावली " से देखे।

आनन्द गाथापति भगवान वीरप्रभुसे सम्यक्त्व मूल बारह व्रत धारण करके भगवानको वन्दन-नमस्कार करके बोला कि हे भगवान! अब आजसे मैं सच्चे धर्मको समझ गया हूं। वास्ते आजसे मुझे नही कल्पे जो कि अन्यतीर्थी श्रमण शाक्यादि तथा अन्यतीर्थियोंके देव हरि हलधरादि और अन्यतीर्थियोंने अरिहंतकी प्रतिमा अपने देवालयमें अपने कबजे कर देव तरीके मान रखी है. इन्ही तीनोंको वन्दन-नमस्कार करना तथा श्रमणशाक्यादिको पहिले बुलाना, एकवार या वारवार उन्होंसे वार्तालाप करना और पहिलेकी माफिक गुरु समजके धर्मबुद्धिसे असनादि चतुर्विधाहारको देना या दूसरोंसे दिलाना यह सर्व मुझे नहीं कल्पते हैं। परन्तु इतना विशेष है कि मैं संसारमें बैठा हूं वास्ते अगर (१) राजाके कहनेसे (२) गणसमूह-न्यातके कहनेसे (३) बलवन्तके कहनेसे (४) देवताओंके कहनेसे (५) मातापितादिके कहनेसे (६) सुखपूर्वक आजीविका नहीं चलती हो। अर्थात् ऐसी हालतमें किसी आजीविकाके निमित्त उक्त कार्य करना भी पडे यह छे प्रकारके आगार है।

अब आनन्द श्रावक कहता है कि मुझे कल्पे साधु-निर्ग्रन्थको फासुक, निर्जीव निर्दोष अशन पान खादिम स्वादिम वस्त्रपात्र

जीतना गुरुमहाराजकों बहू मान दीयाजाता है इतनाही स्थापनाजीकों देना चाहिये स्थापनाजीके आगे वन्दन करनों.

इच्छामिखमासमणो वंदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए मत्थएण वंदामि ॥ यह पाठ तीनदफे उठ बेठके कहेना.

इच्छकार भगवन् सुहराइ सुहदेवसि सुखतपशरीर निराबाध सुख संजम जात्रा निर्वहोछोजी स्वामिसुखसाता है भातपाणीका लाभ देनाजी ॥ एक खमासमण देके अब्भुठिओका पाठ केहना.

इच्छाकारेण संदिसह भगवान् अब्भुठिओमि अभिंतर देवसियं खामेओ "इच्छं खामेमिदेवसियं" जं किंचि अपत्तियं परपत्तियं भत्ते पाणे विणए वेयावच्चे आलावे संलावे उच्चासणे समासणे अंतर भासाए उवरिमासाए जं किंचि मझ विणय परिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह अहं न याणामि तस्समिच्छामिदुक्कडं ॥ एक खमासमणा और देके वन्दन करना ।

सामायिक लेने वालोंकों पेहला इरियावहियं करना.

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् इरियावहियं पडिक्कमामि "इच्छं इच्छामि पडिकमिओ" इरियावहियाए विराहणाए गमणागमणे पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसाउतिंग पणगदग मट्टीमक्कडा संताणासंकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया अभिहया

समय, रात्रीमें धर्मजागरना करते हुवे यह आत्मभान हुवा कि मैं वाणीयाग्राम नगरमें राजा उपराजा शेठ सेनापति आदिके मानने योग्य हुं परन्तु भगवानके पास दीक्षा लेनेको असमर्थ हुं. वास्ते कल सूर्योदय होते ही विस्तरण प्रकारका असनादि तैयार करवाके स्यात जातिको बोलाके उन्होंको भजन करावे. ज्येष्ठ पुत्रको कुटुम्बके आधारभूत स्थापन करके मैं उक्त कोल्लाक सन्निवेशमें अपने मकानपर जाके भगवानसे प्राप्त किये हुवे धर्मसे मेरा आत्मा कल्याण करता हुआ विचरुं। ऐसा विचार कर सूर्योदय होनेपर वह ही कीया अपने ज्येष्ठ पुत्रको घरका कारभार सुप्रत कर आप कोल्लाक सन्निवेशमें जा पहुंचा। अब आनन्द श्रावक उसी पौषधशालाको प्रमार्जन कर उच्चार पासवण भूमिको प्रमार्जन कर भगवान वीरप्रभुसे जो आत्मीक ज्ञान प्राप्त कीया था उसके अन्दर रमणता करने लगा।

आनन्द श्रावक यहांपर श्रावककी ११ प्रतिमा (अभिग्रह विशेष) को धारण करके प्रवृत्ति करने लगा। इन्होंका विस्तार शीघ्रबोध भाग ४ मे देखो यावत् साढे पांचवर्ष तक तपश्चर्या करके शरीरको कृश बना दीया अर्थात् शरीरका उत्थान बल कर्मवीर्य और पुरुषार्थ बिलकुल कमजोर हो गया, तब आनन्द श्रावकने विचारा कि अब अन्तिम अनशन 'संलेखना' करना ठीक है। बस, आनन्दने आलोचना करके-अनशन करके अठारा पापस्थान और च्यार आहारका पचखान कर आत्मध्यानमें रमणता करता हुवा। शुभाध्यवसाय-अच्छे परिणाम प्रशस्त लेश्या होनेसे आनन्दको अवधिज्ञान उत्पन्न हुवा सो पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशा लवणसमुद्रमें पांचसो पांचसो योजन क्षेत्र और उत्तरमें चुलहेमवन्त पर्वत तक देखने लग गया। उर्ध्व, सौधर्मदे-

जरमरणा चउवीसंपि जिणवरा॥५॥तित्थयरामे पसीयंतु कित्तिय वंदिय महिया, जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धा आरुग्ग बोहिलाभं समाहिवरमुत्तम दिंतु ॥ ६ ॥ चंदेसु निम्मलयरा आइचेसु अहियं पयासयरा, सागरवरगंभीरा सिद्धासिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥

एक खमासमणा दे आदेश लेके सामायिक लेनेको मुहपत्ति पडिलेहन करना सो विधिमुहपत्ति हाथमें लेके खोलती वखत केहेना सूत्र अर्थ सचाश्रद्दहु, सम्यक्त्वमोहनिय, मिथ्यात्वमोहनिय, मिश्रमोहनिय परित्याग करूं। द्रष्टिकी प्रतिलेखन करतों कामराग, स्नेहराग, द्रष्टिरागका परित्याग करूं। यह सात बोल केहेनेके बाद मुहपतिके विभाग जीमणे हाथकि अंगुलीके विचमें पकडके डावा हाथपर प्रतिलेखन समय सुदेव सुगुरु सुधर्म आदरूं कुदेव कुगुरु कुधर्म परित्याग करूं। ज्ञान दर्शन चारित्र आदरूं यह ६ बोल केहकर मुहपत्ति डावा हाथके अंगुलीयोंके विचमें लेके जीमणा हाथपर प्रतिलेखन करना यथा ज्ञानविराधना दर्शनविराधना चारित्रविराधनाका परित्याग करूं। मनोगुप्ती वचनगुप्ती कायगुप्ती आदरूं। मनोदंड वचनदंड कायादंडका परित्याग करूं। एवं २५ बोल।

अब शरीर प्रतिलेखन करनेकि विधि केहेते है.

मस्तकपर मुहपत्ति लगाके कृष्ण निल कापोत लेश्याका परित्याग करूं। मुखपर मुहपत्ति रख--ऋद्धिगारव रसगारव

तकी आलोचना कर प्रायश्चित लेना चाहिये। आनन्दने कहा कि हे भगवान! क्या यथा वस्तु देखे उतना कहनेवालेको प्रायश्चित आता है अर्थात क्या सत्य बोलनेवालेकोभी प्रायश्चित आता है। गौतम बोला कि हे आनन्द सत्य बोलनेवालेको प्रायश्चित नही आता है। आनन्दने कहा कि सत्य बोलनेवालेको प्रायश्चित नहीं आता हो तो हे भगवान! आपही इस स्थानको आलोचन कर प्रायश्चित लो। इतना सुन गौतमस्वामिको शंका हुइ। तब सीधाही भगवानके पास जाके सर्व वार्ता कही। भगवानने फरमाया कि हे गौतम तुमही इस बातकी आलोचना करो। गौतमस्वामि आलोचना करके आनंद श्रावकके पास आये और क्षमत्क्षामणा करके अपने स्थानपर गमन करते हुवे।

आनन्द श्रावकने साढे चौदह वर्ष श्रावक व्रत पाला, साढे पाच वर्ष प्रतिमाको पालन किया अन्तमें एक मासका अनशन कर समाधि संयुक्त कालकर सौधर्म नामका देवलोकमें अरूणवेमानमें च्यार पल्योपमके स्थितिवाला देव हुवा। उन्ही देवताका भव आयुष्य स्थितिको पुर्ण कर वहांसे महाविदेह क्षेत्रमें अच्छे उत्तम जाति-कुलके अन्दर जन्म धारण कर दृढपइन्नेकी माफीक केवली धर्मको स्वीकार कर अनेक प्रकारके तपसंयमसे कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमे जावेगा। इसी माफीक श्रावकवर्गकोभी अपने आत्म कल्याण करना। शम

इति आनन्द श्रावकाधिकार संक्षिप्त सार समाप्तम्।

सामायिक करनेवाले आत्मबन्धुओको प्रथम ३२ दोषकों जानना चाहिये ॥

१० मनके दोष.

१ अविवेकदोष–अविवेकतासे क्रिया करे या सामायिक करके मोक्षमें कोन गये है या इसे क्या फल है ।
२ यशोवांच्छादोष–सामायिक कर यशकीर्तिकि इच्छा करे।
३ धनवांच्छादोष–सा० करके धनकि इच्छा करे ।
४ गार्वदोष–सा० अहंकार करे म्है सामायिक करता हूं ।
५ भयदोष–लौकिकके भयके मारे लोक मुजे क्या कहेगा ।
६ निदानदोष–सा० इस लोक परलोकका नियाण करना ।
७ संशयदोष–सा० क्या जाने फल होगा या न होगा ।
८ कषायदोष–क्रोधके मार या सा० मे क्रोध करे ।
९ अविनयदोष–गुरु विनय न करे जेसे मूर्खकि माफीक ।
१० अबहूमान–उत्साहरहित वेगारकि माफीक सामायिक करके मनकों सावद्य कार्यकि चिंतवनेमें लगादे इत्यादि ।

१० वचनके दोष.

१ कुबोल–सामायिकमें मकार चकारादि कुवचन बोलना ।
२ सहसात्कार–सा० विनोविचारे बोलना ।
३ असदारोपण–दुसरेको पापकारी मति देना ।

चलना-क्षोभ पामना-भंग करना तेरेको नहीं कल्पता है। किन्तु मैं आज तेरा धर्मसे तुझे क्षोभ करानेको-भंग करानेको आया हुं। अगर तुं तेरी प्रतिज्ञाको न छोडेगा तो देख यह मेरा हाथमें निःलोत्पल नामका तीक्ष्ण धारायुक्त खड्ग है इन्हींसे अभी तेरा खंड खंड करदूंगा जीससे तुं आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान करता हुआ अभी मृत्युको प्राप्त हो जायगा।

कामदेव श्रावक पिशाचरूप देवका कटुक और दारूण शब्द श्रवण कर आत्माके एक प्रदेश मात्रमें भय नहीं, त्रास नहीं, उद्वेग नहीं, क्षोभ नहीं, चलित नहीं, संभ्रांतपना नहीं लाता हुवा मौन कर अपनी प्रतिज्ञा पालन करता ही रहा।

पिशाचरूप देवने कामदेव श्रावकको अक्षोभीत धर्मध्यान करता हुवा देखके और भी गुस्साके साथ दो तीनवार वही वचन सुनाया। परन्तु कामदेव लगार मात्र भी क्षोभित न होकर अपने आत्मध्यानमें ही रमणता करता रहा।

' मायी मिथ्यादृष्टि पिशाचरूप देवने कामदेव श्रावकपर अत्यन्त क्रोध करता हुवा उन्ही तीक्ष्ण धारावाली तलवार (खडग) से कामदेव श्रावकका खंड खंड कर दिया उस समय कामदेव श्रावकको घोर वेदना-अत्यन्त वेदना अन्य मनुष्योंसे सहन करना भी मुश्कील है एसी वेदना हुइ थी। परन्तु जिन्होंने चैतन्य और जडका स्वरूप जाना है कि मेरा चैतन्य तो सदा आनन्दमय है इन्हीकों तो किसी प्रकारको तकलीफ है नही और तकलीफ है इन्ही शरीरकों वह शरीर मेरा नहीं है। एसा ध्यान करनेसे जो 'अति वेदना हो तो भी आर्त्तध्यानादि दुष्ट परिणाम नहीं होते हैं। वीतरागके शासनका यही तो महत्त्व है।

१२ शीत दोष–शीतके कारण सर्व अंगकों कपडासे ढाकके बेठे।

उपर लिखे ३२ दोषोंकों टालके शुद्ध उपयोगसे आत्मज्ञानमे रमणता करनेसे कर्मोंकि निर्ज्जरा होती है।

सामयिक पारनेकि विधि.

गुरु आदेश लेके इरियावहि पूर्ववत् लगस्सतक केहना–आदेश लेके सामायिक पारनेकि मुहपत्तिका प्रतिलेखन करना। आदेश–अर्थात् खमासमण देके इच्छा कारण संदिसह भगवान् सामायिक पारु। तब गुरु कहे "पुणोवि कायव्वो" आप कहै" यथाशक्ति" फीर खमासमणादिके इच्छा कारण संदिसह भगवन् सामायिक पार्यु गुरु कहे " आयारो न मोत्तव्वो " आप कहे " तहत्ति " फिर जीमणा हाथ चरवालापर रखके एक नवकार केहके गाथा केहनी।

सामाइय वयजुत्तो, जावमणे होइ नियम सजुत्तो।
छिन्नइ असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिया वारा ॥ १ ॥
सामाइयंमिउ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा।
एएण कारणेणं, वहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ २ ॥

सामायिक विधिसे लीधि विधिसे पारी विधि करतों अविधि हुइ हो सामायिकमें दश मनका दश वचनका बारह कायाका एवं ३२ दोषसे कोइ भी दोष लागा होय तो मिच्छामिदुकडं ॥

हुवा अटल-निश्चल रहा। दुष्ट देवने कामदेवको बहुत उपसर्ग किया परन्तु धर्मवीर कामदेवको एक प्रदेश मात्रमें भी क्षोभित करनेको आखीर असमर्थ हुवा। देवताने उपयोग लगाके देखा तो अपनी सब दुष्ट वृति निष्फल हुइ। तब देवताने सर्पका रूप छोड के एक अच्छा मनोहर सुन्दराकार वस्त्राभूषण सहित देव रूप धारण किया और आकाशके अन्दर स्थित रहके बोलता हुवा कि हे कामदेव! तुं धन्य है पूर्व भवमें अच्छे पुन्य कीया है। हे कामदेव! तुं कृतार्थ है। यह मनुष्य जन्मको आपने अच्छी तरहसे सफल किया है। यह धर्म तुमको मीला ही प्रमाण है। आपकी धर्मके अन्दर दृढता बहुत अच्छी है। यह धर्म पाया ही आपका सार्थक है। हे कामदेव! एक समय सौधर्म देवलोक की सौधर्मी सभाके अन्दर शक्रेन्द्रने अपने देवताओंके वृन्दमें बैठा हुवा आपकी तारीफ और धर्मके अन्दर दृढताकी प्रशसा करीथी परन्तु मैं मूढमति उस बातको ठीक नही समजके यहांपर आके आपकी परिक्षाके निमत्त आपको मैंने बहुत उपसर्ग किया है परन्तु हे महानुभाव! आप निर्ग्रन्थके प्रवचनसे किंचत भी क्षोभा-यमान नही हुवे। वास्ते मैंने प्रत्यक्ष आपकी धर्म दृढताको देखली है। हे आत्मवीर अब आप मेरा अपराधकी क्षमा करे, एसी वारवार क्षमा याचना करता हुवा देव बोला कि अब एसा कार्य मैं कभी नही करुंगा इत्यादि कहता हुवा कामदेवको नमस्कार कर स्वर्गको गमन करता हुवा।

तत्पश्चात कामदेव श्रावक निरुपसर्ग जानके अपने अभि ग्रह (प्रतिज्ञा) को पालता हुवा।

जिस रात्रीके अन्दर कामदेव श्रावकको उपसर्ग हुवा था

३ पंचमिका चैत्यवंदन.

शासनपति विराजीया, समोसरण मझार ।
भक्तिभावे पुच्छीयो, श्रीगौतम गणधार ॥१॥
कहो स्वामि किम पामीये, निर्मल केवल नाण ।
उत्तर आपे वीरजी, सांभल गौतम वाण ॥२॥
शुक्लपक्षकि पंचमि, आराधे शुद्ध भाव ।
पौषद गुणणो जो करे, उजमणो चित्त चाव ॥३॥
ज्ञान विनो पशु सारखो, क्रिया नहीं विन ज्ञान ।
देश आराद्धि क्रिया कही, सर्व आराद्धि ज्ञान ॥४॥
पंच वर्ष पंच मासकि, उत्कृष्टी जावा जीव ।
पंच मास लघु कही, ज्ञान आराधन नींव ॥५॥
महा निसिथमे भाखीयो, ज्ञानतणो अधिकार ।
वरदत्त ने गुणमंझरी, पाम्या भवनो पार ॥६॥
पंचकल्याणक जिनतणा, पालो पंचाचार ।
पंचमि गति वरवा भणी, ज्ञान सदा श्रीकार ॥७॥

४ अष्टमिका चैत्यवंदन.

नमु नमु आठम दिने, कल्याणक जगनाथ ।
चैत्र वदि आठम दिने, जनम्या आदिनाथ ॥१॥
सोहम इन्द्र वनिता गयो, मेरू आया शेष ।
जन्म सफल जेणे कीयो, तीर्थंकर अभिशेष ॥२॥

अन्तमें एक मासका अनशन कर आलोचना कर समाधिमें काल कर सौधर्मदेवलोकमें अरुण नामका विमानमें च्यार पल्योपम स्थितिवाला देव हुवा। वहांसे आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्रमें मोक्ष जावेगा ॥ इतिशम् ॥ २ ॥

—*—

(३) अध्ययन तीसरा चुलनिपिताधिकार.

बनारसी नगरी कोष्टक उद्यान, जयशत्रु राजा राज करता था। उस नगरीमें एक चुलनिपिता नामका गाथापति बडाही धनाढ्य था। उसको शोभा नामकी भार्या थी। चोवीस क्रोड सोनैयाका द्रव्य था। जिसमें आठ क्रोड धरतीमें आठ क्रोड व्यापारमें और आठ क्रोडका घर वीक्रिमें था। और आठ वर्ग अर्थात् एंसी हजार गौ (गायों) थी। आनन्दके माफीक नगरीमे बडा माननीय था।

भगवान वीरप्रभु पधारे। राजा और चुलनिपिता वन्दन करनेको गये। भगवानने धर्मदेशना दी। आनन्दकी माफीक चुलनिपिताने भी स्वइच्छा परिमाण करके श्रावकके व्रत धारण कर भगवानका श्रावक बन गया।

एक समय पौषधशालामें ब्रह्मचर्य सहित पौषध कर आत्म रमणता कर रहा था। अर्द्ध रात्रीके समय एक देवता हाथमें निलोत्पल नामकी तलवार ले के चुलनिपित श्रावक के पास आया ओर कामदेवकी माफीक चुलनिपिताको भी धर्म छोडने की अनेक धमकीयां दी। परन्तु चुल० धर्मसे क्षोभायमान नहीं

उजमणो करतों थकों, शिवरमणी वरसी ॥ ५ ॥
अंग इग्यारे लिखावीये, इग्यारे ठवणी ।
पाटी पुठा विटांगणा, साही कल्मकवली ॥ ६ ॥
पूजा श्रीजिनराजकी, गुरुभक्ति कीजे ।
सम्यक्ज्ञान पामी करी, नरभव फल लिजे ॥ ७ ॥

६ परकीका चैत्यवन्दन.

रिसहनाह श्रीनाभिराय मरुदेवियनन्दन ।
जइ जइ अजिय जिणंद देवसिवपुर पुहसहंदन ॥
गय भय भय संभव अपार भव सयर तारे ।
अभिनंदण आणंद कन्द मह दुरिअ निवारे ॥ १ ॥
सुमइ देव मह सुमइनाह भुवण त्तय सामि ।
पउम प्पहु प्पहुयइ पसाय पूजोमणकामी ॥
सव्व जगुत्तम जिण सुपास सत्तम तित्थेसर ।
चंदप्पह मुह कुमय तिमिर तिहुयण परमेसर ॥ २ ॥
सुविह सुविह पइडण समत्थ वंदउ नंदउ नर ।
सीयल तुठे हुंति नयण सीयल निसचयपर ॥
सिरियंसह वंदण हरस लाहुअ जिम कीजे ।
वासपूज पूजे वनिय जम्मह फल लीजे ॥ ३ ॥
देह देव सिरि विमल नाह निम्मल मंगल मुह ।
सिरि अनंत संतुठि सुठि लब्मे सिव सुह मुह ॥

माता पौषधशालामे आके बोली कि हे पुत्र ! क्या है ? चुलनिपिताने सब बात कही । तब माता बोली कि हे पुत्र ! तेरे पुत्रोंको किसीने भी नहीं मारा है किन्तु कोइ देवता तुझे क्षोभ करनेको आयाथा उसने तुझे उपसर्ग किया है ! तो हे पुत्र ! अब तुं जो रात्रीमें कोलाहल कीया है उससे अपना नियम-व्रत पौषधका भंग हुवा है वास्ते इसकी आलोचना कर अपने व्रतको शुद्ध करना । चुलनिपिताने अपनी माताका वचनको स्वीकार कीया ।

चुलनिपिताने साढाचौदह वर्ष गृहस्थावासमें रहके श्रावक व्रत पाला, साढेपांच वर्ष इग्यारे प्रतिमा वहन करी. अन्तमें एक मासका अनसन कर' समाधि सहित कालकर सौधर्म देवलोकमें अरुणप्रभ नामका देवविमानमें च्यार पल्योपमकी स्थितिवाला देव हुवा है । वहांसे आयुष्य पूर्णकर महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्य हो दीक्षा ले केवलज्ञान प्राप्त हो मोक्ष जावेगा ॥ इतिशम ॥ ३ ॥

---

(४) चोथा अध्ययन सूरादेवाधिकार.

बनारसी नगरी, कोष्टक उद्यान, जयशत्रु राजा था । उस नगरीमें सुरादेव नामका गाथापति था । उसको धन्ना नामकी भार्या थी । कामदेवके माफीक अठारा क्रोड द्रव्य और साठ हजार गायों थी । किसीसे भी पराजय नहीं हो सक्ता था ।

भगवान वीरप्रभु पधारे । राजा प्रजा और सूरादेव वन्दनको गया । भगवानने धर्मदेशना दी । सुरादेवने आनन्दके माफीक स्वइच्छा मर्यादा कर सम्यक्त्व मूल बारह व्रत धारण किया ।

८ महावीर चैत्यवंदन.

सिद्धारथ राजातणो, नन्दन श्रीमहावीर ।
वहोतेर वर्षको आयुखो, सोवन वर्ण शरीर ॥ १ ॥
बारह वर्ष छद्मस्थ रह्या, तीस वर्ष गृहवास ।
तीस वर्ष प्रभु केवली, पांचमि गति कीयो वास ॥ २ ॥
सिंह लंछन शासनपति, वन्दु उगमते सूर ।
शिवसंपत वच्छत फले, ज्ञानसे वढते नूर ॥ ३ ॥

९ शान्तिनाथ चैत्यवंदन.

विश्वसेन कुल चन्दलो, अचिरादेवी माय ।
शान्ति करी सर्व देशमें, सोवनवरणी काय ॥ १ ॥
अनन्त ज्ञान दर्शन धणी, चरण अनंतु जाण ।
गजपद लंच्छन नित्य नमुं, जग उगमते भांण ॥ २ ॥
कारण सफलोमे लेही, साधन कारज रूप ।
वंच्छत ज्ञान सदा फले, तुं त्रिभुवनको भूप ॥ ३ ॥

१० नेमिनाथ चैत्यवंदन.

गिरनार मंडन नेमिजिन, सेवादेवी माय ।
समुद्रविजय सुत गुण निलो, संख लंच्छन पाय ॥ १ ॥
परसत्ता त्याग न करी, त्यागी राजुल नार ।
स्वसत्ता रमण करे, शिव सुन्दर भरतार ॥ २ ॥

नामकी भार्या थी और अठारह क्रोडका द्रव्य, साठ हजार गायों यावत् वडाही धनाढ्य था।

भगवान वीरप्रभु पधारे। राजा, प्रजा और चुलशतक वन्द-नको गये। भगवानने अमृतमय देशना दी। चुलशतक आनन्द की माफीक स्वइच्छा मर्यादा कर सम्यक्त्व मूल वारह व्रत धारण कीया।

चुलनिपिताकी माफीक इसको भी देवताने उपसर्ग कीया। परन्तु एकेक पुत्रके सात सात खंड किया। चोथी वखत देवता कहने लगा कि अगर तूं धर्म नहीं छोडेगा तो मैं तेरा अठारा क्रोड सोनैयाका द्रव्य इसी आलंभीया नगरीके दो तीन यावत् वहुतसे रास्तेमें फेंकदूंगा कि जिन्होंके जरिये तुं आर्तध्यान करता हुआ मृत्यु पावेगा।

यह सुनके चुलशतकने पूर्ववत् पकडनेका प्रयत्न कीया इतनेमें देव आकाश गमन करता हुवा। कोलाहल सुनके वहुला भार्याने कहा कि आपके तीनों पुत्र घरमें सुते हैं यह कोइ देवने आपको उपसर्ग किया है। वास्ते इस वातकी आलोचना लेना। चुलशत-कने स्वीकार किया।

चुलशतकने साढे चौदह वर्ष गृहवासमें श्रावकपणा पाला, साढे पांच वर्ष इग्यारा प्रतिमा वहन कीया, अन्तमें आलोचना कर एक मास अनसन कर समाधिमें काल कर सौधर्म देवलोकके अरूणश्रेष्ट वैमानमें च्यार पल्योपमकी स्थितिमें देवपणे उत्पन्न हुवा। वहांसे आयुष्य पूर्णकर महाविदेहमें मोक्ष जावेगा। इतिशम ॥ ५ ॥

बुद्धाणं बोहियाणं मुत्ताणं मोअयाणं सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाह मपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जिअभयाणं ॥ जेय अइआसिद्धा, जेअ भविस्संतिणागइकाले, संपइअ वट्टमाणा. सव्वे तिविहेण वंदामि ॥ इति ॥

जावंति चेइआइं उड्ढअ अहेअ तिरियलोए य ।
सव्वाइं ताइं वंदे इह संते तत्थ सताइं ॥ १ ॥
जावंति केइ साहू भरहेरवय महाविदेहेय ।
सव्वेसिं तेसिं पणाउ तिविहेण तिदंड विरयाणं ॥२॥

नमोऽर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो:

स्तुति संग्रह.

---

१ बीजकि स्तुति.

अजित जिनेश्वर अन्तर जामि, बीजे बीजा थुणीये जी ।
निर्मल चित्ते जिनवर पूजी, शिवपुरना सुख लुणीये जी ॥
उत्कृष्टा जिन केवली मुनिवर, तेहने बारे लाधे जी ।
अतित अनागत संप्रतकाले, वन्दो आगम वादे जी ॥ १ ॥
दोयउज्जल दोय राते वरणे, श्याम वरण दोय सोहे जी ।
निले वरणे युगजिनवरजी, सुरनरना मन मोहे जी ॥
सोवन वरण जिनेश्वर शोला, चौवीसे जिन पूजो जी ।

अर्थात् सर्व कार्यकी सिद्धि पुरुषार्थसे ही मानी है वास्ते ठीक नही है।

यह सुनके कुंडकोलिक श्रावक बोला कि हे देव! तेरा कहना है कि गोशालाका धर्म अच्छा है और वीरप्रभुका धर्म खराब है। अगर उत्स्थानादि विना कार्यकी सिद्धि होती है तो मैं तुमको पुछता हूं कि यह प्रत्यक्ष तुमको देवता सबन्धी ऋद्धि मीली है यह उत्स्थानादि पुरुषार्थसे मीली है या विना पुरुषार्थसे मीली है? यह प्रत्यक्ष तेरे उपभोगमे आई है। देवने उत्तर दिया कि मेरेको यह ऋद्धि मीली है वह अनुस्थान यावत अपुरुषार्थसे मीली है। यावत उपभोगमें आई है। श्रावक कुंडकोलिक बोला कि हे देव! अगर अनुस्थान यावत अपुरुषार्थसे ही जो देवऋद्धि मीलती हो तो जिस जीवोंका उत्स्थानादि नहीं है (एकेन्द्रियादि) उन्होंको देवऋद्धि क्यों नही मीलती है। इस वास्ते हे देव! तेरा कहना है कि गोशालाका धर्म अच्छा और महावीर प्रभुका धर्म खराब यह सब मिथ्या है अर्थात झुटा है।

यह सुनके देव वापस उत्तर देनेमे असमर्थ हुवा और अपनी मान्यतामें भी शंका कंक्षादि हुइ। शीघ्रतासे वह नामांकित मुद्रिकादि वापस पृथ्वीशीलापटपर रखके जिस दिशासे आया था उसी दिशामें गमन करता हुवा।

भगवान वीरप्रभु पृथ्वी मंडलको पवित्र करते हुवे कपीलपुर नगरके सहस्राम्रोद्यानमें पधारे। कामदेवकी माफीक कुंडकोलिक श्रावक वन्दनको गया। भगवानने धर्मकथा फरमाइ। तत्पश्चात् भगवानने कुंडकोलिक श्रावकको कहा कि हे भव्य! कल मध्यान्हमें एक देवता तुमारे पास आया था यावत् हे श्रमणोपासक! तुमने ठीक उत्तर देके उस देवका पराजय किया। कामदेवकी माफीक

पांचज्ञानकों गुणणो करीने, नन्दीसूत्रने पुजोजी ।
श्रुति ज्ञान समो नही कोइ, उपकारी जग दुजो जी ॥ ३ ॥
गीरनार मंडन नेमिजिनवर तस्स पद किंकर सेवी जी ।
साह्यानिधकारी सर्व संघने, भली अम्बिका देवी जी ॥
उपकेशगच्छ नायक शिवसुख लायक, रत्नसूरी मन मायाजी ।
ज्ञानसुन्दर कहे गुरु कृपासे, दिनदिन सुख सवाया जी ॥ ४ ॥

३ अष्टमिकि स्तुति.

अष्टमि आठमा जिनवर पूजो, चन्दा प्रभु चित लाइ जी ।
आंगी रचावों नृत्य करावों, मृदंग ताल बजाइ जी ॥
रावण गौत तीर्थंकर वांधो, अष्टापद पर जाइ जी ।
आज हर्ष चित्त भक्ति म्हारे, सामि मुक्ति आइ जी ॥ १ ॥
तीन लोकमें प्रभुकि प्रतिमा, वन्दो पूजो भावे जी ।
आचारंग ठाणायांग नन्दी, ज्ञाता सूत्रमें गावे जी ॥
रायप्पसेणी जीवाभिगम, भगवती पेच्छोणो जी ।
आगम पाठ उत्थापे प्रतिमा, पापी अभव्य जाणों जी ॥ २ ॥
अष्ट महा प्रतिहार विराजे, समौसरण जिनराजे जी ।
देशना अमृत अर्थ अनोपम, भव्य जीवों हितकाजे जी ॥
सूत्र रुपे गणधर गुथी, द्वादशांगनी वाणि जी ।
चोखे चित्ते जेह आराधे, शिवसुख ल्हे भव्य प्राणी जी ॥ ३ ॥
अष्ट प्रकारे पूजा करके, अष्टमि गतिमे जावो जी ।
अष्टम तप कर नागकेतु जिम, निर्मल केवल पावो जी ॥

एक वर्ग अर्थात दशहजार गायोंथीं। तथा शकडालपुत्रके पोला-सपुर बाहीर पांचसो कुंभकारकी दुकानेंथीं। उसमें बहुतसा नोकर-मजुर थे कि जिसमें कितनेकको तो दिन प्रत्ये नोकरी दि जाति थी कितनेकको मास प्रति-वर्ष प्रति नोकरी दी जाती थीं वह बहुतसे नोकरों मे कीतनेक मट्टीके घडे, अधघडे, झारी, कलंजरा, आदि अनेक प्रकारके वरतन बनातेथे, कितनेक नोकर पोलासपुरके राजमार्गमें बैठके वह घडादि मट्टीके वरतन प्रति-दिन वेचा करतेथे, इसीपर शकडालकुंभकारकी आजीविका चलतीथी।

शकडालकुंभकार आजीवका मतिया अर्थात् गोशालाका उपासक था। वह गोशालेका मतके अर्थको ठीक तौरपर ग्रहण कियाथा यावत् उसकी हाडहाड की मींजी गोशालाके धर्मसे प्रेमानुरागता हो रहीथी, इतना हि नहीं बल्के जो अर्थ तथा परमार्थ जानताथा तो एक गोशालाका मतको ही जानताथा, शेष सर्व धर्मवालोंको अनर्थ ही समझता था, गोशालेका धर्ममें अपना आत्माको भावता हुवा सुखपूर्वक विचरताथा।

एकदिन मध्याह्नके समय शकडालकुंभकार अशोक वाडीमें जाके गोशालेका मत था उसी माफक धर्म प्रवृत्तिमें वर्त रहा था। उस समय एक देवता शकडालके पास आया, वह देव आकाशमें रहा हुवा जिन्होंके पावोंमें घुघर गमक रहीथी। वह देव शकडालकुंभकार प्रति बोलता हुवा कि हे शकडाल! महामहान जिसको उत्पन्न हुवा है केवलज्ञान केवल दर्शन तथा भूत भविष्य वर्तमानको जानने वाले, जिन=अरिहंत=केवली सर्वज्ञ, त्रैलोक्य पूजित, देव मनुष्य असुरादिको अर्चन वन्दन पूजन करने योग्य, उपासना-सेवा-भक्ति करने योग्य, या-

५ पर्कीकि स्तुति.

श्रीमद्वीरजिनेश औवड कृत श्रीतोरणालंकृत ।
प्रासादे वररत्न कीर्ति गुरुणा संस्थापित सौख्यदः ॥
संसिक्त शुभ कामधेनु पयसा नोवेदित केनचित् ।
तं वन्दे शुभ कारणं दरहरं श्रीत्रैशलेयं मुदा ॥ १ ॥
मुक्ति श्री सुखसंग लीन मनसो मिथ्यात्व मोहान्तकान् ।
बुद्धान् मानव देवदानव गणेशान् सर्वदानर्हतः ॥
संसारार्णव पारगामि विनतान दुष्टाष्ट कर्म च्छिदः ।
वन्दे भूत भविष्य भाविक भवान् तीर्थाधिपान् सर्वदा ॥ २ ॥
या जीवादि विचारतत्त्व निपुणा तीर्थंकरा स्यात्स्तता ।
श्रीमद्वीरगणि प्रधान विधृता क्षीणाष्टकर्म व्रजा ।
बह्वर्थाल्पक वर्णका व्रत फला भावप्रदीपोज्वला ।
सान्निध्यं श्रुतदेवता भगवती संघे विधत्तात्सदा ॥ ३ ॥
श्रीरत्नप्रभसूरि सौम्य वचसा तत्त्वेन संबोधिता ।
औपकेश गणेश शासनसूरी दत्तात्यदं संपदाम् ॥
या चाष्टादश गौत्रकेषु रचिते सुश्रावकरच्यते ।
सा देवी दुरितौ घनाशन करी संघस्य भूयाच्छुभा ॥ ४ ॥

६ सिद्धचक्रकि स्तुति.

चन्दरवो बांधीने त्रीघडे, सिद्धचक्र थापीजेजी ।
पांच वरणको मंडल मांडी, स्नात्रमहोत्सव कीजेजी ॥

एक समय शकडाल अपने मकानके अन्दरमे बहूतसे मट्टीके वरतनोको बाहार धूपमे रख रहाथा, उन्ही समय भगवान शगडालसे पुच्छा कि हे शकडाल! यह मटीके वरतन तुमने कैसे वनाया है? । शकडालने उत्तर दिया कि हे भगवान पहिले हम लोग मटी लायेथे फीर इन्होंके साथ पाणी गम्बादिक मीलाके चक्रपर चडाके यह वरतन वनाये है।

हे शकडाल! यह मटीके वरतन तैयार हुवा है वह उत्थानादि पुरुषार्थ करनेसे हुवे है कि विन पुरुषार्थसे।

हे भगवान! यह सर्व नित्यभाव है भवीतव्यता है इस्में उत्थानादि पुरुषार्थकी क्या जरूरत है।

हे शकडाल! अगर कोइ पुरुष इस तेरे मटीका वरतनको कीसी प्रकारसे फोडे तोडे इधर उधर फेंक दे चौरीकर हरन करे तथा तुमारी अग्रमित्ता भार्यासे अत्याचार अर्थात् भोगविलास करता हो तो तुम उन्ही पुरुषको पकडेगा नही दंड करेगा नही यावत् जीवसे मारेगा नही तब तुमारा अनुत्थान यावत् अपुरुषार्थ और सर्व भाव नित्यपणा कहना ठीक होगा. (ऐसा वरताव दुनियांमे दीसता नहीं है। यह एक कीस्मकी अनीति अत्याचार है और जहांपर अनीति अत्याचार हो वहांपर धर्म केसे हो सक्ता है) अगर तुम कहोगा कि मैं उन्ही नुकशान कर्ता पुरुषको मारुंगा पकडुंगा यावत् प्राणसे घात करूंगा तो तेरा कहना अनुत्थान यावत् अपुरुषाकार सर्व भाव नित्य है वह मिथ्या होगा । इतना सुनतेही शकडाल को ज्ञान हो गया कि भगवान फरमाते है वह सत्य है क्यो कि पुरुषार्थ विना कीसी भी कार्यकी सिद्धि नही होती है। शकडालने कहा कि हे भगवान मेरी इच्छा है कि मैं आपके मुखारविन्दसे विस्तारपूर्वक धर्म

गुण निलो गीरिवर आगम महाभावन्त ॥
भावे करि नम तो पामे भवनो अन्त ॥ २ ॥
जिनवरकी वाणि अनन्त सुखोंकि खाण ।
कमलेगच्छनायक देवगुप्त सूरी जाण ॥
उपदेशे करायो पन्दरमो उद्धार ।
समरा शाहा श्रावक लीधो लाभ अपार ॥ ३ ॥
चक्रेश्वरी देवी करती सार संभाल ।
सहु संघना संकट दुर करे ततकाल ॥
उपकेशगच्छ मंडन रत्नप्रभ सूरी राय ।
तस्सपद पंकज सेवक ज्ञानसुन्दर गुण गाय ॥ ४ ॥

८ ओशीयां तीर्थकी स्तुति.

अश्वसेन नरेश्वर वामा देवी माय ।
अहि लंन्छन पार्श्व निलवरण तस्स काय ॥
शुभ[1] हरिदत्त[2] आयरिय[3] केशी श्रमण[4] कुमार ।
स्वयंप्रभ[5] रत्नप्रभ[6] छटे पाट मंझार ॥ १ ॥
उपकेशे पटण पधारया गुरु राय ।
औवड दे मंत्री वीर प्रासाद कराय ॥
गाउ दुद्ध वेलुथी मूर्त्ति श्री महावीर ।
प्रतिष्ठा कीनी नमतो भवजल तीर ॥ २ ॥
गुरु रत्नप्रभसूरी चवदापूर्वके धार ।

र आदि पदार्थके अच्छे ज्ञाता हो गये थे। और श्रावकव्रतको अच्छी तरहसे पालते हुये भगवानकी आज्ञाका पालन कर रहे थे।

यह वार्ता गोशालाने सुनि कि शकडाल० वीरप्रभुका भक्त बन गया है तब वहांसे चलकर पोलालपुरको आया। उसका विचार था कि शकडालको समझाके पीछा अपने मतमें ले लेना। गोशालाने अपने भंडोपकरण रखके सिधा ही शकडाल पुत्र श्रावकके पास आया। किन्तु शकडाल श्रावकने गोशालाको आदर-सत्कार नहीं दिया, इतना ही नहीं किन्तु मनमें अच्छा भी नहीं समझा और बुलाया भी नहीं तब गोशालाने विचारा कि इन्हीके दुकानों सिवाय कोइ उतारोकी जगा भी नहीं है इसके लिये अब भगवान महावीर स्वामिका गुण कित्तन करने के विना अपनेको उतारनेको स्थान मीलना मुशकील है। ऐसा विचार कर गोशाला, शकडाल श्रावक प्रति बोला-क्यों शकडाल पुत्र! यहांपर महा महान आये थे?

शकडाल बोला कि कौनसा महा महान?

'गोशालाने कहा कि भगवान वीरप्रभु महा महान।

शकडाल बोला कि कीस कारणसे महामहान?

गोशाला बोला कि भगवान महावीर प्रभु उत्पन्न केवलज्ञान केवल दर्शनके धरनेवाले त्रैलोक्य पूजनीय यावत मोक्षमें पधारने वाले हैं (जिसका उपदेश है कि महणो महणो) वास्ते भगवान वीरप्रभु महामहान है।

गोशाला बोला कि हे शकडाल! यहां पर महागोप आये थे?

शकडालने कहा कि कौन महागोप?

गोशालाने कहा कि भगवान वीरप्रभु महागोप?

नन्दीश्वर द्विपे मोहने जीपे, सुरवर कोडा कोडी जी।
भक्ति राचे नाटिक नाचे, पूजे होडा होडी जी।
उपकेशगच्छराजे रत्न विराजे गाजे ज्ञान सवायो जी।
सिद्धायका देवी सान्निधकारी पर्व पर्युषण आया जी ॥ ४ ॥

(१०)

वीरं देवं नित्यं वन्दे ॥ १ ॥
जैनाः पादा युष्मान् पान्तुः ॥ २ ॥
जैनं वाक्यं भूयाद् भूत्यैः ॥ ३ ॥
सिद्धा देवी दद्यात्सौख्यम् ॥ ४ ॥

स्तवन संग्रह.

१ बीजका स्तवन.

देशी पीणियारीकि.

अजित जिनेश्वर पूजीये। भव प्राणीरे लो, जिन पूज्यां जिन थाय, गुणखाणीरे लो। टेर। समोवसरण सुरवर रच्यो भव प्राणीरे लो, बेठा हे अजित जिनेन्द, गुणखाणीरे लो ॥१॥
अष्ट प्रतिहारज शोभता भ० सेवे इन्द्र नरिन्द, गु० ॥ २ ॥
स्याद्वाद अमृत जीसी भ० मीटडि जिनवर वाण, गु० ॥ ३ ॥
नय निक्षेप परमाणसु भ० कारण कारज जाण, गु० ॥ ४ ॥

शकडालने कहा कि कौन महा निर्जामक ?

गोशालाने कहा भगवान वीरप्रभु महा निर्जामक हैं।

शकडालने कहा किस कारणसे ?

गोसालाने कहा कि संसार समुद्रमें बहुतसा जीव डुबते हुवे को भगवान वीरप्रभु धर्मरुपी नावमें बेठाके निवृत्तिपुरीके सन्मुख कर देते हैं वास्ते भगवान वीरप्रभु महा निर्जामक है।

शकडाल बोला कि हे गोशाला ! इस वखत तुं मेरे भगवानका गुणकीर्त्तन कर रहा है यथा गुण करनेमे तु निनिज्ञ है विज्ञानवन्त है तो क्या हमारे भगवान वीरप्रभुके साथ विवाद (शास्त्रार्थ) कर सकेगा ?

गोशालाने कहा कि मैं भगवान वीरप्रभुके साथ विवाद करनेको समर्थ नहीं हुं।

शकडाल बोला कि किस कारणसे असमर्थ है।

गोशाला बोला कि हे शकडाल ! जैसे कोइ युवक मनुष्य बलवान यावत विज्ञानवन्त कलाकौशल्यमें निपुण मजबुत स्थिर शरीरवाला होता है वह मनुष्य एलक, सुवर, कुकड, तीतर, भटेवर, लाहाग, पारेवा काग, जलकागादि पशुवोंके हाथ, पग, पांख, पुच्छ श्रृंग, चर्म, रोम आदि जो जो अवयव पकडते है वह मजबुत ही पकडते है। इसी माफीक भगवान वीरप्रभु मेरे प्रश्न हेतु वगरणादि जो जो पकडते है उन्हींमें फीर मुझे बोलनेका अवकाश नही रहते है। अर्थात उन्होंके आगे मैं कोनसी चीज हुं। वास्ते हे शकडाल ! मैं तुमारे धर्माचार्य भगवान वीरप्रभुके साथ विवाद करनेको असमर्थ हुं।

यह सुनके शकडालपुत्र श्रावक बोला कि हे गोशाला ! तु

दोहा ॥ मति अठावीस श्रुति चौदा, अवधि भेद असंख्य, दोय भेद मनःपर्यव दाख्या, पंचमपद निःकलंक, एकलो कहिये केवलज्ञान ॥ सु० ॥२॥ ज्ञान या गुरुनाम गोपे, आगम और अर्थकों लोपे, पढतोंकों अन्तराय देवे, अक्षर पद अविनयसे लेवे ॥ दोहा ॥ करे आसातना ज्ञानकि, भगवती अधिकार, ज्ञानी उपर द्वेष मच्छरता, ते रूलिया संसार, आत्मा इम पांमी अज्ञान ॥ सु० ॥ ३ ॥ आसातना ज्ञानकि करता. पशु जिम चौरासी भमता, अहिंस्या सिद्धान्ते भाखी, ज्ञानके पीच्छेही राखी ॥ दोहा ॥ देश आराधि क्रिया कही, सर्व आराधि ज्ञान, ज्ञान आराधन कारणे सरे, इम भाखे भगवान्-चढावो ज्ञानद्रव्य ओर ज्ञान ॥ सु० ॥ ४ ॥ शुक्लपक्ष पंचमि साधो, भलीपरे ज्ञान आराधो, ज्ञानसे क्रिया भी शोभे, दर्शनसे कबी नहीं चोभे ॥ दोहा ॥ कर उजमणो भावसे, राखो चित्त उद्धार, सूत्र लिखावो ज्ञान सीखावो,-उपकरण दो श्रीकार= जिन्होंसे पामो निर्मल ज्ञान ।सु०।५। घातकी खंड मझारी, सुन्दरी जिनदेवकि नारी. ज्ञानके उपकरण दीधा वाल, हुई गुणमंझरी वे हाल ॥ दोहा ॥ आचारज वासुदेवजी दीयो कर्म झकझोर, ज्ञान उपरे द्वेष करंतो, वाध्या कर्म कटोर= वरियो वरदत्तजी अज्ञान ॥ सु० ॥ ६ ॥ आराधी पंचमि भारी, उपन्ना सर्ग मझारी, विदहमे ओर भी धारी, मोक्ष गया केवल ले लारी, ॥ दोहा ॥ इम अनेके उद्धरया आगममे

(८) आठवा अध्ययन महाशतकाधिकार।

राजगृह नगर, गुणशील्ला उद्यान, श्रेणिक राजा, उन्ही नगरमे महाशतक गाथापति बडा ही धनाढ्य था, जिन्होंकि रेवंती आदि तेरा भार्यायों थी। चौवीस क्रोडका द्रव्य था, जिन्होमें आठ क्रोड धरतीमें, आठ क्रोड वैपारमें, आठ क्रोड घरविखरामें और आठ गोकुल अर्थात अस्सी हजार गायों थी। और महाशतकके रेवंती भार्याकि उसके बापके घरसे आठ क्रोड सोनैया और अस्सी हजार गायों दानमें आइ थी तथा शेष बारह भार्यावोंकि बापके घरसे एकेक क्रोड सोनैया और दश दश हजार गायो दानमें आइ थी। महाशतक नगरमें एक प्रतिष्ठित माननिय गाथापति था।

भगवान वीरप्रभुका पधारणा राजगृह नगरके गुणशील उद्यानमे हुवा। श्रेणिक राजा तथा प्रजा भगवानको वन्दन करनेको गये। महाशतक भी वन्दन निमित्त गया। भगवानने देशना दी। महाशतकने आनन्दकी माफीक सम्यक्त्व मूल बारह व्रतोच्चारण कीया परन्तु चौवीस क्रोड द्रव्य और तेरह भार्यावो तथा कांसीपात्रसे द्रव्य देना पीच्छा दुगुनादि लेना, एसा वैपार रखा शेष त्याग कर जीवादिपदार्थका जानकार हो अपनि आत्मरमणताके अन्दर भगवानकी आज्ञाका पालन करता हुवा विचरने लगा।

एक समय रेवंती भार्या रात्रि समय कुटुम्ब जागरण करती एसा विचार किया कि इन्ही बारह शोक्योंकि कारणसे मैं मेरा पति महाशतकके साथ पांचो इन्द्रियोंका सुख भोगविलास स्वतन्त्रतासे नहीं कर सकुं. वास्ते इन्ही बारह शोक्योंको अग्निविष तथा शस्त्रके प्रयोगसे नष्ट कर इन्होंकि एकेक क्रोड सोनैया तथा

उत्तम कुल माहे आय, सुर नन्दिश्वर जाय, पूजे हरष भरी पूजे हरष भरी । (मीलत) चवन कल्याणक काहा जिनेन्दका आगे जनम सुनावेगे । जिन । १ । जिनवर जनम्यों तीन लोकमे जीव गणा सुख पावे है । सुरइन्द्र आवी प्रभुकों मेरू-गिरि ले जावे है । चौष्ट इन्द्र मिलि विद्याधर, जिनका मोह-त्सव करावे है, तीर्थसमुद्र, नदीसे निर्मल जल वर लावे है । चन्दन चुरण पुष्प औषधी देवा हर्ष उमावे है । पंचामृतसे प्रभुको प्रेम प्रक्षाल करावे है । (छुट) आठ सहस चौष्ट कलसा, आगममे अधिकार जी । पंचवीस योजन लम्बा कह्या एक एकनो विस्तारजी, बारा योजन चोडा कह्या, एक योजन नालो लोधारजी, प्रभुकों न्हवण करावतों. वारि इन्द्र हरष अपारजी । (सेर) ये- गावे नाचे सिंहनाद करे देवा। भलोये गावे० । ज्यारे उछरंग दील अपार, मिली प्रभुसेवा । केइ सोनो चन्दी रत्न रह्या वरषाई । भलोये केइ । केइ भूषण लीधा हाथके लो–लो भाई । (दोड) कीयो जनम कल्याण, माता पासे रख्या आण, गया नन्दिश्वर थान, आंगी पूजा करे । आंगी पूजा करे । शुभ कर्मोंके संयोग, प्रभु भोगविया हे भोग, आये लोकान्तिक लोग, प्रभु दीक्षावरे प्रभु दीक्षावरे। (मिलत) तीन कल्याणका हूवे जिनेन्द्रके अब केवल दरसा-वेगे। जिन० । २ । जब उपजे है ज्ञान जिनन्दकों सूरवर आवे कोडाकोड । रत्न रजत सुवर्णका देवा समौसरण रेच होडाहोड।

भोग नही भोगवते हो। एसा वचन सुनके महाशतक रेवंतीके वचनोंको आदरसत्कार नहीं दीया और बलाभी नही और अच्छा भी नही जाना, मोन कर अपनी आत्मरमणतामे ही रमण करने लगा। कारण यह सर्व कर्मा की विटम्बना है अज्ञानके जरिये जीव क्या क्या नहीं करता है सर्व कुच्छ करता है। रेवंतीने दो तीन वार कहा परन्तु महाशतकने बीलकुल आदर नही दीया वास्ते रेवंती अपने स्थान पर चली गइ।

महाशतकने श्रावककि इग्यारा प्रतिमा वहन करनेमें साढा पांच वर्ष तक और तपश्चर्या कर अपने शरीरको सुके भुखे लुखे बना दीया अन्तिम आलोचना कर अनशन कर दीया। अनशनके अन्दर शुभाध्यवशाया विशुद्ध परिमाण प्रशस्थ लेश्या होनेसे महाशतकको अवधि ज्ञानोत्पन्न हुवा। सो पूर्व पश्चिम और दक्षिण दिशामें हजार हजार योजन और उत्तर दिशामें चुल हेमवन्त पर्वत उर्ध्व सौधर्म देवलोक अधो प्रथम रत्नप्रभा नरकका लोलुच नामका पाथडाकि चोरासी हजार वर्षोकि स्थिति नरकके क्षेत्रको देखने लगा।

रेवंती और भी उन्मत होके महाशतक श्रावक अनशन करा था वहा पर आइ और भी एक दो तीन वार असभ्य भाषासे भोग आमन्त्रण करी। उन्ही समय महाशतकको क्रोध आया और अवधिज्ञानसे देखके बोलाकि अरे रेवंती! तु आजसे सात अहो-रात्रीमे अलसके रोगके जरिये आर्तरौद्र ध्यानमें असमाधिसे काल करके प्रथम रत्नप्रभा नरकके लोलुच नामके पाथडेमे चो-रासी हजार वर्षोकि स्थितिवाले नैरियेपने उत्पन्न होगी। यह वचन सुनके रेवंतीको वडा ही भय हुवा त्राम पामी उद्वेग प्राप्त हुवा विचार हुवा कि यह महाशतक मेरे पर कुपित हुवा है न

दुसरे ज्यारों नाम लियों निस्तारजी, आर्यसमुद्र समुद्र जीसा तीजे पट मझारजी, राजकुमर दीक्षा लीवी वह केशी श्रमण कुमारजी। (सेर) श्रीमाली और पोरवालके कर्ता। भलोये श्रीमाली०। सयंप्रभसूरीश्वर पट पंचमे धरता। ये रत्नप्रभसूरी हूवे रत्न अवतारी। भलोये रत्न०। वीर निर्वाणसे वर्ष बावन पट धारी। (दोड) हुवे चौदा पूर्वके धार, आये उपकेश पटण मझार, तीनलक्ष चौरासीहजार, सबकों जैनी कीया-सबकों जैनी कीया। गुरुकि परम्परा पट धारी, हूवे वढे वढे आचारी, जिन्हाका नाम लेवे नरनारी, ज्यांके आनन्द गडी-ज्यांके मंगल गडी। (मिलत) ज्ञान कहे शिव सुखके दाता प्रभु गुण मिलके गावेगा। जिन।४। इति।

४ एकादशीका स्तवन.

मल्लिजिन मन मेरो मोह्यो मूर्ति देखी नाथ तुमारी पातिक सब खोयोरे मल्लिजिन०। टेर। मथीला नगरी कुंभ-रायकी, प्रभावतीराणी, मिगसर शुद्धि एकादशी जनम्या, सुख पायो प्राणीरे मल्लि। १। तीन लोकमें रूप अनुपम, प्रभु अतिशय धारी, तो पण पूर्व कर्म संयोगे, वेद धरचो नारीरे म०। २। षट् मंत्री प्रतिबोधन काजे, अवधिसे जाणी, मोहन घर कनकमय प्रतिमा, आप रूप ठाणीरे म०। ३। सुन्दर रूप बनी जो पुतली, थोथा ढकवाली, भोजन ग्रास एक

(९) नववां अध्ययन नन्दनीपिताधिकार ।

सावत्थी नगरी कोष्टकोद्यान जयशत्रु राजा । उन्ही नगरीमें नन्दनीपिता गाथापती था उन्हों के अश्वनि नामकी भार्या थी और बारह क्रोड सोनइयाका द्रव्य तथा चार गौकुल अर्थात् चालीस हजार गायों थी जैसे आनन्द ।

भगवान पधारे आनन्दकी माफीक श्रावक व्रत ग्रहण किये साधिक चौदा वर्ष गृहस्थावासमें श्रावक व्रत पालन कीये साढा पांच वर्ष श्रावक प्रतिमा वहन करी अन्तिम आलोचन कर एक मासका अनशन कर समाधिपूर्वक काल कर सौधर्म देवलोकके अरुणगवे वैमानमें च्यार पल्योपम स्थितिके देवता हुवा। वहांसे आयुष्य पूर्ण कर महाविदेह क्षेत्रमे मोक्ष जावेगा । इतिशम ।

(१०) दशवां अध्ययन शालनीपिताधिकार ।

सावत्थी नगरी कोष्टकोद्यान जयशत्रु राजा । उन्हीं नगरीमें शालनीपिता नामका गाथापति वसता था । उन्होंके फाल्गुनि नामकी भार्या थी । बारह क्रोड सोनइयाका द्रव्य और चालीस हजार गायों थी ।

भगवान पधारे आनन्दकी माफीक श्रावक व्रत ग्रहण किये । साढा चौदा वर्ष गृहस्थावासमें श्रावक व्रत. साढा पांच वर्ष श्रावक प्रतिमा वहन करी अन्तिम आलोचन कर एक मासका अनशन कर समाधिपूर्वक काल कर सौधर्म देवलोकमें अरुणकिल वैमानमें च्यार पल्योपमकी स्थितिमें देवतापणे उत्पन्न हुवे वहां

लाक्ख पचासए । सागर जिन शासन वासए ॥ ऋषभ जिनेश्वर वंसए । उवभझाय सरोवर हंसए ॥ ३ ॥ तिण अवसर तीहां राजीयोए । राजा जयशत्रु जिहां गाजीयोए ॥ विजिया तस्स घर नारए । बेहु रमत पासा सारए ॥ ४ ॥ कूखे जिण अव- तारए । तिण राय मनायो हारए ॥ उदर वस्या दश मासए । प्रभु पूरीजननी नी आसए ॥५॥ बहु जन मन अनन्दीयोए । सुत नाम अजियजीण तां दियोए ॥ तिहुअण सयल उत्साहए । क्रम २ वधे जगनाहयए ॥ ६ ॥ हंस धवल सारस तणीए । गति सुललितनि जगत रंजणीए ॥ मलपति चाले गेलए । जाणे नैण अमीयरस रेलए ॥ ७ ॥ अवर न समो संसार ए । वले ज्ञान विवेक विचारए ॥ गुण देखी गज गह गयोए । लंछण मिसी पगलागी रयोए ॥८॥ जोवनमें जव आवीयोए । तव वर रमणी परणावीयोए ॥ प्रिय साधे सहु काजए । प्रभु पाले पुहेवी राजए ॥ ९ ॥ हिवे हथनापुर ठामए । विश्वसेन नरेसर नामए ॥ राणी अचलादेवए । मनोहर सुख माणे सेयए ॥१०॥ चउ दह सुमा परवर्याए । अचिराकूखे सुत अवतर्याए॥ मानव देव वखाणीयोए । चक्रीश्वर जिनवर जाणीयोए ॥११॥ देश नगर हुई शान्तए । जिणे नाम दियो श्री शान्तए ॥ जिन गुण कुण जाणे कहीए । त्रिभुवनमें तसु ओपमा नहींए ॥१२॥ नैण सलुणो हिरण लोए । वन सिंहऽत्रीए एकलोए ॥ नैण

१५ धर्म महात्म स्तवन.

जगमे मीठोरे मीठो मीठो केवलीयोंरो धर्म, जगमें मीठोरे ॥ टेर ॥ कल्पवृक्ष मनःवंच्छितपुरे, चिंतामणि सर्वचिंताचुरे, पुरे मनोरथ माल जगमे मीठोरे ॥ १ ॥ कामकुंभ जिम कामनापुरे, चित्रावेल्लि रहे नहीं दुरे, सुखसंपत्ति श्रीकार, जगमें मीठोरे ॥ २ ॥ तीन दिवसको भुखो प्राणी, खीरखंड जीमे आनन्द आणी, प्यासाने सुधारस पान, जगमें मीठोरे ॥ ३ ॥ अनन्तकालको चउगति भमतो, दंडक माहे नाटक करतो, आज मील्यो शुद्ध धर्म, जगमें मीठोरे ॥ ४ ॥ शुद्ध देवगुरु धर्म परखीयां आगम कसोटीकर ओलखीयो, ज्ञान सदा जयकार, जगमे मीठोरे, मीठो मीठो केवलीयोंरो धर्म जगमें मीठोरे ॥ ५ ॥ इति

जयवीयराय.

जय वीयराय जगगुरु, होउममं तुह पभावओभयवं ।
भव निव्वेऊ मग्गणु-सारिया इठ फल सिद्धी ॥ १ ॥
लोग विरुद्धचाऊ गुरुजण पूआ परत्थ करणंच ।
सुहगुरु जोगो तव्वय-णसेवणा आभवमखंडा ॥ २ ॥
वारिज्जइ जइवि निया-णबंधणं वीयराय तुहसमए ।
तहवि ममहुज्ज सेवा, भवे भवे तुम्ह चलणाणं ॥ ३ ॥

इणपर वेहु तीर्थंकराए । चिर पाली राज भली पराए ॥ जाणी अवसर साराए । वेहु लीधो संयम भाराए ॥ २४ ॥ वेहु त्तम शम दम धीरम धरीए । वेहु मोह माया मद परिहरीए ॥ वेहु जिन जाण समानए । वेहु पाम्या केवल ज्ञानए ॥ २५ ॥ वेहु देव कोडे महीए । वेहु चौतीस अतीसय सहीए ॥ समोसरण वेहु ठाणए । वेहु जोजन वाणी वखाणए ॥ २६ ॥ नाचत रणकत नेवरीए । वेहु आगल इन्द्र अन्तेवरीए ॥ टिगमिग जोवे जग सहुए । रंगे गुण गावे सुरवहुए ॥ २७ ॥ वेहु शीर छत्र चामर वीमला । वेहु पगतल नवसोवन कमला ॥ वेहु जिन तणो विहारए । तिहां रोगने सोग निवारए ॥ २८ ॥ वेहु उवयर भुवण वरीए । वेहु सिद्ध रमणी सयंवरीए ॥ वेहु भंजीयो भव कन्दए । वेहु उदय परमानन्दए ॥ २९ ॥ इम बीजोने सोलमोए । जाणे चिन्तामणी सुरतरु समोए ॥ थुणीये ती सांझ वीहाणए । तिहा न पडे भवनो वीहाणए ॥ ३० ॥ वेहु उत्सव मंगल करणा । वेहु संघ सयल दुःख दूरहरणा ॥ वेहु यर कमल वयणा नयणा । वेहु श्री जिन राज भुवण रयणा ॥ ३१ ॥ इम भक्ति वालम थुईए । श्री अजिय शान्ति जिन थुई भणीए ॥ सरणवेहु जिन पायए । श्री मेरु नन्दन उवभझयए ॥ ३२ ॥ इति.

—∘(◎)∘—

प्रतिष्टाको प्राप्त कर अपना नाम "दुयमच्चे" एसा विश्व व्यापक कर दीया था।

उसी यक्षायतनके नजीकमें सुन्दर मूल स्कन्ध कन्द शाखा प्रतिशाखा पत्र पुष्प फलसे नमा हुवा श्रमको दुर करनेवाला शीतल छाया सहित आशोक नामका वृक्ष था। जीसके आश्रयमें दुपद चतुष्पद पशु पंखी अति आनंद करते थे।

उसी अशोक वृक्षके नीचे मेघकी घटाके माफीक श्याम वर्ण सुन्दराकार अनेक चित्रविचित्र नाना प्रकारके रुपोंसे अलंकृत सिंहासनके आकार पृथ्वीशीला नामका पट था। इन्ही सबका वर्णन उववाई सूत्रसे देखना।

द्वारका नगरीके अन्दर न्यायशील सूरवीर धीर पूर्ण पराक्रमी स्वभुजावोंसे तीन खंडकी राज्यलक्ष्मीको अपने आधिन कर लीथी। सुरनर विद्याधरोंसे पूजित जिन्होंका उज्वल यश तीन लोकमें गर्जना कर रहा था। उत्तरमें वैताड्यगिरि और पूर्व पश्चिम दक्षिणमें लवण समुद्र तक जिन्होंका राजतंत्र चल रहा है एसा श्रीकृष्ण नामका वासुदेव राजा राज कर रहा था। जिस धर्मराज्यमे बडे बडे सत्वधारी महान पुरुष निवास कर रहे थे। जैसे कि समुद्रविजयादि [1]दश दसारेण राजा, बलदेव आदि पच महावीर, प्रद्योतन आदि साढा तीन क्रोड केमरीये कुमर, साम्ब आदि साठ हजार दुर्दांत राजकुमार।

महासेनादि छपन्नहजार बलवन्त वर्ग, वीरसेनादि एकवीसहजार वीरपुरुष उग्गरसेनादि सोलाहजार मुगटबन्ध राजा हा-

---

1 समुद्रविजय, अक्षोभ, स्तिमीत, सागर, हेमवन्त, अचल, धरण, पुरण, अभिचन्द वसुदेव इन्ही दशो भाइयोंको शास्त्रकारोंने दश दशारणके नामसे बोलाया है।

७ श्री आदेश्वर भगवान् स्तवन.

म्हांसू मूंडे बोल, बोल बोल आदेश्वरवाला। कांइ थारी मरजीरे ॥ म्हांसू० ॥ टेर ॥ माता मरुदेवी वाट जोवतां, इत्तने बधाई आई रे। आज ऋषभजी उतर्या बागमें, सुण हरखाईरे ॥ म्हां० १ ॥ नाय धोयने गज असवारी, करी मरुदेवी मातारे। जाय बागमें नन्दन निरख्यो, पाई सातारे ॥ म्हां० २॥ राज छोडने निकल्यो ऋषभा, आ लीला अद्भुतीरे। चमर छत्र ने और सिंहासण, मोहनी मूर्तिरे ॥ म्हां० ३ ॥ दिनभर बैठी वाट जोवती, कदम्हारो ऋषभा आवेरे, केहती भरतने आदिनाथकी, खबरां लावोरे ॥ म्हां० ४ ॥ किसा देशमें गयो बालेश्वर, तुज विन वनिता सुनीरे। बात कहो दिल खोल लालजी, क्यूं बण्या मूनीरे ॥ म्हां० ५ ॥ रह्या मजामें है सुखसाता, खूब किया दिल चाहायारे। अब तो बोल आदेश्वर म्हासू, कल्पे कायारे ॥ म्हां० ६ ॥ खैर हुई सो होगई बाला, बात भली नहीं कीनी रे। गया पीछे कागद नहीं दीनो, म्हारी खबर न लीनीरे ॥ म्हां० ७ ॥ ओलंभा मै देवूं कठा लग, पाछो-क्यों नहीं बोलेरे। दुःख जननीको देख आदेश्वर, हिवडे तोलेरे ॥ म्हां० ८ ॥ अनित्य भावना भाई माता, निज आतमने तारीरे। केवल पांमी मोक्ष सिधाया, ज्यांने वंदणा हमारी रे ॥ म्हां० ९ ॥ मुक्ति का दरवाजा खोल्या, मरुदेवी मातारे। काल असंख्या रह्या उगाडा, जंबू जड गया जातां रे

अब निद्रा लेनेमें कोइ खराब स्वप्न होगा तो मेरा सुन्दर स्वप्नका फल चला जावेगा वास्ते अब मुझे निद्रा नही लेनी चाहिये। किन्तु देवगुरुका स्मरण ही करना चाहिये। एसा ही कीया।

इधर अन्धकवृष्णि राजा सूर्योदय होने ही अनुचरोंसे कचेरीकी अच्छी श्रृंगारकी सजावट करवाके अष्ट महानिमित्तके जाननेवाले सुपनपाठकोंको बुलवाये उन्होका आदर सत्कार पूजा करके जो धारणी राणीको सिंहका स्वप्न आया था उन्होका फल पुच्छा। स्वप्नपाठकोंने ध्यानपुर्वक स्वप्नको श्रवण कर अपने शास्त्रोका अवगाहन कर एक दुसरेके साथ विचार कर राजासे निवेदन करने लगे कि हे धराधिप! हमारे स्वप्नशास्त्रमें तीस स्वप्न महान फल और बेंयालीस स्वप्न सामान्य फलके दाता है एवं सर्व बहुत्तर स्वप्न है जिस्मे तीर्थंकर चक्रवर्तिकी माताओ तीस महान स्वप्नसे चौदा स्वप्न देखे। वसुदेवकी माता सात स्वप्न देखे। बलदेवकी माता च्यार और मंडलीक राजाकी माता एक स्वप्न देखे। हे नाथ! जो धारणी राणी तीस महान स्वप्नके अन्दरसे एक महान स्वप्न देखा है तो यह हमारे शास्त्रकी बात निःशंक है कि धारणी राणीके गर्भदिन पुर्ण होनेसे महान शुरवीर धीर अखिल पृथ्वी भोक्ता आपके कुलमें तीलक ध्वज सामान्य पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। यह बात राणी धारणी भी कीनातके अन्तरमें बैठी हुइ सुन रही थी। राजा स्वप्नपाठकोंकी बात सुन अति हर्षित हो स्वप्नपाठकोंको बहुतसा द्रव्य दीया तथा भोजन कराके पुष्पाकी माला विगेरा देके रवाना किया। बादमें राजाने राणीसे सर्व बात कही. राणी सहर्ष बात को स्वीकार कर अपने स्थानमें गमन करती हुई।

राणी धारणी अपने गर्भका पालन सुखपुर्वक कर रही है।

हाथमें लीनो, मिथ्या मोह विदारी; भाग गई सब फोज मोहकी, मिलगई सुमति नारी हो ॥ ल० ॥ ६ ॥ लोक लडाई करे जगतमां, निकले नहि कछु सार; मेरा प्रभुसे करी लडाई, हाथ पकड दीयो तार हो ॥ ल० ॥ १० ॥ पोष सुदी आठम चोवोतर, संघ चतुर्विध आयो; ज्ञानसुन्दर जिनभक्तिको रंग, रांणपुरे वरपायो हो ॥ ल० ॥ ११ ॥

९ श्री समीनाखेडा पार्श्वनाथ.

हां पास मन लागे प्यारो, ज्ञानसुन्दरकों जल्दी तारो, उदयापुरके पासमे समीनावालोरे. टेर. सेहर सादडीसे मे आया, संघ चतुर्विध साथे लाया, जाता केशरीयानाथके, समीने आयारे ॥ पास ॥ १ ॥ संप्रतिराजा मन्दिर करायो, पूरण पुण्यभंडार भारायो, यात्रा कीनी नाथकी मन आनन्द आयोरे ॥ पास ॥ २ ॥ शान्तमुद्रा मोहनगारी, आंगी रचाई श्रावक भारी; एक नावाके मांयने तार्या नरनारीरे ॥ पास ॥ ३ ॥ आतमअनुभव चगोपसम जागी, कुमतिनार गइ जद भागी; सुमति सखीकी सेजमे पीतडली लागीरे ॥ पास ॥ ४ ॥ सिद्धचक्रकी पूजा भणीजे, आनन्द रंगमंगल वरतीजे; ज्ञानसुन्दर रसप्रेमका भरप्याला पीजेरे ॥ पास ॥ ५ ॥ इति.

१० श्री धुलेवा केशरीयानाथ

हां केशरीयो कामणगारो, मनडो मोह्यो नाथ हमारो;

त्राणु (१९२) बोलोंको दायचो जिन्होंकी क्रोडों सोनैयोंकी किंमत है एसी गजलीलामें दम्पति देवतावोंकी माफीक कामभोग भोगवने लगे। तांके यह भी मालम नहीं पडता था कि वर्ष, मास, तीथी और वार कोनसा है।

एक समयकी वात है कि जिन्होंका धर्मचक्र आकाशमें चल रहा है। भामंडल अज्ञान अन्धकारको हटाके ज्ञानोद्योत कर रहा है। धर्मध्वज नभमें ल्हेर कर रही है सुवर्णकमल आगे चल रहे है। इन्द्र और करोडों देवता जिन्होंके चरणकमलकी सेवा कर रहे है एसे बावीसमा तीर्थंकर नेमिनाथ भगवान अठारे सहस्र मुनि और चालीश सहस्र साध्वीयोंके परिवारसे भूमंडलको पवित्र करते हुवे द्वारकानगरीके नन्दनवनोद्यानको पवित्र करते हुवे।

वनपालकने यह खबर श्री कृष्णनरेश्वरको दी कि हे भूनाथ! जिन्होंके दर्शनोंकी आप अभिलापा करते थे वह तीर्थंकर आज नन्दनवनमें पधार गये है यह सुनके त्रीखंडभोक्ता कृष्ण वासुदेवने साढेबारह लक्ष द्रव्य खुशीका दिया और आप सिंहासनसे उठके वहांपर ही भगवानको नमोत्थुणं करके कहा कि हे भगवान्! आप सर्वज्ञ हो मेरी वन्दना स्वीकार करावें।

श्रीकृष्ण कोटवालको बोलायके नगरी शृंगारनेका हुकम दिया और सेनापतिको बोलाके च्यार प्रकारकी सेना तैयार करनेकी आज्ञा देके आप स्नानमज्जन करनेको मज्जनघरमें प्रवेश करते हुवे।

इधर द्वारकानगरीके दोय तीन च्यार तथा बहुत रास्ते एकत्र होते है। वहां जनसमुह आपस आपसमें वार्त्तालाप कर रहे थे कि अहो देवानुप्रिय! श्री अरिहंत भगवानके नाम गोत्र श्रवण

सेहर सादडी गोडवाडमें, संघ चतुर्विध साथ, माघ सुद तेरसने भेट्या, रांणपुरे जगनाथ हो ॥ केश० ॥ ३ । भांणपुरे सायरे भेट्या, नंदामांमे नाथ, तीन मन्दिर घोगुदे भेट्या, उदयपुर आदि नाथ हो ॥ केश० ॥ ४ ॥ भव्य तीर्थंकर पद्मनाभादि, चोगांन्यो मन्दिर वाजे, समीनेखेडे आंगीपूजा, भेट्या पार्श्व मुक्ति काजे हो ॥ केश० ॥ ५ ॥ गौरधन विलास स्वामिवात्सल, कायाचोंकी आया, तीडी और प्रसाद होके, धुलेवे दर्शन पाया हो ॥ केश० ॥ ६ ॥ शान्त मुद्रा श्याम वर्णकी, मूर्ति लागे प्यारी, रोम रोम हरखायो मारो, अद्भुत रचना थारी हो ॥ केश० ॥ ७ ॥ पूजा मांहे पाप बतावे, गई हीयारी फूट, एक ल्हेरमें कोड भवांका, पातक जावे छूट हो ॥ केश० ॥ ८ ॥ पार्श्व संतानीया रत्नप्रभसूरि, कमला पती विविराजे, ज्ञानसुन्दर जिनभक्ति करतां, जीत नगारा वाजे हो ॥ केश० ॥ ९ ॥

१२ श्री धुलेवा केशरीयानाथ.

मनमोहन ओलूआरही, कद भेटू हे सखी केशरीयो आय ॥ म० ॥ १ ॥ में तो अती उमंगे आवीयो, कीधी कीधी हे सखी यात्रा एह; प्रभु पूजी चित हरखीयो, वूठा २ हे सखी दूधां मेह ॥ म० ॥ १ ॥ दादारा दरबारमें, रयारया हे सखी दीवस बे चार; काल गयो जांण्यो नही, लागोलागो हे सखी

लोक जा रहे है तो अपने भी चल कर वहां क्या हो रहा है वह देखेंगे।

आदेश करते ही रथकारद्वारा च्यार अश्ववाला रथ तैयार हो गया, आप भी स्नानमज्जन कर वस्त्राभूषणसे शरीरको अलंकृत कर रथपर बैठके परिषदाके साथ हो गये। परिषदा पंचाभिगम धारण करते हुवे भगवानके समोसरणमे जाके भगवानको तीन प्रदक्षिणा देके सब लोग अपने अपने योग्यस्थानपर बैठ गये और भगवानकी देशना पानकी अभिलाषा कर रहे थे।

भगवान नेमिनाथ प्रभुने भी उस आइ हुइ परिषदाको धर्म-देशना देना प्रारंभ किया कि हे भव्य जीवों! इस अपार संसारके अन्दर परिभ्रमण करते हुवे जीव नरक, निगोद, पृथ्वी-अप- तेउ, वायु, वनस्पति और त्रसकायमें अनन्त जन्म-मरण किया है और करते भी है। इस दुःखोंसे विमुक्त करनेमें अग्रेश्वर समकितदर्शन है उन्हीको धारण कर आगे चारित्रराजाका सेवन करो तांके संसारसमुद्रसे जलदी पार करे। हे भव्यात्मन! इस संसारसे पार होनेके लिये दो नौका है (१) एक साधु धर्म (सर्वव्रत) (२) श्रावक धर्म (देशव्रत) दोनोंको सम्यक् प्रकारसे जाणके जैसी अपनी शक्ति हो उसे स्वीकार कर इसमें पुरुषार्थ कर प्रतिदिन उच्च श्रेणीपर अपना जीवन लगा देंगे तो संसारका अन्त होनेमें किसी प्रकारकी देर नहीं है इत्यादि विस्तारपूर्वक धर्मदेशनाके अन्तमें भगवानने फरमाया कि विषय-कषाय, राग-द्वेष यह संसारवृद्धि करता है। इन्होंको प्रथम त्यागो और दान, शील, तप, भाव, भावना आदिको स्वीकार करो, सबका सारांश यह है कि जीतना नियम व्रत लेते हो उन्होंको अच्छी तरहसे पालन कर आराधीपदको प्राप्त करो तांके शिघ्र शिवमन्दिरमें

देव जूंहरवा जावे; संवत्सरी प्रतिक्रमणो करके, सर्व जीव क्षमावे मेरे ॥ प्यारे ॥ ६ ॥ इण विध पर्व आराधो प्यारे, आछो मेलो मीलीयो; सगपण मोटो साधर्मीको, ज्ञान कल्प-तरु फलीयो मेरे ॥ प्यारे ॥ ७ ॥

१४ श्री पर्युषण स्तवन

हां पर्व पर्युषण आया, जैनांके दिल हरख सवाया; द्विप नन्दिश्वर जायके, सूर आनन्द पायारे ॥ पर्व ॥ टेर ॥ आठ दिवस समतारस चाखो, जूठ वचन मुखसे मत भाखो; पालो शील अखंड जीवकी यत्ना राखोरे ॥ पर्व ॥ १ ॥ जिन मन्दिरमें मोत्सव कीजे, मुनिको दान सुपात्र दीजे, चंचल माया जाणके नरभव फल लीजेरे ॥ पर्व ॥ २ ॥ कल्पसूत्रकों घर लेजावो, ज्ञानजागरणा रात जगावो; मोटो महोत्सव मां-डके, वरघोडो लावोरे ॥ पर्व ॥ ३ ॥ अष्टम भक्त सुभ भावे कीजे, नववाचना कल्प सूणीजे, जन्ममहोत्सव वीरको, करतां सिव लीजेरे ॥ पर्व ॥ ४ ॥ समत्सरी प्रतिक्रमणो कीजे, लक्ष चोरासी जीव क्षमीजे; राखो उज्वल भावना, जिम कारज सीजेरे ॥ पर्व ॥ ५ ॥ एक स्थान मीलीये संघचारों, चैत्य प-रिवाडी देव जुहारो, सामीवत्सल प्रभावना करी आत्म तारोरे ॥ पर्व ॥ ६ ॥ रुडी रीते पर्व आराधो, नीठ नीठ मानव भव लाधो, ज्ञानचिंतामण पायके निज आत्म साधोरे ॥ पर्व ॥ ॥ ७ ॥ इति.

सुनना मनमे भि नही चाहती है। जहाँतक तुमारे मातापिता जीवे वहाँतक संसारका सुख भोगवो। जब तुमारे मातापिता कालधर्म प्राप्त हो जाय बाद में तुमारे पुत्रादिकि वृद्धि होनेपर तुमारी इच्छा हो तो खुशीसे दीक्षा लेना।

माताका यह वचन सुन गौतमकुमार बोला कि हे माता! एसा मातापिता पुत्रका भव तो जीव अनन्तीवार कीया है इन्होंसे कुछ भी कल्यान नही है और मुझे यह भी विश्वास नही है कि मैं पहेला जाउंगा कि मातापिता पहिले जावेगा अर्थात कालका विश्वास समय मात्रका भी नही है वास्ते आप आज्ञा दो तो मैं भगवानके पास दीक्षा ले मेरा कल्यान करूं।

माता बोली हे लालजी! तुमारे बाप दादादि पूर्वजोंके संग्रह कीया हुवा द्रव्य है इन्हीको भोगविलासके काममें लो और देवा गना जेसी आठ राजकन्या तुमको परणाइ है इन्होंके साथ काम-भोग भोगवो फीर यावत कुलवृद्धि होनेसे दीक्षा लेना।

कुमार बोला कि हे माता! मैं यह नही जानता हूं कि यह द्रव्य और स्त्रियों पहले जावेगी कि मैं पहला जाउंगा। कारण यह धन जोबन स्त्रियादि सर्व अस्थिर है और मैं तो वीश्वास करना चाहता हूं वास्ते आज्ञा दो दीक्षा लेउंगा।

माता निराश हो गइ परन्तु मोहनीकर्म जगतमें जबरदस्त है माता बोली कि हे लालजी! आप मुझे तो छोड जावोगा परन्तु पेहला खुब दीर्घदृष्टीसे विचार करीये यह निग्रन्थके प्रवचन सत्य ही है कि इन्होंका आराधन करनेवालोंको जन्मजरा मृत्यु आदिसे मुक्तकर अक्षय स्थानको प्राप्त करा देता है परन्तु याद रखो संजम खांडाकी धारपर चलना है, वेलुका कवलीया जेसा अस्वार है, म-यणके दान्तोंसे लोहाका चीना चावना है नदीके सामे पुर चलना

दुरकखओ कम्मखओ समाहि मरणंच बोहिलाभोअ।
संपज्जाऊ महएअं, तुहनाउ पणाम करणेणं
सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारणम्
प्रधानं सर्व धर्म्माणं, जैनं जयति शासनम् ॥ ५ ॥

अरिहंत चेइयाण करेमि काउस्सग्गं-वन्दनवत्तियाए पूयणवत्तियाए सक्कारवत्तियाए सम्माणवत्तियाए बोहिलाभ-वत्तियाए निरुवसग्गवत्तियाए सद्धाए मेहाए धिइए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामि काउस्सग्गं अन्नत्थ० । यहा एक नवकारका काउस्सग्ग करके नमो अरिहंताण कहके काउस्सग्ग पारके नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यः केहके एक स्तुति बोलना.

स्तुति,

ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन, सुमतिपद्म सुपासजी
चन्द सुबधि शीतल श्रीयस, वासविमल पुरो आसजी
धर्म शान्ति कुंथु अरिमल्लि, मुनिसुव्रत नमि नेमि पासजी
वीर जिनेश्वर रगे पुजो, पुरे मनोरथ जासजी ॥ २ ॥

खमासमणा देके यथाशक्ति पच्चक्खाण करना ।

॥ इति ॥

समयमें स्थिवरोंकी भक्ति कर इग्यारा अंगका ज्ञान कण्ठस्थ कर लिया। बादमे श्री नेमिनाथप्रभु द्वारकानगरीसे विहार कर अन्य जनपद देशमें विहार करते हुवे।

गौतम नामका मुनि चोथ छठ अठमादि तपश्चर्या करता हुवा एक दिन भगवान् नेमिनाथको वन्दन नमस्कार कर अर्ज की कि हे भगवान्! आपकी आज्ञा हो तो मैं "मासीक भिखु प्रतिमा"[1] नामका तप करुं, भगवानने कहा "जहासुखम्" एवं दो मासीक तीन मासीक यावत् बारहवी एकरात्रीक भिखुप्रतिमा नामका तप गौतममुनिने कीया और भी मुनिकी भावना चढ जानेसे वन्दन नमस्कार कर भगवानसे अर्ज करी कि हे दयालु! आपकी आज्ञा हो तो मैं गुणरत्न समत्सर नामका तप करुं। "जहासुखं" जब गौतममुनि गुणरत्न समत्सर तप करना प्रारंभ कीया। पहेले मासमें एकान्तर पारणा, दुसरे मासमें छठ छठ पारणा, तीसरे मासमें अठम अठम पारणा एवं यावत् सोलमे मासमें सोला२ उपवासका पारणा एवं सोला मास तक तपश्चर्या कर शरीरको बीलकुल कृष अर्थात् सूका हुवा सर्पका शरीर माफीक हलते चलते समय शरीरकी हडीका अवाज जेसे काष्टके गाडाकी माफीक तथा सूके हुवे पत्तोंकी माफीक शब्द हो रहा था।

एक समय गौतम मुनि रात्रीमें धर्मचिंतवन कर रहा था उसी समय विचारा कि अब इस शरीरके पुद्गल बिलकुल कमजोर हो गये हैं हलते चलते बोलते समय मुझे तकलीफ हो रही है तो मृत्युके सामने केसरीया कर मुझे तैयार हो जाना चाहिये अर्थात् अनशन करना ही उचित है। बस, सूर्योदय होते ही

---

१ भिखुकी बारह प्रतिमाका विस्तारपूर्वक विवरण दशाश्रुत स्कन्ध सूत्रमें है वह देखो शीघ्रबोध भाग चोथा।

धर्मके सन्मुख होनेवालोंमें १५ गुण होना चाहिये ।

१ नितीवान हो, कारण निती धर्मकी माता है ।
२ हीम्मत वाहादुर हो, कायरोंसे धर्म नही होता है ।
३ धीर्यवान् हो, हरेक कार्योंमें आतुरता न करे ।
४ वुद्धिवान् हो, हरेक कार्य स्वमति विचारके करे ।
५ असत्यकों धीकारनेवाला हो ।
६ निष्कपटी हो, हृदय साफ स्फटक माफिक हो ।
७ विनयवान, और मधुर भाषाका वोलनेवाला हो ।
८ गुणगृहाइहो, और स्वात्म श्लावा न करे ।
९ सत्यवान प्रतज्ञा पालक हो ।
१० दयावान हो, और परोपकार कि वुद्धि हो ।
११ सत्य धर्मका अर्थी हो ।
१२ जितेन्द्रियहो । कषायकि मंदताहो
१३ आत्म कल्याण कि द्रढ इच्छा हो ।
१४ तत्त्व विचारमें निपुण हो ।
१५ जिन्होंके पास धर्म पाया हो उन्होंका उपकार कभी भुले नहीं समयपाके प्रति उपकार करे ।

—०-००-०—

जैनधर्मकें रहस्तेपर चढनेवालोंमें निम्न लिखत ३५ बोल आवश्य होना चाहिये ।

कर कुल सोला वर्ष दीक्षा पालके अन्तिम श्रीशत्रुंजय तीर्थपर एक मासका अनशन कर अन्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें पधार गये इति द्वितीवर्गके आठ अध्ययन समाप्त।

—❊❊—

(३) तीसरा वर्गके तेरह अध्ययन है।

(प्रथमाध्ययन)

भूमिके भूषणरुप भद्दलपुर नामका नगर था। उस नगरके इशान कोणमें श्रीवन नामका उद्यान था और जयशत्रु नामका राजा राज कर रहा था वर्णन पूर्वकी माफीक समझना। उसी भद्दलपुर नगरके अन्दर नाग नामका गाथापति निवास करता था वह बडाही धनाढ्य और प्रतिष्ठित था जिन्होंके गृहशृंगाररुप सुलसा नामकी भार्या थी वह सुकोमल और स्वरुपवान थी। पतिकी आज्ञा प्रतिपालक थी। नागगाथापति और सुलसाके अंगसे एक पुत्र जनमा था जिसका नाम "अनययश" दीया था वह पुत्र पांच धातृ जेसे कि (१) दुध पीलानेवाली (२) मज्जन करानेवाली (३) मंडन काजलकी टीकी वस्त्राभूषण धारण करानेवाली (४) क्रीडा करानेवाली (५) अंक-एक दुसरेके पास लेजानेवाली इन्हीं पांचों धातृ मातासे सुखपुर्वक वृद्धि जेसे गिरिकंदरकी लताओं वृद्धिको प्राप्ति होती है एसे आठ वर्ष निर्गमन होनेके बाद उसी कुमरको कलाचार्यके वहां विद्याभ्यासके लीये भेजा आठ वर्ष विद्याभ्यास करते हुवे ७२ कलामें प्रवीण हो गये नागगाथापतिने भी कलाचार्यको बहुत द्रव्य दीया जब कुमर १६ वर्षकी अवस्था अर्थात् युवक वय प्राप्त हुवा तब मातापिताने बत्तीस

(६) कीसीका भी अवगुन वाद न बोलना जो अव-गुनवाला हो तो उन्हीकि संगत न करना तारीफ भी न करना परन्तु अवगुण बोलके अपनि आत्माकों मलीन न करे।

(७) जिस मकांनके आसपासमें अच्छे लोकोंका मकांनहो और दरवाजे अपने कब्जेमेंहो मन्दिर, उपासरा या साधर्मीभाइयों नजीक हो एसे मकांनमें निवास करना चाहिये। ताके सुखसे धर्मसाधन करशके।

(८) धर्म, निति, आचारवन्त और अच्छी सलाहके देनेवालोंकी संगत करना चाहिये तांके चित्तमें हमेशों समाधी बनी रहै।

(९) मातापिता तथा वृद्ध सज्जनों कि सेवाभक्ति विनय करना, आपसे छोटा भी होतो उन्हीका भी आदर करना और सबसे मधुर वचनोंसे बोलना।

(१०) उपद्रववाले देश, ग्राम या मकांन हो उन्हीका परित्याग करना चाहिये जेसे रोग मरकी, दुष्काल आदिसे तकलीफ हो। ऐसे देशमें नही रेहना।

(११) लोक निंदने योग्य कार्य न करना और अपने स्त्रि-पुत्र और नोकरोंको पेहलेसे ही अपने कब्जेमें रखना अच्छा आचार व्यवहार सीखाना।

इसी माफीक अनंतसेन (१) अनाहितसेन (२) अजितसेन (३) देवयश (४) शत्रुसेन (५) यह छवों नागसेठ सुल्सा शेठाणी के पुत्र है बत्तीस बत्तीस रंभावोंको त्याग नेमिनाथ प्रभु पासे दीक्षा ले चौदा पूर्व अध्ययनकर सर्व वीस वर्ष दीक्षा व्रत पाल अन्तिम सिद्धाचलपर एकेक मासका अनसनकर चरम समय केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष गया इति छे अध्ययन।

सातवा अध्ययन—द्वारका नगरीमें वसुदेव राजा के धारणी राणी सिंह स्वप्न सूचित-सारण नामका कुमरका जन्म पूर्ववत ७२ कलाप्रविण ५० राजकन्यावोंका पाणीग्रहण पचास पचास बोल्योंका दत्त भोगविलासमें मग्न था। नेमिनाथप्रभु कि देशना सुण दीक्षा ले चौदा पूर्वका ज्ञान। वीस वर्ष दीक्षापालके अन्तिम श्री सिद्धाचलजी पर एक मासका अनसन अन्तमें केवलज्ञान प्राप्तीकर मोक्ष गये। इति सप्तमाध्ययन समाप्त।

आठवाध्ययन—द्वारका नगरीकि नन्दनवनोद्यानमे श्री नेमिनाथ भगवान समोसरते हुवे। उस समय भगवानके छे मुनि सगे भाइ सदृशत्वचा वय वडेही रूपवन्त नलकुबेर (वैश्रमणदेव) सदृश जिस समय भगवान पासे दीक्षा ली थी उसी दिन अभिग्रह किया था कि यावतजीव छठ तप-पारणा करना। जब उन्ही छवों मुनियोंकि छठका पारणा आया तब भगवानकि आज्ञा ले दो दो साधुओंकि तीन संघाडे हो के द्वारका नगरीका सहस्र वनोद्यानसे निकल द्वारका नगरीमें समुदाणी भिक्षा करते हुवे प्रथम दो साधुवोंका सिंघाडा वसुदेव राजा कि देवकी नाम कि राणीका मकानपर आये। मुनियोंको आते हुवे देख के देवकी राणी अपने आसन से उठके सात आठ पग सामने गइ और भक्तिपूर्वक वन्दन नमस्कार कर जहाँ भात-पा-

(१७) अपच अजिर्ण आदि रोग होनेपर तुरत आहारका त्याग करना, अर्थात् खरी भूख लागनेपर ही आहार करना परन्तु लोलुपता होके भोजन करलेनेके बाद मीष्टानादि न खाना और प्रकृतिसे प्रतिकुल भोजनभि नही करना, रोग आनेपर औषदीके लिये प्रमाद न करना ।

(१८) संसारमें धर्म, अर्थ, कामको साधतेहूवे भी मोक्षवर्गको भूलना न चाहिये । सारवस्तु धर्महो समझना । और समय पाकर धर्मकार्योंमे पुरुषार्थ भी करना ।

(१९) अतित्थ-अभियागत गरीब रांक आदिकों दुःखी देखके करूणाभावलाना यथाशक्ति उन्हीकों समाधीका उपाय करना ।

(२०) कीसीका पराजय करनेके इरादेसे अनितिका कार्यकों आरंभ नही करना, विनों अपराद किसीकों तकलीफ न पहूचाना ।

(२१) गुणीजनोंका पक्षपात करना उन्होंकों बहूमान देना सेवाभक्ति करना ।

(२२) अपने फायदेकारी भी क्युंनहो परन्तु लोकों तथा राजा निषेद्ध कीयेहूवे कार्यमें प्रवृति न करना ।

(२३) अपनी शक्ति देखके कार्यकों प्रारंभ करना प्रारंभ कियेहूवे कार्यकों पार पहूचादेना ।

भगवान वहांपर पधारे थे उन्हों कि देशना सुन हम छवों भाइ संसारके सुखोंकों दु:खोंकि खान समझके भगवानके पासमें दीक्षा ले अभिग्रह कर लिया कि यावत जीव छठ छठ पारणा करना। हे देवकी! आज हम छवों मुनिराज छठके पारणे भगवानकि आज्ञा ले द्वारका नगरीके अन्दर समुदाणी भिक्षा करनेको आये थे हे बाइ! जो पेहले दोय सिंघाडे जो तुमारे यहां आगये थे वह अलग है और हम अलग है अर्थात हम दोय तीनवार तुमारे घर नहीं आये है। हम एक ही वार आये है एसा कहके मुनि तो वहांसे चलके उधानमें आ गये।

बाद में देवकीराणीकों एसे अध्यवसाय उत्पन्न हुवे कि पोलासपुर नगरमें अमंता नामके अनगारने मुझे कहा था कि हे देवकी! तुं आठ पुत्रोंकों जनम देगी वह पुत्र अच्छे सुन्दर स्वरूपवाले जेसे कि नल-कुवेर देवता सद्दश होगा, दुसरी कोइ माता इस भरतक्षेत्रमें नहीं है। जोकि तेरे जैसे स्वरूपवान पुत्रको प्राप्त करे।' यह मुनिका वचन आज मिथ्या (असत्य) मालुम होता है क्यों कि यह मेरे सन्मुख ही ६ पुत्र देखनेमें आते है कि जो अभी मुनि आये थे। और मेरे तो एक श्रीकृष्ण ही है देवकीने यह भी विचार कीया कि मुनियोंके वचन भी तो असत्य नहीं होते है। देवकी राणीने अपनी शंका निवृत्तन करनेकी भगवान नेमिनाथजीके पास जानेका इरादा कीया। तब आज्ञाकारी पुरुषोंकों बुलवायके आज्ञा करी कि चार अश्ववाला धार्मीक रथ मेरे लीये तैयार करो। आप स्नान मज्जन कर दासीयों नोकर चाकरोंके वृन्दसें बडेही आडम्बरके साथ भगवानको वन्दन करनेको गइ विधिपुर्वक वन्दन करनेके बादमें भगवान फरमाते हुवे कि हे देवकी! तुं छे मुनियोंको देखके

है लज्जावन्ताकि लोक तारीफ करते है बहूतसी वखत अकार्यसे बचजाते है।

(३१) दयालुहो=सब जीवोंपर दयाभाव रखना अपने प्राणके माफीक सब आत्मावोंको समझके कीसीकों भी नुकशान न पहूंचाना।

(३२) सुन्दर आकृतिवाला अर्थात् आप हमेशो हस्तवदन आनन्दमे रेहना अर्थात् क्रुर प्रकृति या चीण चीण प्रत्य क्रोधमानादिकि वृति न रखना। शान्त प्रकृति रखनेसे अनेक गुणोंकि प्राप्ती होतीहै।

(३३) उन्मार्ग जातेहूवे जीवोंको हितबोध देके अच्छे रहस्तेका बोध करना उन्मार्गका फल केहतेहूवे मधुर वचनोंसे समझाना।

(३४) अन्तरग वैरी क्रोध, मान, माय, लोभ, हर्ष, शोक इन्होंके पराजय करनेका उपाय या साधनों तैयार करतेहूवे वैरीयोंको अपने कब्जे करना।

(३५) जीवकों अधिक भ्रमन करानेवाले विषय (पांचेन्द्रिय) और कषाय है उन्हीकों दमन करना, अच्छे महात्मावोंकी सत्संग करते रेहना, अर्थात् मोक्षमार्ग बतलानेवाले महात्माही होतेहै सद्मार्गका प्रथम उपाय सत्संग है।

यह पैतीस बोल संक्षेपसेही लिखा है कारण कंठस्थ

एसा अध्यवसाय उत्पन्न हुवाकि मैं नलकुबेर सदृश सातपुत्रोंको जन्म दीया परन्तु एक भी पुत्रकों मेरे स्तनोंका दुध नही पीलाया लाडकोड नही कीया रमत नही रमाया खोलेमें-गोदमें नही हुलगया बच्चोंकि मधुर भाषा नही सुनी इत्यादि मैंने कुच्छभी नही कीया, धन्यहै जगतमें वह माताकि जो अपने बालकोंकों रमाते है खेलाते है यावत् मनुष्यभवकों सफल करते है। मैं जगतमें अधन्या अपुन्या अभागी हु कि सात पुत्रोंमें एक श्रीकृष्णकों देखती हु सो भी छे छे माससे पगवन्दन मुजरों करनेको आता है। इसी बात कि चिंतामे माता बेठीथी।

इतनेमे श्री कृष्ण आया और माताजी के चरणोंमें अपना शिर झुकाके नमस्कार किया. परन्तु देवकितो चिंताग्रस्तथी। उन्होंकों मालमही क्यों पडे। तब श्री कृष्ण बोलाकि हे माताजी अन्यदिनोंमें मैं आताहुं तब आप मुझे आशिर्वाद देते हैं मेरे शिरपर हाथ धरके बात पुछते हो और आज में आया जिस्की आपको मालमही नहीं है इसका क्या कारण है?

देवकी माता बोली कि हे पुत्र! भगवान नेमिनाथद्वारा मालुम हुइ है कि मैं सात पुत्र रत्नकों जनम दिया है जिस्मे तुं एकही दीखाई देताहै। छ पुत्रतो सुलसाके वहां वृद्धिहोके दीक्षा ले लि। तुं भी छे छे माससे दीखाइ देता है वास्ते धन्य है वह माताओंको कि अपने पुत्रोंकों बालवयमें लाड करे.

श्रीकृष्ण बोलाकि हे माताजी आप चिंता न करो। मेरे छोटाभाइहोगा एसा मैं प्रयत्न करुंगा अर्थात् मेरे छोटाभाइ अवश्य होगा उसे आप खेलाइये (एसे मधुर वचनोंमे माताजीकों संतोष देके श्री कृष्ण वहांसे चलके पौषदशालामे गया हरण गमेषी देवकों अठम कर स्मरण करने लगा। हरणगमेषी देव आयके बोला हे

प्रणातिपातादि १८ पापकर्म सेवन किया कराया करतेहुवे कोंसा हितादिहो उन्हीकों आज म्हे देवगुरु सन्मुख मन, वचन, कायासे वोसिरातािहू ।

। सम्यक्त्वकि शुद्ध अधना ।

(१) देव=अरिहंत—वीतराग—सर्वज्ञ—केवली, अठारा दोष[1] रहित और वारहगुण[2] सहित, चौतीस अतिश्य पैतीस वाणिगुण संयुक्त केवलज्ञान केवलदर्शनसे लोकालोकके सर्व भावोंकों एक समयमें जाणे देखे एसे म्हारे देवहै । उन्ही देव और देवकी शान्त मुद्रा मूर्ति उन्होंका वन्दन पूजन उपासना मोक्षार्थे करना । इन्हीके सिवाय जगत्मे अनेक देव केहलातेहै वह रागी द्वेषी मानी मायि जिन्होंका चन्ह या मुद्रामे रहाहूवा राग द्वेष भय क्रुरता एसा लौकीक देवमे मेरी देवबुद्धि नही है न देव समझके उपासना करू ।

गुरू—पंचमहाव्रत पंचसमिति तीनगुप्तीका पालक सतावीस गुणोके धारक दशप्रकारे यति धर्माराधक कनककामणि-

---

१ १८ दोष—मिथ्यात्व, अज्ञान, अव्रत, राग, द्वेष, निंद्रा, मोह, दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय, हास्य, भय, शोक, जुगप्सा, रति, अरति, एव १८ दोष ।

२ अनन्त चतुष्ट और अष्ट प्रतिहार एवं १२ गुण ।

लडकी है ? आदमी बोलें कि यह सोमल ब्राह्मणकी लडकी है कृष्णने कहा कि जावो इसको कुमारे अन्तेवरमें रख दो गजसुकुमालके साथ इसका लग्न कर दीया जावेगा। आज्ञाकारी पुरुषोंने सोमाके बापकी रजा ले सोमाको कुमारे अन्तेवरमें रख दी।

कृष्णवासुदेव गजसुकुमालादि भगवान समीप वन्दन नमस्कार कर योग्य स्थान पर बैठ गये। भगवानने धर्मदेशना दी. हे भव्य जीवों! यह संसार असार है जीव रागद्वेषके बीज बोके फीर नरक निगोदादीके दुःखरूपी फलोंका आस्वादन करते हैं "खीणमत्त सुखा बहुकाल दुःखा" क्षणमात्रके सुखोंके लीये दीर्घकालके दुःखोंको खरीद कर रहे है। जो जीव बाल्यावस्थामें धर्मकार्य साधन करते है वह रत्नोंकि माफीक लाभ उठाते है जो जीव युवावस्थामें धर्मकार्य साधन करते है वह सुवर्णकी माफीक और जो वृद्धावस्थामें धर्म करते है वह रुपेकी माफीक लाभ उठाते है। परन्तु जो उम्मरभरमें धर्म नहीं करते है वह दारीद्र लेके परभव जाते हैं वह परम दुःखको भोगवते है। वास्ते हे भव्य! यथाशक्ति आत्मकल्याणमें प्रयत्न करो इत्यादि देशना श्रवण कर यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान कर परिषदा स्वस्थान गमन करती हुइ। गजसुकुमाल भगवानकी देशना सुन परम वैराग्यको धारण करता हुवा बोला कि हे भगवान! आपका फरमाया सत्य है मैं मेरे मातपिताओंसे पुछके आपके पास दीक्षा लेउंगा? भगवानने कहा "जहासुखम्" गजसुकुमाल भगवानको वन्दन कर अपने घरपर आया मातासें आज्ञा मांगी यह बात श्रीकृष्णको मालुम हुइ कृष्णने कहा हे लघु बान्धव! तुम दीक्षा मत लो राज करो। गजसुकुमाल बोला कि यह राज, धन, संपदा सभी कारमी है और मैं अक्षय सुख चाहता हूं अनुकूल प्रतिकूल बहुतसे प्रश्न हुवे परन्तु जिसको आन्तरीक वैराग्य हो उसको कोन मीटा सकते

(१) मांस (२) मदिरा (३) वैश्यागमन (४) चौरीकर्मका करना (५) शिकार खेलना (६) परस्त्रिगमन (७) जुवाका खेलना एवं ७ कुविशन लौक निंदनिक होनेसे परित्याग करना, तथा विसवासघात करनेका, राजविरूद्ध करनेका परित्याग करना।

१ वासीविद्वल अनन्तकाय अभक्षादि जोकि प्रचुर जीवोंके पिंड होताहे उन्हीका सदैव त्याग रखना।

२ महा आरंभ महा परिग्रह और कर्मादानादि वैपार जहाँतक वचे वहांतक वचाना चाहिये।

३ जहापर जिनेन्द्रदेवोंका मन्दिर हो वहापर प्रतिदिन भगवानका दर्शन करना।

४ साधु मुनियोंका योगहो तो मुनियोंके दर्शनकर व्याख्यान श्रवण करना चाहिये।

५ शालभरमें कमसेकम एक नये तीर्थकि यात्रा करना।

६ शालभरमें कमसेकम एक स्वामिवात्सल करना।

७ शालभरमें कमसेकम एक वडी पूजा कराना।

८ शालभरमें स्वइच्छा न्याय द्रव्यज्ञानखातामे लगाना

सम्यक्त्वके पांच अतिचार

(१) शंका-जिनवचनोंमे संसय शंकाका रखना
(२) कंचा-अन्यमत्तकि इच्छा अनुमोदनका करना
(३) वितगीच्छा-करनीका फलके अन्दर शंसय रखना

सुसराजी शिरपर एक नवीन पेचाही बंधा रहा है। फीर स्मशानमें खेर नामका काष्ट जल रहाथा उन्हीका अंगार लाके वह अग्नि गजसुकुमालके शिरपर धर आप वहांसे चला गया। गजसुकमालमुनिको अत्यन्त वेदना होनेपरभी सोमल ब्राह्मणपर लगारभी द्वेष नही कीया। यह सब अपने किये हुवे कर्मोकाही फल समझके आनन्दके साथ करजाको चुका रहाथा। एसा शुभाध्यवसाय, उज्वल परिणाम, विशुद्ध लेश्या, होनेसे च्यार घातीयां कर्मोका क्षयकर केवलज्ञान प्राप्ती कर अन्तगढ केवली हो अनन्ते अव्याबाध शास्वत सुखोंमें जाय विराजमान होगये अर्थात गजसुकुमालमुनि दीक्षा ले एकही रात्रीमें मोक्ष पधार गये। नजीकमें रेहनेवाले देवतावोने बडाही महोत्सव कीया पंचवर्णके पुष्पो आदि ५ द्रव्यकि वर्षा करी और वह गीत–गान करने लगे।

इधर सूर्योदय होतेही श्रीकृष्ण गज असवारीकर छत्र धरावाते चमर उढते हुवे बहुतसे मनुष्योंके परिवारसे भगवानकों वंदन करनेको जा रहाथा। रहस्तेमे एक वृद्ध पुरुष वडी तकलीफके साथ एकेक ईंट रहस्तेसे उठाके निज घरमें रखते हुवेको देखा। कृष्णकों उन्ही पुरुषकी अनुकम्पा आइ आप हस्तीपर रहा हुवा एक ईंट लेके उन्ही वृद्ध पुरुषके घरमें रखदी एमा देखके सर्व लोकोंने एकेक ईंट लेके घरमें रखनेसे वह सर्व ईंटोकी रासी एकही साथमे घरमें रखी गई फीर श्री कृष्ण भगवानके पासे जाके वन्दन नमस्कार कर इधर उधर देखेते गजसुकुमालमुनि देखनेमें नही आया तब भगवानसे पुच्छा कि हे भगवान मेरा छोटाभाइ गजसुकुमाल मुनि कहां है मे उन्होंसे वन्दन करू?

भगवानने कहाकि हे कृष्ण! गजसुखमालने अपना कार्य सिद्ध कर लिया। कृष्ण कहाकि वेसे। भगवानने कहाकि गज-

(४) रोसकेवसहो भात्तपाणी वन्ध करदेना

(५) लोभकेवसहो अति भार भरदेना

इन्ही पांचों अतिचारोंकों सदैव वर्जना चाहिये ।

। दुसरा व्रत स्थुल मृषावाद ।

राजदंडे, लौकभंडे जिसीसे श्रावकोंकि प्रतित न रहै एसा मोटका मृषावाद बोलनेका पच्चखांन ।

(१) कन्याके निमत्त- अच्छीकों वुरी और वुरीकों अच्छी छोटीको वडी और वडीको छोटी केहना या विष कन्याकों निर्विष केहदेना २ । इत्यादि

(२) गाय प्रमुख पशुके निमत्त--पूर्ववत् ।

(३) भूमिकाके निमत्त—मकान या भूमिका दुसरेकि हो उन्हीकों अपनी करलेना इत्यादि

(४) स्थापीत द्रव्य-थापण रखीहूइकों नटजाना

(५) रीशवत् लेके असत्य गवाइयों भरदेना

। दुसरेव्रतके पांच अतिचार है ।

(१) कीसीपर कुडा कलंक देदेना

(२) कीसीकि गुप्तवार्तावोंकों प्रगट करना

(३) कीसीकों असत्य शलाहाकादेना

(४) स्त्रि आदिका मर्मकों प्रगट करना

(५) कीसीपर कुडा लेखका लिखना

इन्ही पांचों अतिचारको सदैव वर्जना चाहिये ।

नवमाध्ययन-द्वारका नगरी बलदेवराजा धारणी राणीके सिंह स्वप्न। सूचित सुमुह नामका कुमरका जन्म हुवा कलाप्रविण पचास राजकन्यावोंके साथ कुमारका लग्न कर दीया दतदायजो पूर्व गौतमकि माफीक यावत भोगविलासमें मग्न हो रहाथा।

श्री नेमिनाथ भगवानका आगमन। धर्म देशना श्रवण कर सुमुह कुमार संसार त्याग दीक्षाव्रत ग्रहन कीया चौदा पूर्व ज्ञान वीस वरस दीक्षा व्रत एक मासका अनसन श्री शत्रुंजय तीर्थपर अन्तिम केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया। इसी माफीक दशवा ध्ययनमें दुमुहकुमार इग्यारवा ध्ययनमें कोवीदकुमार यह तीनों भाइ बलदेवराजा धारणी राणीके पुत्र दीक्षा लेके चौदाह पूर्व ज्ञान वीस वर्ष दीक्षा एक मास अनसन शत्रुंजय अन्तगड केवली हो मोक्ष गये। और बारहवा दारुणकुमार तेरवा अनाधीठकुमार यह वासुदेवराजा धारणीराणीके पुत्र पचास अन्तेवर त्याग दीक्षा ले सुमुहकि माफीक श्री सिद्धाचल तीर्थपर अन्तगड केवली हो मोक्ष गया। इति तीजा वर्गके तेरवां अध्ययन तीजा वर्ग समाप्तम्।

(४) चोथा वर्गका दश अध्ययन।

द्वारामती नगरी पूर्ववत् वर्णन करने योग्य है। द्वारामतीमें वसुदेवराजा धारणी राणी सिंह स्वप्न सूचित जाली नामका कुमारका जन्म हुवा मोहत्सव पूर्ववत् कलाचार्यसे ७२ कलाभ्यास जोवन वय ५० अन्तेवरसे लग्न दतदायजो पूर्ववत।

श्री नेमिनाथ भगवानकी देशनासुन दीक्षा लीनो द्वादशांगका ज्ञान सोलावर्ष दीक्षापाली शत्रुंजय तीर्थपर एक मासका अनसनसे अन्तिम केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष गया इति। इसी माफीक

(५) कुडा तोला कुडा मापाका करना ।

इन्ही पांचों अतिचारोंको सदैव वर्जना ।

। चौथाव्रत स्थुल मैथुन ।

राजदंडे, लौकभडे दुःखके देनेवाली एसी परस्त्रिसेवन करनेका पञ्चखान ।

(१) परस्त्रिका पञ्चखांन ।

(२) वैश्यादिका पञ्चखान ।

(३) स्वस्त्रिकि भी मर्यादा ।

(४) दिनका मैथुनका त्याग करना ।

(५) अष्टमि चतुर्दशी पुर्णमादि दिनका नियम करना ।

। चौथ व्रतके पांच अतिचार ।

(१) कोइभी ग्रहन न करी एसे कुमारी तथा वैश्यासे

(२) स्वल्पकालके लिये रखीहूइ नोकरादिसे गमन

(३) अनङ्ग क्रीडा वैश्या विधवादिसे गमन करना

(४) स्वसंबन्धी सिवाय पारके विवहा नाता करना'

(५) कामभोगकि तीव्र अभिलाषा रखना

इन्ही पाचों अतिचारकों सदैव वर्जना चाहिये ।

। पाचवा व्रत स्थुल परिग्रह ।

(१) घर-हाठ-हवेली नोरा वाडा मकानातकि संख्या ( ) तथा किंमत रु

मदिरा प्रसंग द्विपायनके कारण अग्निके योगसे द्वारिका नष्ट होगा।

• यह सुनके वासुदेवने बहुत पश्चाताप किया और विचारा कि धन्य है जालीमयाली यावत् दृढ नेमिको जो कि राज धन अन्तेवर त्यागके दीक्षा ग्रहण करी। मैं जगतमें अधन्य अपुन्य अभाग्य जो कि राज अन्तेवरादि कामभोगमे गृहीत हो रहा हुं ताके भगवानके पास दीक्षा लेनेमें असमर्थ हुं।

कृष्णके मनकी वातोंको ज्ञानसे जानके भगवान वोले कि क्युं कृष्ण तेरा दीलमें यह विचार हो रहा है कि मैं अधन्य अपुन्य हुं यावत् आर्तध्यान करता है क्या यह वात सत्य है? कृष्णने कहा हाँ भगवान सत्य है। भगवानने कहा हे कृष्ण! यह वात न हुइ न होगा कि वासुदेव दीक्षा ले। कारण सव वासुदेव पुर्व भव निदान करते है उस निदानके फल हे कि दीक्षा नहीं ले सके।

कृष्णने प्रश्न किया कि हे भगवान! मैं जो आरंभ परिग्रह राज अन्तवरमें मुर्छित हुवा हुं तो अव फरमाइये मेरी क्या गति होगी?

भगवानने उत्तर दीया कि हे कृष्ण यह द्वारिका नगरी मदिरा अग्नि और द्विपायणके योगसे विनाश होगी, उसी समय मातपिताको निकालनेके प्रयोगसे कृष्ण और बलभद्र द्वारिकासे दक्षिणकी वेली सन्मुख युधिष्ठिर आदि पांच पांडवों की पंडु मथुरा होके कमुंवी वनमें वड वृक्षके नीचे पृथ्वीशीला पटके उपर पीत वस्त्रसे शरीरको आच्छादित कर सुवेगा, उस समय जराकुमार तीक्ष्ण वाण वाम पांवमें मारनेसे काल कर तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वीमें जाय उत्पन्न होगा।

यह वात सुन कृष्णको वडा ही रंज हुवा कारण मे एसी

(३) उत्तर दिशामें कोष   (४) दक्षिण दिशामें कोष
(५) उर्ध्वे दिश तथा अधो दिशामें कोष

छटा व्रतका पांच अतिचार

(१) उर्ध्वदिशाके परिमाणसे अधिक जाना

(२) अधो ,, ,, ,,

(३) तीरच्छी ,, ,, ,,

(४) एक दिशाकों कमकर दुसरी दिशामें अधिकजाना

(५) परिमाणसे ज्यादा होनेकि शंका होनेपर आगेजाने

इन्ही पांचो अतिचारोंकों सदैव वर्जना

सातमा उपभोग परिभोग व्रत

उपभोग अपने उपभोगमें एक दफे भोगनेमे आवे जो द्रव्यादि खानेमें आवे वह पदार्थ, और परिभोग वारवारं भोगमें आवे वस्त्रभूषण स्त्रिआदि इन्ही पदार्थोंका परिमाण करे जेसे जावजीव तक इतने द्रव्यसे जादा नही खाना एवंविगइ, वस्त्रभूषण पेहरनेका गन्ध, पुष्प, चन्दन आदि विलेपनका परिमाण और भक्षाभक्ष वासी विद्दल मखन मधु और भी वस्तुवोंका काल आदिका विचारपूर्वक व्रत लेना तथा विस्तार गुरुमुखसे सुनना

कृष्ण महाराज करेगा - दीक्षाका महोत्सव भी वडा आडम्बर से कृष्ण महाराज करेगा। द्वारका विनाश होगी वास्ते दीक्षा जल्दी लो।

पर्मा पुकार कर मेरी आज्ञा मुझे सुप्रत करो। आज्ञाकारी कृष्ण महाराजका हुकमको सविनय शिर चढाके द्वारकामें उद्‌-कर आज्ञा सुप्रत कर दी।

इधर पद्मावती राणी भगवानकी देशना सुन हर्ष-संतोष होके बोली कि हे भगवान! आपका वचनमें मुझे श्रद्धा प्रतित आइ श्रीकृष्णको पुछके मैं आपके पास दीक्षा लउंगा। भगवानने कहा "जहासुखं.

पद्मावती भगवानको वन्दन कर अपने स्थानपर आइ, अपने पति श्रीकृष्णको पुछा कि आपकी आज्ञा हो तो मैं भगवानकी पास दीक्षा ग्रहन करूं "जहासुखं" कृष्णमहाराजने पद्मावती राणी का दीक्षाका वडा भारी महोत्सव किया। हजार पुरुषमें उठाने योग्य सेवीकामें बैठाके वडा वरघोडाके साथ भगवानके पास जाके वन्दन कर श्रीकृष्ण बोलता हुवा कि हे भगवान! यह पद्मावती राणी मेरे वहुतही इष्ट यावत परमवल्लभा थी, परन्तु आपकी देशना सुन दीक्षा लेना चाहती है। हे भगवान! मैं यह शिष्य-णीरूपी भिक्षा देता हुं आप स्वीकार करावे।

पद्मावती राणी वस्त्राभूषण उतार शिरलोच कर भगवानके पास आके बोली हे भगवान! इस संसारके अन्दर अलीता-पलीता लग रहा है आप मुझे दीक्षा दे मेरा कल्यान करे। तव भगवानने स्वयं पद्मावती राणीको दीक्षा दे यक्षणाजी साध्विकी शिष्याणी वनाके सुप्रत कर दी फीर यक्षणाजीने पद्मावतीको दीक्षा-शिक्षा दी।

(७) लाखका वैपार करना (असंख्य जीवोत्पति-स्थान है)

(८) रस, मधु, तेल, घृत, गुल आदि (जिस्में पां-चेन्द्रियकिभी घात होजातीहै)

(९) केसवाले जीव– मनुष्य पशुआदि तथा जठउ-नादिका वैपार

(१० विष सोमल, नागवत्स, अफीम, वंग, गंजा आदिका वैपार

(११) मीलों, चरखीयों, गाणी, यंत्र नीकलाना

(१२) मनुष्य या पशु आदि पुरुषकों नपुंसक कराना

(१३) अग्निआदिकों लगाना वन जलादेना

(१४) सरद्रह, तलाव, नदी आदिका जलकों शुपाने-का इजाएदि लेना

(१५) असतिकर्म करनेवालोंका पौपन करना वैपार-निमत्ते, जेस वैश्याकों नोकर रखके कुकर्म करना, शीकारीकों रख शिकार करना, उपर लिखे १५ कर्मादान श्रावकोंको वी-लकुल त्याग करना चाहिये अगर वैपारवाली वस्तु जेसे गुल शकर, तेल, घृत, दान्त आदिसे वीलकुल नही त्याग कर-शक्तेहो तोभी मर्यादातों आवश्य करना चाहिये ।

यह २० अतिचार सदैव वर्जना चाहिये ।

चैत्यके अन्दर पधारे, राजा श्रेणिक, चेलणा राणी और नगरजन भगवानको वन्दन करनेको गये, यह वात माकाइ गाथापति श्रवण कर वह भी भगवानको वन्दन करनेको गये ।

भगवानने उस आइ हुइ परिषदाको अमृतमय धर्मदेशना दी । श्रोतागण सुधारस पान कर यथाशक्ति त्याग-वैराग धारण कर स्वस्थान गमन किया । माकाइ गाथापति देशना सुन संसारको असार जान कर अपने जेष्टपुत्रको कुटुम्बभार सुप्रत कर भगवानके पास दीक्षा ग्रहन करी । माकाइमुनि इर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचर्यको पालन करता हुवा तथारूपके स्थिवर भगवन्तोंकी भक्ति विनय कर एकादशांगका ज्ञानाभ्यास किया । वादमे वहुतसी तपश्चर्या करते हुवे महामुनि गुणरत्न संवत्सर तप कर अपने शरीरको जर्जरित बना दीया । सर्व सोला वर्ष दीक्षा पालके अन्तिम विपुल (व्यवहारगिरि) गिरि पर्वतके उपर एक मासका अनशन कर केवलज्ञान प्राप्त कर शाश्वत सुखको प्राप्त हुवे । इति प्रथम अध्ययन । इसी माफीक किंकम नामका गाथापति भगवान समीपे दीक्षा ले व्यवहारगिरि तीर्थपर मोक्षप्राप्ति करी । इति दुसरा अध्ययन समाप्तं ।

तीसरा अध्ययन—राजगृह नगर, गुणशीला उद्यान, श्रेणिक राजा, चेलणा राणी वर्णन करने योग्य जेसे पूर्व कर आये थे । उसी राजगृह नगरके अन्दर अर्जुन नामका माली रहता था जिन्होंके वन्धुमती नामकी भार्या अच्छे स्वरूपवन्ती थी । उसी नगरके वहार अर्जुन मालीका एक पुष्पाराम नामका वगेचा था वह पंच वर्णके पुष्पोरूपी लक्ष्मीसे अच्छे सुशोभीत था । उसी वगेचाके अति दूर भी नहीं अति नजीक भी नहीं एक मोगरपाणी यक्षका यक्षायतन था । वह अर्जुन मालीके वापदादा परदादा

च्यार शिक्षाव्रत प्रतिदिन करनेका है

नौवा सामायिकव्रत ।

(१) द्रव्यशुद्धि–शरीर तथा सामायिकके उपकरणशुद्ध
(२) क्षेत्रशुद्धि–मकांन रागद्विषके कारणवाला नहो।
(३) कालशुद्धि–निवृतिभावका कालहो
(४) भावशुद्धि–दोय करण तीन योग शुद्धहोना
(५) सर्व सावद्ययोगोका निरूध होना

नौवा व्रतका पांच अतिचार

(१) मनकों सावद्य योगोंका विचारमे वरतायाहो
(२) वचनकों „ „ „ „
(३) कायकों „ „ „ „
(४) कम टैममे सामायिक पारिहो
(५) स्मरती न रखीहो तथा ३२ दोष न टालाहो
यह पांचों अतिचारोंका सदैव वर्जना चाहिये

दशवा व्रत दिशाविगासी

जो छठा व्रतमें दिशका तथा सातवा व्रतमें द्रव्यादिकि जावजीव मर्यादा करी थी उन्होंकों संक्षिप करनेके लिये प्रतिदिन १४ नियमका परिमाण करना तथा तीन महूर्त या दश महूर्तकि दिश विगासी करना

• इदरसे अर्जुनमाली और बन्धुमती भार्या दोनों पुष्प लेके मोगरपाणी यक्षके पासमे आये। पुष्पोंका ढेर कर (चढाके) अर्जुनमाली अपना शिर झुकाके यक्षको प्रणाम करता था इतनेमें तो पीच्छेसे वह छे गोटीले पुरुष आके अर्जुनमालीको पकड निविड (घन) बन्धनमें बान्ध कर एक तर्फ डाल दीया और बन्धुमतीमालणके साथ वह लंपट भोग भोगवना (मैथुन कर्म सेवन करने लग गये) शरू कर दीया।

अर्जुनमाली उन अत्याचारको देखके विचार कीयाकि मैं बालपणेसे इस मोगरपाणी यक्ष प्रतिमाकी सेवा-भक्ति करता हूं और आज मेरे उपर इतनी विपत्तपडने परभी मेरी साहिता नही करता हैं तो न जाणे मोगरपाणी यक्ष है या नही। मालुम होता हैं कि केवल काष्टकी प्रतिमाही बेठा रखी है इसी माफीक देवपर अश्रद्धा करता हुवा निराश हो रहा था।

इदर मोगरपाणी यक्षने अर्जुनमालीका यह अध्यवसाय जानके आप (यक्ष) मालीके शरीरमें आके प्रवेश किया। बस। मालीके शरीरमें यक्षका प्रवेश होते ही वह बन्धन एकही साथमें तुट पडे और जो सहस्र पलसे बना हुवा मुद्गल हाथमें लेके छे गोटीले पुरुष और सातवी अपनी भार्या उन्होंका चकचुर कर अकार्यका प्रत्यक्षमें फल देता हुवा परलोक पहुंचा दिया।

अर्जुन मालीको छे पुरुष और सातवी स्त्रीपर इतना तो द्वेष हो गया कि अपने शरीरमें यक्ष होनेसे सहस्रपलवाले मुद्गल द्वारा प्रतिदिन छे पुरुष और एक स्त्रीको मारनेसे ही किंचित् संतोष होता था अर्थात् प्रतिदिन सात जीवोंकी घात करता था। यह बात राजगृह नगरमें बहुतसे लोगों द्वारा सुनके राजा श्रेणिकने नगरमें उद्घोषणा करा दी कि कोइ भी मनुष्य तृण, काष्ट, पाणी

बारहवा अतित्थी संविभागव्रत

मुनिमहाराज तथा साध्वीजीका योग मीलनेपर उत्साव भावसे दानदेना, अन्यथा भावना करना, तथा श्रावक या सम्यग्द्रष्टीको भी अपने घरपर भोजन कराना

(१) मुनिमहाराज पधारनेपर सामनेजाना

(२) आदरपूर्वक आपने घरपर लाना

(३) साधुवोंके योग्य वस्तुकि आमन्त्रण करना

(४) उद्धारभावसे दांन अविलभंसे देना

(५) जातेहूवेकों पहूचानेकों जाना, और पधारनेकि विनन्ती करना

बारहवा व्रतके पांच अतिचार

(१) सचितवस्तु करके देनेकी वस्तु ढाकीहो

(२) देनेकीवस्तु सचितपर रखदीहो

(३) वस्तुके धणीकी मालकी फेरीहों

(४) मत्सरभावसे दानका देना

(५) काल अतिक्रमनके बाद–आमन्त्रण करना

यह पांचो अतिचारकों सदैव वर्जना चाहिये

यह संक्षेपसे १२ व्रतकि टीप लिखी है कि कोइभी श्रावक सुखपूर्वक व्रत लेशके। जिस रीतीसे व्रत लेतेहैं उसी रीतीसे व्रत पालन करना चाहिये व्रतोंके अतिचारभी साथमे लिखदीयाहै कारण व्रतपालनमे अतिचार टालना पुष्टीकारक

था वह आता था. इतनेमें अर्जुन माली सुदर्शनको देखके बडा भारी कुपित होकर हाथमें सहस्रपल लोहका मुद्गल लेके सुदर्शनको मारनेको आरहा था। श्रेष्ठीने मालीको आता हुवा देखके किंचित मात्रभी भय क्षोभ नहीं करता हुवा वस्त्राचलसे भूमिकाको प्रतिलेखन कर दोनों कर शिरपे लगाके एक नमुत्थुणं सिद्धोंको और दुसरा भगवान वीरप्रभुको देके बोला कि मैं पहलेही भगवावानसे व्रत लिये थे और आज भी भगवानकी साक्षीसे सर्वथा प्राणातिपात यावत मिथ्यादर्शन एवं अठारा पाप और च्यारों प्रकारके आहारका प्रत्याख्यान जावजीवके लीये करता हुं परन्तु इस उपसर्गसे बच जाउं तो यह सागारी संथारा पारना मुझे कल्पे है अगर इतनेमें काल करजाउं तो जावजीवका अनशन है एसा अभिग्रह धारण कर आत्मध्यानमें मग्न हो रहा था. शेठीजीने यह भी विचार किया था कि अज्ञानपणे विषयकषायके अन्दर अनन्तीवार मृत्यु हुवा है परन्तु एसा मृत्यु आगे कबी भी नहीं हुवा है और जितना आयुष्य है वह तो अवश्य भोगवना ही पडेगा वास्ते ज्ञानमें ही आत्मरमणता करना ठीक है।

अर्जुनमाली सुदर्शनश्रेष्ठीके पास आया क्रोधसे पूर्ण प्रज्वलत हो के मुद्गलसे मारना बहुत चाहा परन्तु धर्मके प्रभाव हाथ तक भी उंचा नहीं हुवा मालीजीने शेठीजीके सामने जाया इतने में जो मालीके शरीरमे मोगरपाणि यक्ष था वह मुद्गल ले के वहां से विदा हो गये अर्थात् निज स्थानमें चला गया।

शरीरसे यक्ष चले जाने पर माली कमजोर हो के धरतीपर गीर पडा, इधर शेठीजीने निरूपसर्ग जांनके अपनी प्रतिमा पालन कर अनसन पारा। इतनेमे अर्जुनमाली सचेत हो के बोला कि आप कोन है और कहां पर जाते है। शेठीजीने उत्तर दिया कि

२ 'द्रव्य' जितनी चीज मूंहमें जावे उतने द्रव्य-जल, मंजन, दातन, रोटी, दाल, चावल, कढी, साग, मिठाई, पूरी, घी, पापड, पान सुपारी, चूरन मसाला आदि ।

३ 'विगय'-६ जिनमेंसे मधु, मांस, मक्खन और मदिरा ये ४ महाविगय अभक्ष्य होनेसे श्रावकको अवश्य त्याग करना चाहिये और शेष (५) घी, तेल, दूध, दहीं, गुड, खांड अथवा मीठा पक्वान ।

४ 'उपानह'-जूता, बूंट, सिलीपर, मोजा आदि जो पांवमें पहना जाय ।

५ 'तंबोल'-पान, सुपारी, इलायची, लौंग, पानका मसाला आदि ।

६ 'वथ्थ'-वस्त्र (आभूषण 'जेवर' की संख्या भी इसी नियममें धारलेना चाहिये) पगडी, टोपी, साफा, अंग-रखा, चोगा, कुडता, धोती, पायजामा, दुपट्टा, चद्दर, अंगोछा, रुमाल आदि मरदाना और जनाना कपडा जो ओढने पहेर-नेमें आवे ।

७ 'कुसुमेसु'-फूल, फूलनकी चीजें जैसे-शय्या, पंखा, सेहरा, तुरा, हार, गजरा, अत्तर जो चीज सूंघनेसे आवे ।

८ 'वाहन'-सवारी-गाडी, फिटीन, सिगराम, हाथी, घोडा, रथ, पालखी, डोली, मोटर, साईकल, रेल, नाव, ज-हाज, स्टीमर आदि 'याने तरता-फिरता, चरता, और उडता'।

वृद्ध कहने लगे कि अहो। इस पापीने मेरे पिताको मारा था कोइ कहते है कि मेरी माताको मारी थी। कोइ कहते है कि मेरे भाइ बहेन औरत पुत्र पुत्री और सगे-सम्बन्धीओंको मारा था इसीसे कोइ आक्रोष वचन तो कोइ हीलना पथरोंसे मारना तर्जना ताडना आदि दे रहे थे। परन्तु अर्जुन मुनिने लगार मात्र भी उन्हों पर द्वेष नहीं कीया मुनिने विचारा कि मैंने तो इन्होंके संबन्धीयोंके प्राणोंका नाश कीया है तो यह तो मेरेको गालीगुस्सा ही दे रहे है। इत्यादि आत्मभावनासे अपने बन्धे हुवे कर्मोंको सम्यक् प्रकारसे सहन करता हुवा कर्मशत्रुओंका पराजय कर रहा था।

अर्जुन मुनिको आहार मीले तो पाणी न मीले, पाणी मीले तो आहार न मीले। तथापि मुनिश्री किंचित् भी दीनपणा नही लाता था यह आहारपाणी भगवानकी दीयाके अमूर्छितपणे कायाको भाडा देता था, जेसे सर्प बीलके अन्दर प्रवेश करता है इसी माफीक मुनि आहार करते थे। एसेही हमेशांके लीये छठ२ पारणा होता था।

एक समय भगवान राजगृह नगरसे विहार कर अन्य जनपद देशमें गमन करते हुवे। अर्जुनमुनि इस माफीक क्षमा सहीत घोर तपश्चर्या करते हुवे छ मास दीक्षा पाली जिस्मे शरीर को पुर्णतया जर्जरित कर दीया जेसे खंदकमुनिकी माफीक।

अन्तिम आधा मास अर्थात पन्दरा दीनका अनशन कर कर्मोंसे विमुक्त हो अव्याबाध शाश्वत सुखोंमे विराजमान हो गये मोक्ष पधार गये इति।

चोथा अध्ययन-राजगृह नगर गुणशीलोद्यान श्रेणीक राजा चेलना राणी। उसी नगरमें कासव नामका गाथापति बडाही धनाढ्य वसता था। भगवान पधारे मकाईकी माफिक दीक्षा ले

नियमोंके साथ इनकीभी मर्यादा करली जावे ताकि इनसेभी बहुतसे पाप रुकजाते हैं.

६ काय.

१ पृथ्वीकाय-मटी निमक आदि (खानेमें वा उपभोगमें आवे) उसका वजन।

२ अपकाय-जो पानी पीनेमें या दूसरे उपयोगमें आवे उसका वजन पानीकी जात कूवा, बावडी, तलाव, नदी, नल और मेघ आदिका प्रमाण संख्या भी करना अच्छा है, पानीविना छाना कोइभी काममें न लाना तथा जीवानीका यत्न करना अत्यावश्यकीय है।

३ तेउकाय-चूल्हा, अंगीठा, भट्टी, चिराक आदिका प्रमाण।

४ वायुकाय-हिंडोले पंखे [अपने हाथसे वा हुकमसे] जितने चलते होवें उनकी संख्याका प्रमाण. 'रुमालसें या कागजसे हवा लेनी यह भी पंखेमें गिनी जाती है उसकी जयणा'।

५ वनस्पतिकाय-हराशाक तथा फलादि इतनी जातके खाने घर संबंधी मंगाने जीसकी गिनती तथा वजन।

६ त्रयकाय-त्रसजीव अपराधी, विनापराधीका विचार करना। यह ६ कायका परिमाण करलेना।

क्रीडा करनेको रास्तेमें आता हुवा गौतमस्वामिकों देखके अमन्तों कुमर बोलाकि हे भगवान ! आप कौनहो ओर कीस वास्ते इधर उधर फीरते हो ? गौतमस्वामिने उत्तर दीयाकि हे कुमर हम इर्यासमिति यावत ब्रह्मचर्य पालने वाले मुनि है ओर समुदाणी भिक्षाके लिये अटन कर रहे है। अमन्तोकुमार बोलाकि हे भगवान हमारे वहां पधारे हम आपकों भिक्षा दीरावेंगे,, एसा कहके गौतमस्वामिकी अंगुली[1] पकडके अपने घरपर ले आये श्रीदेवीराणी गौतमस्वामिकों आते हुये देखके हर्ष संतोषके साथ अपने आसनसे उठ सात आठ पग सन्मुख गई वन्दन नमस्कार कर भात्त पाणीके घरमे ले जायके च्यार प्रकारका आहारका सहर्ष दान दीया।

अमन्तोकुमर गौतमस्वामिसे अर्ज करी कि हे भगवान आप कहांपर विराजते हो ? हे अमन्ता ! इस नगरके बाहार श्रीवनोद्यानमे हमारे धर्माचार्य धर्मकी आदिके करनेवाले श्रमण भगवान वीरप्रभु विराजते है उन्होंके चरण कमलोंमें हम निवास करते है। अमन्तोकुमरबोलाकि हे भगवान ! मैं आपके साथ चलके आपके भगवान वीर प्रभुका चरण वन्दन करु " जहा सुखं। " तब अमन्तों कुमर भगवान गौतमस्वामिके साथ होके श्रीवनोद्यानमे आके भगवान वीरप्रभुकों वन्दन नमस्कार कर सेवा भक्ति करने लगा।

भगवान गौतमस्वामि लाया हुवा आहार भगवानकों बताके पारणो कर तप संयममें रमनता करने लगा।

---

१ ढुंढीये लोक कहते है कि एक हाथमे गौतमके झोलीथी दुसरे हाथकि अगुली अमन्तेने पकडली तो फीर खुले मुहवातों कैसे करी वास्ते मुहपति बन्धनेकोंथी ? उत्तर एक हाथकि कुणीपर झोली ओरहाथमे मुहपत्तीसे यत्ना करीथी दुसरे हाथकी अगुली अमन्ताने पकडीथी आजभी जैन मुनि ठीक तोरपर बोल सकते हैं।

पच्चक्खाइ अन्नत्थणा भोगेणं सहसागारेणं लेवालेवेणं गिह-त्थसंसट्ठेणं उक्खित्तविगेयेणं पडुच्चमक्खियेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं, देसावगासियं उवभोगपरिभोगं पच्च-क्खाइ अनत्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वस-माहिवत्तियागारेणं वोसिरे ।

॥ पच्चक्खाण पारनेका पाठ. ॥

उग्गएसूरे नमुक्कारसहियं पोरिसियं मुट्ठिसहियं पच्चक्खा-ण किया चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खाण फासिअं पालिअं सोहिअं । तीरिअं किट्टिअं आराहिअं जं च न आराहिअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं । पीछे एक नमस्कार मंत्र पढे । शम् ।

१ बिदल. जिस अन्नकी दो दाल (द्विदल) होजाय, और जिसमेंसें तेल नहीं निकले, उस अन्नको कच्चे दूध, दहीं, छाशके साथ अर्थात् मिलायके खाना बडा दोष कहा है. दहीं वगैरह खुब गरम करके खानेमें विदलका दोष नहीं है ।

२ आचार सब तरहका (संधान) ३ रोज बाद अ-भक्ष्य होजाता है ।

३ कंदमूल ३२ अनन्तकाय. यह सबसें जादे दोषकी चीज होनेसें बिलकुल छोडने लायक है ।

४ ऋतुधर्मवाली औरतोंको २४ पहर गृहकार्य न करना चाहिये ।

माताजीने कहा कि हे पुत्र! अगर आप दीक्षा ही लेना चाहते हो तो एक दिनका राज कर मेरे मनोरथकों पूर्ण करों। अमन्तोकुमर इस बातको सुनके मौन रहा। जब माता-पितानें बडा ही आडम्बर कर कुमरका राजअभिषेक कर बोले कि हे लालजी आप कि क्या इच्छा है आज्ञा करों। कुमरने कहा कि तीन लक्ष सोनइया लक्ष्मीके भंडारसे निकाल दो लक्षके रजोहरण पात्रा और एकलक्ष हजामकों दे मेरे दीक्षा कि तैयारी करावों। जेसे महाबलकुमरके दीक्षाका महोत्सव कीया इसी माफीक बडे ही महोत्सव पुर्वक भगवानके पास अमन्ताकुमरको भी दीक्षा दराइ। तथारूपके स्थिवरों के पास एकादशांगका ज्ञान कीया।* बहुतसे वर्ष दीक्षा पाली गुणरत्न समत्सरादि तप कर अन्तमे व्यवहार गिरिपर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गया॥ १५॥

सोलवा अध्ययन-बनारसी नगरी काम बनोद्यान अलख नामका राजाथा. उस समय भगवान वीरप्रभुका आगमन हुवा. कोणकको माफीक अलखराजाभी वन्दन करने कों गया। धर्म

---

* भगवतीसूत्र शतक ५ उ० ४ में लिखा है कि एक समय बडी बरसाद वर्षनेके बादमें स्थिवरोंके साथमें अमन्तोबालऋषि स्थंडिले गया था स्थिवर कुच्छ दूर गये थे अमन्तोऋषि पीच्छे आते समय पाणीके अन्दर मट्टीकी पाल बन्ध अपने पासकी पातरी उस्मे डाल तीरती हुइ देख बोलता है कि यह मेरी नइया (नौका) तिर रही है। इसे स्थिवरोंने देखा उसी समय स्थिवरोंको बडा ही विचार हुवा कि देखो यह बालऋषि क्या अनुचित क्रीडा कर रहा है। वह एक तर्फसे भगवानके समिप आके पुच्छा कि हे भगवान! आपका शिष्य अमन्तो बालऋषि कितना भव कर मोक्ष जावेगा। भगवानने उत्तर दिया की हे स्थिवरों अमन्ताऋषि कि हीलना मत करों यावत् अमन्ताऋषि चरम शरीरी अर्थात् इसी भवमें मोक्ष जावेगा। वास्ते तुम सब मुनि बालऋषिकि व्यावच्च करो। इति।

अथश्री

जिनमन्दिरोंकि ८४ आशातना

शास्त्रकारोंने २५ प्रकारका मिथ्यात्व बतलायेहै जिस्में आशातनाकोंभि मिथ्यात्व मानाहै वास्ते जिनेन्द्रदेवोंके भक्त जिनमन्दिरमे जाते समय निम्न लिखत आशातनावोंको आवश्य वर्जना चाहिये, आशातना उन्हीका नाम है कि जो पूर्वाचार्योंने जो जो कायदा बान्धा है उन्हीसे खीलाप वर्तन करना या बेअदबी, बेदरकारी रखना इन्ही आशातनावोंसे भवान्तरमे जीव दुर्लभबोधी होताहै वास्ते भवभिरू आत्मावोंको आशातना टालके बहू मानपूर्वक जिनभक्ति करना चाहिये जिनभक्तिका फल शास्त्रकारोंने यावत् मोक्षका बतलायेहै।

८४ आशातना

(१) जिनमन्दिरमें मुहका खेल खंखारडालना
(२) ,, जुवे पत्ता चोपट सतरूजादिका रमना
(३) ,, आपसमे कलेश कदाग्रह गलीगुसा देना
(४) ,, धनुपादि संसारीक कला सीखना सीखावना

(८) आठवा वर्गके दश अध्ययन है।

चम्पानगरी पुर्णभद्र उधान कोणक नामका राजा राज कर रहाथा। उसी चम्पानगरीमें श्रेणीक राजाकि राणी कोणक राजाकि चुलमाता [1]कालीनामकि राणी निवास करतीथी.

भगवान वीरप्रभुका आगमन हुवा नन्दाराणीकि माफीक कालीराणी भी देशना सुन दीक्षा ग्रहन कर इग्यारे अंग ज्ञानाभ्यासकर चोत्थ छट्ठादि विचित्र प्रकारसे तपश्चर्याकर अपनि आत्माकों भावती हुइ वीचर रहीथी।

एक समय काली साध्विने आर्य चन्दन बाला साध्विको वन्दन कर अर्ज करी कि आपकी रजा हो तो मैं रत्नावली तप प्रारंभ करु ? जहासुखम्।

आर्या चन्दन बालाजीकी आज्ञा होनेसे काली साध्वीने रत्नावली तप शरु किया। प्रथम एक उपवास किया पारणेके दिन, "सव्वकामगुण" सर्व विगइ अर्थात् दूध दहीं घृत तैल मीठा इसे जेसे मीले वेसाही आहारसे पारणो कर सके। सब पारणेमें एसी विधि समझना। फिर दोय उपवास कर पारणो करे। फिर तीन उपवास कर पारणो करे बादमें आठ छठ (बेला) करे पारणो कर, उपवास करे, पारणो कर, छठ करे, पारणो कर अठम करे, पारणो कर च्यारोपास, पारणो कर पांचोउपवास पारणो कर छ उपवास, पारणो कर सात उपवास, पारणो कर आठ उपवास, एवं नव दश इग्यारा बारह तेरह चौदा पन्दर सोला उपवास करे, पारणो कर लगता चौतीस छठ करे, पारणो कर फीर

---

१ कालीराणीका विशेपाधिकार निरयावलिका सूत्रकि भाषामें लिखा जावेगा

(२५) ,, गलाका मैल ,, ,,
(२६) ,, मस्तकका मैल ,, ,,
(२७) ,, शरीरका मैल ,, ,,
(२८) ,, कांनका मैल ,, ,,
(२९) ,, भुतपिशाचादिकका मंत्रसाधन करना
(३०) ,, राजादिकके कार्यका विचार करना
(३१) ,, लग्नादि कार्यकि पांचायतीका करना
(३२) ,, व्यापारादिका हीसाबका करना
(३३) ,, भाई या पांतीदारकों धनादिका विभाग करना
(३४) ,, अपने घरका भंडारहो वहा मन्दिरजीमें रखना
(३५) ,, एक पगपर दुसरा पग छडाके बैठना
(३६) ,, मन्दिरजीकी भीतपर छाणा थापे तथा डेर लगावे
(३७) ,, अपना वस्त्रादि मन्दिरजीमें सुकावे
(३८) दालका दलना-मन्दिरजीका पत्थरले दालदले
(३९) पापड वडीयों मन्दिरजीमें या डागले सुकावे
(४०) ,, कयर संगरी आदि शाक सुकावे
(४१) ,, राजा आदि लेनदारके भयसे मूल गुभारादिमे छीपे
(४२) ,, पुत्रकलित्रा आदिके मरणासे मन्दिरजीमे रेवे
(४३) ,, चारप्रकारकी विकथा करे गप्पोमारे

इसी मांफीक महाकालीराणी दीक्षा ले यावत् लघु -सिंहकी चाली माफीक तप करा यथा--एक उपवास कर पारणा कीया फीर दोय उपवास कीया पारणा कर, एक उपवास पारणा कर तीन उपवास पारणा कर दोय उपवास, पारणोकर च्यार उपवास पारणो कर तीन उपवास, पारणो कर पांच उपवास, पारणो कर च्यार उपवास, पारणो कर छे उपवास, पारणो कर पांच उपवास, पारणो कर सप्त उपवास, पारणो कर छे उपवास, पारणो कर आठ उपवास करे, सात उपवास करे०, नव उप०, आठ उप०, नव उप०, सात उप०, आठ उप०, छे उप०, सात उप०, पांच उ०, छे उ०, च्यार उ०, पांच उ०, तीन उ०, च्यार उ०, दोय उ०, तीन उ०, एक उ०, दोय उ०, एक उ०, एक ओलीकों १८७ दिन लागे पूर्ववत् च्यार ओलीकों दोय वर्ष अठावीश दिन लागे। यावत् सिद्ध हुई ॥ ३ ॥

इसी माफीक कृष्णाराणीका परन्तु उन्होंने महासिंह निकल तप जो लघुसिंह० वडते हुवे नव उपवास तक कहा है इसी माफीक १६ उपवास तक समझना एक ओलीकों एक वर्ष छ मास अठारा दिन लगा था। च्यार ओली पूर्ववत्कों छे वर्ष दोय मास बारह दिन लगा था यावत् मोक्ष गइ ॥ ४ ॥

इसी माफीक सुकृष्णराणी परन्तु सत्त सत्तमियों कि भिक्षु प्रतिमा तप कीया था यथा-सात दिन तक एक एक आहार कि दात[1] एकेक पाणीकी दात। दूसरे सात दिन तक दो आहार दो

[1] दातार देते समय बिचमे धार खंडित न हो उसे दात कहेते हैं जैसे मोदक देते समय एक बुंद पड जावे तथा पाणी देते समय एक बुंद गिर जावे तो उसे भी दात कहते हैं। अगर एक ही साथमे थालभर मोदक और घडाभर, पाणी देतो भी एकही दात हैं

(६०) ,, मस्तकमे मुंकट पेहरके जावेतों

(६१) ,, शिरपर पागके उपर लपेटा या जाडीयो बन्धके जावेतो ,, देशाचारकि वात अलगहै

(६२) ,, पुष्पोंका सेहरा शिरपे पेहरके जावेतों

(६३) ,, नालेयर आदिका छांत डालेतों

(६४) ,, गैदडी आदिसे खेलेतो

(६५) ,, पिता आदि सज्जनोंसे जुहार करेतों

(६६) ,, भांड कुचेष्टा आदि करनेसे

(६७) ,, किसीका तीरस्कार करे, रेकारा, तुंकारादेवेतो

(६८) ,, लेहने, देनेके लिये मन्दिरजीमे धरणादेवेतो

(६९) ,, संग्रामकरे–मारामारी आदि करेतो

(७०) ,, मस्तकका केशादि सुकावे कांगसीयांसे समारेतो

(७१) ,, पालटीमारी वेसे तथा शय्याकर शयन करेतो

(७२) ,, कष्टादिकि पादुका पगोमें पेहरके जावेतों

(७३) ,, पग पसारे धबावे चंपावे धवकी दीरावेतो

(७४) ,, सुखकेवास्ते स्नानमज्जन करना

(७५) ,, हस्त मुख वस्त्रादिधोके किचड करेतो

(७६) ,, पगोंके लगीहूइ मटीधुल मन्दिरमें खेरेतों

(७७) ,, विषयकारी वार्ताकरे औरतोंको सरागसे देखेतों

(७८) ,, मैथुन संबन्धी वार्ताओं करे या मैथुन सेवेतो

इसी माफीक वीर कृष्णा राणी परंतु महा सर्वतो भद्र तप कीया था। यथा यंत्र एक ओलीने आठ मास पांच दिन एवं च्यार ओलीने दोय वर्ष आठ मास और वीस दिन लगा था। पारणमें भोजनविधि सर्वरत्नावली तपकि माफीक समजना औरभी विचित्र प्रकारसे तपकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें विराजमान हुवे इति। ७।

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

इसी माफीक रामकृष्णा राणी परन्तु भद्रोत्तर प्रतिमा तप कीयाथा। यथा यंत्र एक ओलीकों छे मास ओर वीस दिन तथा च्यार ओलीकों दोय वर्ष दोय मास ओर विसदिन औरभी बहुत तप कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्षमें विराजमान हुवे इति।८।

५	६	७	८	९
७	८	९	५	६
९	५	६	७	८
६	७	८	९	५
८	९	५	६	७

इसी माफीक पितुसेन कृष्णाराणी परन्तु मुक्तावली तप कीया यथा—एक उपवास कर पारणा कर छठ कीया पारणा, कर एक

फरमान है कि मन्दिर मूर्ति मोक्षार्थीयोंको एक मोक्षमार्गका साधनभूतहै परन्तु लोभानन्दीयोंके हाथमे ममत्त्व भावसे उलटी वादक होजाते है वास्ते आत्मार्थी भाइयोंको लोभवृत्ति त्यागकर आसातनाओंसे बचना चाहिये ।

कीतनेक स्थानपर श्रावकलोक बीलकुल आलसी और प्रमादी पुरुषार्थ हीनबन बेठहै और मन्दिरजी नजाने सेवक भोजक ब्राह्मण साध रावल लोकोंको रजिष्टर ही करदीयाहो वह मिथ्यात्वी लोक अपने मनमाने वरताव मन्दिरजीमें करते है सेठजीतो दर्शन करनेको भी नासते भागते आतेहै अगर पूजाभी करनीहोतो केशर चन्दन तैयार रेहतेहै झट एक टीकी इदर दुसरी उदर देके अपनी वेगर निकालदेते है जहां देखाजावे वहां मिथ्यात्वी पूजेरोंका इतनातो फेल वदगयाहै की कीसी प्रकारकी आसातना करनेपरभी कोइ कहेनेवाले नही मीलतेहै अगर कोइ कहेतोभी दुसरेभाइ केहदेतेहैकि यह पूजारी नाराज होजायगातो मन्दिरजी कोनपूजेगा क्या जैनोंकी वाहदुरीहै जिन्हीके जरिये अपनी आत्माका कल्याण मनतेहै और उन्ही मन्दिरोंकी कुच्छभी सार नही करना क्या यह इसभव और परभवमें हितकारीहोगा ? आत्मवन्धुवों यह काम नोकरोंसे लेनेका नहींहै किन्तु इसमे आत्मकल्याण समझके अपने हाथसे करनेकाहै नोकरोंसेतो कचरा नीकलाना वरतन गसाना या वाहारका कामलो मूल गुभारामें अपने हाथसे सब काम करना चाहिये किमधिकम् ।

श्री अनुत्तरोववाइ सूत्रका संक्षिप्त सार.

(प्रथम वर्गके दश अध्ययन है.)

(१) पहला अध्ययन—राजगृह नगर गुणशीलोद्यान श्रेणिक राजा चेलनाराणी इसका विस्तार अर्थ गौतमकुमारके अध्ययन से समझना।

श्रेणकराजा के धारणी नामकी राणीकों सिंह स्वप्न सूचित जाली नामक पुत्रका जन्म हुवा महोत्सवके साथ पांच धायांसे पालीत आठ वर्षका होनेके बाद कलाचार्यसे बहुत्तर कलाभ्यास यावत् युवक अवस्था होने पर बडे बडे आठ राजावोंकी आठ कन्यावों के साथ जालीकुमारका विवाह कर दीया दत दायजो पूर्ववत् समझना। जालीकुमार पूर्व संचित्त पुन्योदय आठ अन्तेउरके साथ देवतावों कि माफीक सुखोंका अनुभव कर रहा था।

भगवान वीरप्रभुका आगमन राजादि वन्दन करने को पूर्व-वत् तथा-जालीकुमर भी वन्दनकों गया देशना श्रवण कर आठ अन्तेवर और संसारका त्याग कर माता-पिताकी आज्ञा ले बडे ही महोत्सवके साथ भगवान वीरप्रभुके पास दीक्षा ग्रहण करी, विनयभक्तिसे इग्यारा अंगका ज्ञानाभ्यास कर चोत्थ छठ अठमादि तपस्या करते हुवे गुणरत्न समत्सर तपकर अपनि आत्माकों उज्वल बनाते हुवे अन्तिम भगवानकी आज्ञा ले साधु साध्वीयोंसे क्षमत्क्षामणा कर स्थिवर भगवानके साथ विपुलगिरि पर्वत पर अनसन किया सर्व सोला वर्षकी दीक्षा पाली। एक मास

(५) मन, वचन, कायाके योग्योंकों सावद्य वैपारसे रोकके भगवानकि भक्तिमे तल्लीन वनादेवे ।

। दशत्रिक–मन्दिरजीमें रखनेकाहै ।

(१) निस्सिहीत्रिक–जिनमन्दिरमें जानेवाले आत्मवन्धुवोंकों तीन स्थानपर निस्सिही शब्दका उच्चारण करना चाहिये यत् (१) मन्दिरजीके द्वारपर पहूचतेंही " निस्सिही " कहना मतलवकि अवमैं संसारसंवन्धी कार्यसे निवृतिहूवाहू फिर कीतनाहीं काम क्युं नहो परन्तु संसारसंवन्धी कुच्छभी वार्तालाप नकरना (२) प्रदिक्षणा देनेकेवाद " निस्सिही " कहना कारण पहले निस्सिहीमें संसारकार्य छोडाथा परन्तु मन्दिरजीकी फूट-टूट कचारादि आसातना टलाना श्रावकका फर्जहै वह सब करना या देखना राहाथा वहकरके अब दुसरीदफे " निस्सिही " मे उन्हींसें भी निवृतताहू (३) द्रव्यपूजा करनेकेवाद " तीसरी निस्सिही " जो दुसरी निस्सिहीमें घर और मन्दिरजीके कार्यसे निवृतिहूवाथा परन्तु द्रव्यपूजा करनाथा वहभी होजानेके बाद निस्सिही कहके अबमैं द्रव्यपूजासेंभी निवृतताहूं फिर भावपूजाकरे यह निस्सिहीत्रिकके माफीक वर्ताव रखना चाहिये।

---

१ आचार्योंका मत्तहैकी घरसे निकलतेंही " निस्सिही " कहना चाहिये फिर रहस्तेमे भी ससार सबन्धी वार्ता न करना चाहिये ।

वैमान, चोथा अप्राजत वैमान, पांचवा छटा सर्वार्थसिद्ध वैमान। शेष च्यार मुनि विजय वैमानमे उत्पन्न हुवे। वहांसे चयके मव महाविदेह क्षेत्रमें पूर्ववत् मोक्ष जावेगा। इति प्रथम वर्गके दशाध्यायन समाप्तम। प्रथम वर्ग समाप्तम्।

—❀◎❀—

(२) दुसरे वर्गका तेरह अध्ययन है।

प्रथम अध्ययन—राजगृह नगर श्रेणिकराजा धारणी राणी सिंह सुपनसूचित दीर्घसेन कुमरका जन्म बाल्यावस्था कलाभ्यास पाणीग्रहन आठ राजकन्यावोंके साथ विवाह यावत् मनुष्य संबधी पांचो इन्द्रियके सुख भोगवते हुवे विचर रहाथा। भगवान वीर प्रभुका आगमन हुवा धर्मदेशना सुनके दीर्घसेन कुमार दीक्षा ग्रहण करी सोला वर्षकी दीक्षा पालके विपुलगिरि पर्वत पर एक मासका अनसन कर विजय वैमान गये वहांसे एकही भव महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाति कुलमें जन्म ले के फीर केवली प्ररुपित धर्म स्वीकार कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा। इति प्रथमाध्ययन समाप्तम्। १।

इसी माफीक (२) महासेन कुमर (३) लठदन्त (४) गूढ दन्त (५) सुद्धदन्त (६) हलकुमर (७) दुम्मकु० (८) दुमसेन कु० (९) महादुमसेन (१०) सिंह (११) सिंहसेन (१२) महासिंहसेन (१३) पुन्यसेन यह तेरह राजकुमर श्रेणिक राजाकि धारणी राणीके पुत्र थे भगवान समिपं दीक्षा ले १६ वर्ष दीक्षा पाळी विचित्र प्रकारकि तपश्चर्या कर अन्तिम विपुलगिरि पर्वतपर अनसन करके क्रम सर दोय मुनि विजयवैमान, दोय मुनि विजयन्त वैमान, दोय मुनि जयन्त वैमान शेष सात मुनि स-

(६) दिशात्रिक-उर्ध्व, अधो, तीच्छीदिशा इन्ही तीनों दशावोंको छोडके केवल प्रभुसन्मुखही देखना और ध्यान करना यहांपर इतना विचार आवश्य करना चाहिये कि जिन्हीं जिनालयोंमे इन्द्रिय पोपक पदार्थ जैसे मनोहर स्वरूप वाली पुतलीयों और भी पदार्थोंसे चकचकाट करताहो वहांपर यह त्रिक पालनहोना मुशकिल है अगर श्वेत साफ स्थानहोतो यह त्रिक पालन करनेवालोंकों अच्छा सुभिता रहताहै ।

(७) प्रमार्जनत्रिक-जहांपर चैत्यवन्दन कियाजाताहै वहांपर भूमिकाको तीनदफे प्रमार्जन करना चाहिये जिन्होंसे जीवयत्ना और शुद्धोपयोग रहेशके ।

(८) वर्णत्रिक-चैत्यवन्दनादि बोलते वखत अक्षरका शुद्धोच्चारण करना (१) वर्णशुद्धि-शुद्ध अक्षरका उच्चारण करना (२) अर्थशुद्धि-कियेहूवे उच्चारणका शुद्ध अर्थपर उपयोग रखना (३) मनशुद्धि-मनका आलंबन एक जिनप्रतिमापरही रखे अर्थात् अर्थ सहित स्तवना करतेहुवे आत्माकों भगवानके गुणोंमे तल्लीन बनादे ।

(९) मुद्रात्रिक-(१) योगमुद्रा-पद्मकोशाकारे दोनों हाथ परस्पर अंगुली मीलाके मुद्रा करना (२) जिनमुद्रा-काउस्सगमें उभारेहना (३) मुक्ताशुक्तिमुद्रा-सीपके माफिक दोनों हाथ जोडना इस मुद्रासे प्रणिधान जयवीयरायादि करना इन्हींके सिवायभी २६ मुद्रा होतीहै ।

संवन्धी काभभोग भोगव रहा था अर्थात् वत्तीस प्रकारके नाटक आदि से आनन्दमें काल निर्गमन कर रहा था। यह सब, पूर्व सुकृतका ही फल है।

पृथ्वीमंडलको पवित्र करते हुवे वहुत शिष्योंके परिवारसे भगवान् वीरप्रभुका पधारना काकंदी नगरीके सहस्राम्रवनोधानमे हुवा।

कोणक राजाकी माफीक जयशत्रु राजा भी च्यार प्रकारकी सैनाके साथ भगवानको वन्दन करनेको जा रहा था, नगरलोक भी स्नानमज्जन कर अच्छे अच्छे वस्त्राभूपण धारण कर गज, अश्व, रथ, पिंजस, पालखी, सेविका समदाणी आदिपर सवार हो और कितनेक पैदल भी मध्यबजार होके भगवानको वन्दन करनेको जा रहे थे।

इधर धन्नोकुमार अपने प्रासादपर वैठो हुवो इन महान् परिपदाको एकदिशामें जाती हुइ देखके कंचुकी पुरुपसे दरियाफ्त करनेपर ज्ञात हुवा कि भगवान वीरप्रभुको वन्दन करनेको जनसमुह जा रहे हैं। वादमे आप भी च्यार अश्ववाले रथपर वैठके भगवानको वन्दन करनेको परिपदाके साथमें हो गये। जहाँ भगवान विराजमान थे वहां आये सवारी छोडके पांच अभिगम कर तीन प्रदक्षिणा दे वन्दन नमस्कार कर सव लोग अपने अपने योग्य स्थानपर वेठ गये। आये हुवे जनमसुद धर्माभिलापीयोंको भगवानने खुब ही विस्तार सहित धर्मदेशना सुनाइ। जिस्में भगवानने मुख्य यह फरमाया था कि—

हे भव्य जीवो! यह जीव अनादिकालसे संसारमें परिभ्रमन कर रहा है जिस्का मूलहेतु मिथ्यात्व, अव्रत, कपाय और योग हैं इन्हींसे शुभाशुभ कर्मोंका संचय होता है तब कभी राजा महाराजा

अथश्री

॥ जिनस्तुति ॥

(१)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धिश्चसिद्धिस्थिता,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः ।
श्रीसिद्धान्त सुपाठकामुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः ।
पञ्चैते परमेष्टिनःप्रतिदिनं, कुर्वन्तुवोमङ्गलम् ॥ १ ॥

(२)

किंकर्पुरमयं सुधारसमयं किं चन्द्ररोचिर्मयं
किं लावण्यमयं महामणिमयं कारुण्य केवलीमयं
विश्वानन्दमयं महोदयमयं शोभामयं चिन्मयं
शुक्लध्यानमयं विपुर्जिनपतेः भूयाद्भवालम्बनम् ॥

(३)

पूर्णानन्दमयं महोदयमयं कैवल्यचदङ्मयं
रूपातीतमयं स्वरूपरमणं स्वाभाविकीश्रीमयं ।
ज्ञानोद्योतमयं कृपारसमयं स्याद्वाद् विद्यालयं
श्रीसिद्धाचलतीर्थराजमनिशं वन्देऽहमादीश्वरम्

तुं मेरे एक ही पुत्र है तुझे बत्तीस ओरतो परणाइ है और यह अपरिमत्त द्रव्य जो तुमारे बापदादाओंके संचे हुवे हैं इसको भोगवो बादमें तुमारे पुत्रादिकी वृद्धि होनेपर भुक्त भोगी हो जावोंगे फीर हम काल धर्मको प्राप्त हो जावे बादमें दीक्षा लेना।

कुमरजीने कहा कि हे माता यह जीव भव भ्रमन करते हुवे अनेक बार माता पिता स्त्रि भरतार पुत्र पितादिका सबन्ध करता आया है कोइ कीसीको तारणेको समर्थ नही है धन दोलत राजपाट आदि भी जीवको बहुतसी दफे मीला है इन्हीसे जीवका कल्याण नही है। वास्ते आप आज्ञा दो मैं भगवानके पास दीक्षा लुंगा। माताने अनुकुल प्रतिकुल बहुत समझाया परन्तु कुमरतो एक ही बातपर कायम रहा आखिर माताने यह विचारा कि यह पुत्र अब घरमे रहेनेवाला नही है तो मेरे हाथसे दीक्षाका महोत्सव करके ही दीक्षा दिरादु। एसा विचार कर जेसे थावचा शेठाणी कृष्णमहाराजके पास गइ थी ओर थावच्चा पुत्रका दीक्षामहोत्सव कृष्णमहाराजने किया था इसी माफीक भद्रा शेठाणीने भी जयशत्रुराजाके पास भेटणो (निजरांणा) लेके गइ और धन्नाकुमारका दीक्षामहोत्सव जयशत्रुराजाने कीया इसी माफीक यावत् भगवान वीरप्रभुके पास धन्नोकुमर दीक्षा ग्रहनकर मुनि बनगया इर्यासमिति यावत गुप्त ब्रह्मचर्य व्रतको पालन करने लग गया.

जिस दिन धन्नाकुमारने दीक्षा लीथी उसी दिन अभिग्रह धारण कर लीयाथा कि मुझे कल्पे है जावजीव तक छठ छठ तप पारणा ओर पारणेके दिन भी आंबिल करना। जब पारणेके दिन आंबिलका आहार संस्पृष्ट हस्तोंसे देनेवाला देवे। वह भी बचा हुवा अरस निरस आहार वह भी श्रमण शाक्यादि माहण ब्राह्मणादि अतीथ कृपण वणीमंगादि भी उस आहारकी इच्छा न करे

(८)

विश्वव्यापीयशः प्रभाव विभवं सद्भूतभक्त्यानता,
प्राप्तानल्प विकल्पजल्पकमला, संकल्पकल्पद्रुमम् ।
स्फूर्जत्कज्जल मञ्जुलच्छवितनं श्रीपार्श्वदेवंस्तवे
जीरापल्लिपयोधिनेमिमहिला भालस्थलालङ्कृतिः ।

(९)

ग्रामस्वाम्यमरो मरीचिरमृताहार परिव्राजकः
षोढाचामृतभुक्भवोऽतिबहुलः श्रीविश्वभूतिर्मरुम्
विष्णुर्नैरयिको हरिश्चनरके भ्रान्तिर्भवान्तेबहु
श्चक्रीनाकिवरोऽथनन्दननृपःस्वर्गेऽवतात् त्रैशलः

(१०)

जगत्रयाधार कृपावतार दुर्वार ससार विकारवैद्य
श्रीवीतरागत्त्वयिमुग्धभावाद्विज्ञप्रभोविज्ञापयामिकिंचित् ।

(११)

किं बाललीला कलितोनबालः पित्रोःपुरो जल्पति निर्विकल्पः।
तथा यथार्थ कथयामिनाथ निजाशयं सानुशयस्तवाग्रे ॥

(१२)

दत्तं नदानं परिशीलितंच नशालिशीलं नतपोऽभितप्तं ।
शुभो नभावोऽप्यभवद्भवेऽस्मिन् विभोमया भ्रांत महोमुधैव

(१३)

वैराग्यरगः परवंचनाय, धर्मोपदेशो जनरंजनायं

काटकी पावडीयों और जरग (पुराणे जुते) कि माफीक था वहांभी मांस रुधीर रहीत केवल हाड चर्मसे विंटा हुवाही देखाव देताथा।

(२) धन्ना अनगारके पगकि अंगुलीयों जेसे मुग उडद चोला-दि धान्यकि तरूण फलीकों तापमें शुकानेपर मीली हुइ होती है इसी माफीक मांस लोही रहीत केवल हाडपर चर्म विंटा हुवा अंगुलीयोंका आकारसा मालुम होता था।

(३) धन्ना मुनिका जांघ (पींडि) जेसे काकनामकि वनस्पति तथा वायस पक्षिके जंघ माफीक तथा कंक या ढोणीये पक्षि विशेष है उसके जंघा माफीक यावत् पुर्व माफीक मांस लोही रहीत थी।

(४) धन्नामुनिका जानु (गोडा) जेसे कालिपोरें-काक-जंघ वनस्पतिविशेष अर्थात बोरकी गुटली तथा एक जातिकी वनस्पतिके गांट माफीक गोडा था यावत मांस रहित पुर्ववत्।

(५) धन्नामुनिके उरू (साथल) जेसे प्रियंगु वृक्षकी शाखा. बोरडी वृक्षकी शाखा, संगरी वृक्षकी शाखा. तरुणको छेदके धुपमें शुकानेके माफीक शुष्क थी यावत् मांस लोही रहित।

(६) धन्ना अनगारके कम्मर जेसे ऊंटका पाँव, जरखका पांव, भेंसका पाँवके माफीक यावत मंस लोही रहित।

(७) धन्नामुनिका उदर जेसे भाजन-सुकी हुइ चर्मकी दीवडी, रोटी पकानेकी केलडी, लकडेकी कठीतरी इसी माफीक यावत् मंस रक्त रहित।

(८) धन्नामुनिकी पांसलीयों जेसे वांसका करंडीया, वांसकी टोपली, वांसके पासे, वांसका सुंडला यावत् मंस रक्तरहित थे।

(९) धन्नामुनिके पृष्टविभाग जेसे वांसकी कोठी, पाषाणके गोलोंकी श्रेणि इत्यादि मंस रक्त रहित।

(१३)

भविकपङ्कज बोधदिवाकरं प्रतिदिनं प्रणमामिजिनेश्वरम् ॥

(१६)

यदीय सम्यक्त्ववलात्प्रतीमो भवादशानां परम स्वभावं ।
कुवासनापाशविनाशनाय नमोस्तुतस्मै तवशासनाय ॥

(२०)

भव्याम्भोज विबोधनैकतरणे विस्तारिकर्मावली
रम्भासमाज नाभिनन्दन महानष्टापदाभासुरैः ।
भक्त्या वन्दितपादपद्मविदुषांसंपादय प्रोज्झिता
रम्भासामजनाभिनन्दनमहानष्टापदभासुरैः ॥

(२१)

विपुलनिर्मलकीर्तिभरान्वितो, जयति निर्जरनाथनमस्कृतः ।
लघुविनिर्जितमोहधराधिपो जगतियःप्रभुशान्तिजिनाधिपः ॥

(२२)

विहित शान्तसुधारसमज्जनं, निखिलदुर्जयदोष विवर्जितम् ।
परमपुण्यवतां भजनीयतां गतमनन्तगुणैः सहितंसताम् ॥

(२३)

सुवर्णवर्ण गजराज गामिनं प्रलम्बबाहुं सुविशाललोचनम् ।
नरामरेन्द्रैःस्तुतपादपङ्कजं नमामिभक्त्याऋषभंजिनोत्तमम् ॥

(२४)

आशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टि र्दिव्यध्वनिश्चामरमासनंच ।
भामण्डलंदुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥

इन्ही २१ बोलोमें उदर, कान, होठ, जिह्वा ये च्यार बोलमें हाड नहीं था। शेष बोलोमें मंस रक्त रहित केवल हाडपर चरम विटा हुवा नशा आदिसे बन्धा हुवा शरीर मात्रका आकार दीखाइ दे रहा था। उठते बेठते समय शरीर कडकड बोल रहा था। पांसली आदिकी हड्डीयों मालाके मणकोंकी माफीक अलग अलग गीनी जाती थी, छातीका रंग गङ्गाकी तरंग समान तथा सुका सर्पका खोखा मुताविक शरीर हो रहा था, हस्त तो सुका थोरोंके पंजे समान था, चलते समय शरीर कम्पायमान हो जाता था, मस्तक डीगडीग करता था, नेत्र अन्दर बेठ गया था, शरीर निस्तेज हो रहा था, चलते समय जैसे काष्टका गाडा, सुके पत्तेका गाडा तथा कोडीयोंके कोथलोंका अवाज होता है इसी माफीक धन्नामुनिके शरीरसे हड्डीयोंका शब्द होता था हलना, चलना, बोलना यह सब जीवशक्तिसे ही होता था। विशेषाधिकार खंदकजीसे देखो (भगवती सूत्र श० २ उ० १)

इतना तो अवश्य था कि धन्नामुनिके आत्मबलसे उन्होंका तपतेजसे शरीर बडा ही शोभायमान दीखाइ दे रहा था।

भगवान् वीरप्रभु भूमंडलको पवित्र करते हुवे राजगृह नगरके गुणशीलोद्यानमें पधारे। श्रेणिकराजादि भगवान्को वन्दनको गया। देशना सुनके राजा श्रेणिकने प्रश्न किया कि हे करुणासिन्धु! आपके इन्द्रभूति आदि चौदा हजार मुनियोंके अन्दर दुष्कर करणी करनेवाला तथा महान् निर्जरा करनेवाला मुनि कोन है?

भगवानने उत्तर फरमाया कि हे श्रेणिक! मेरे चौदा हजार मुनियोंके अन्दर धन्ना नामका अनगार दुष्कर करणीका करनेवाला है महानिर्जराका करनेवाला है।

स्वर्गेत्र यानि विंबानि, तानि वन्दे निरन्तरम् ॥ ६ ॥
जिनेभक्ति र्जिनेभक्ति र्जिनेभक्ति दिने दिने ।
सदामेस्तु सदामेस्तु, सदामेस्तु भवेभवे ॥ १० ॥
नहित्राता नहित्राता, नहित्राता जगत्रये ।
वीतराग समो देवो, नभूतो न भविष्यति ॥ ११ ॥
नमस्कार समो मन्त्र, शत्रुंजय समोगिरि ।
वीतराग समो देवो नभूतो न भविष्यति ॥ १२ ॥
ॐकार विंदु सयुक्तं, नित्य ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमोनमः ॥ १३ ॥
इन्द्रोपन्द्रौ पुनर्नत्वा, जिनेन्द्रमथ नेमिनम् ।
प्रारेभाते स्तोतुमेवं, गिराभक्ति पवित्रया ॥ १४ ॥
सर्वारिष्ट प्रणाशाय, सर्वाभीष्टार्थदायिने ।
सर्वलब्धि निधानाय, गौतमस्वामिनेनमः ॥ १५ ॥
पार्श्वनाथ नमस्तुभ्यं, विघ्न विध्वंकारिणे ।
निर्मलं सुप्रभातंते, परमानन्ददायिनः ॥ १६ ॥
अश्वसेनावनीपाल, कुक्षि चूडामणे प्रभो ।
वामासुनो नमस्तुभ्यं, श्रीमत्पार्श्व जिनेश्वरः ॥ १७ ॥
नमो दुर्वार रागादि, वैरि वार निवारिणे ।
अर्हते योगिनाथाय, महावीराय तायिने ॥ १८ ॥
ॐनमो विश्वनाथाय, जन्मतो ब्रह्मचारिणे ।
कर्मवल्लीवनच्छेदनेमयेऽरिष्टनेमय ॥ १६ ॥

निर्वानार्थ काउस्सग्ग कर धन्ना मुनिका वस्त्रपात्र लेके भगवानके पास आये वस्त्रपात्र भगवानके आगे रखके बोले कि हे भगवान आपका शिष्य धन्ना नामका अनगार आठ मासकि दीक्षा एक मासका अनसन कर कहां गया होगा ?

भगवानने कहा कि मेरा शिष्य धन्ना नामका अनगार दुष्कर करनी कर नव मासकि सर्व दीक्षा पाल अन्तिम समाधी पुर्वक काल कर उर्ध्व सर्वार्थसिद्ध नामका महा वैमानमें देवता हूवा है। उसकी तेतीस सागरोपमकि स्थिति है।

गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान धन्ना नामका देव देवलोकसे चवके कहां जावेगा ?

भगवानने उत्तर दीया। महाविदेहक्षेत्रमें उत्तम जातिकुलके अन्दर जनम धारण करेगा वह कामभोगसे विरक्त होके और स्थिवरोंके पास दीक्षा लेके तपश्चर्यादिसे कर्मोका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा। इति तीसरे वर्गका प्रथम अध्यंथन समाप्तं।

इसी माफीक सुनक्षत्र अनगार परन्तु बहुत वर्ष दीक्षा पाली सर्वार्थसिद्ध वैमानमें देव हुवे महाविदेहक्षेत्रमे मोक्ष जावेगा। इति ॥ २ ॥

इसी माफीक शेष आठ परन्तु दो राजगृह, दो श्वेतंबिका, दो वाणीया ग्राम, नवमो हथनापुर दशमो राजग्रह नगरके (३) ऋषिदाश (४) पेलकपुत्र (५) रामपुत्रका (६) चन्द्रकुमार (७) पोष्टीपुत्र (८) पेढालकुमार (९) पोटिलकुमार (१०) वहलकुमारका।

धनादि नव कुमारोंका महोत्सव राजावोंने ओर वहलकुमारका पिताने कीयाथा।

जे दर्शन दर्शन विनों, ते दर्शन निर्पेक्ष ।
जे दर्शन दर्शन हुवे, ते दर्शन सापेक्ष ॥ ५ ॥
प्रभु पूजनकों म्हें चल्यो, चोवा चंदन घनसार ।
नव अंगे पूजा करी, सफल करू अवत्तार ॥ ६ ॥
पांच कोडीके पुष्पसे, पाम्या देश अठार ।
कुमारपाल राजा थयो, वरत्यो जयजयकार ॥ ७ ॥
श्रीजिनवरके चरणमें, उत्कृष्टे परिणाम ।
करतों पूजा पांमीए, मोक्ष सर्गकों धाम ॥ ८ ॥
भवदव दहन निवारवा, जलद घटासम जेह ।
जिनपूजा युक्ते करी, पामीजे भवछेह ॥ ९ ॥
पूजा कुगतिनी अर्गला, पुन्य सरोवरपाल ।
शिवगतिनी साहेलडी, आपे मंगल मॉल ॥ १० ॥
जलभरी संपुट पत्रमें, युगलीक नरपूजंत ।
ऋषभ चरण अंगुटडे, दायक भवजल अन्त ॥ ११ ॥
तीर्थंकरपद पुन्यथी, त्रीभुवनजन सेवंत ।
त्रीभुवन तिलकसमा प्रभु, भाल तिलक जयवन्त॥१२॥
उपदेशक नवतत्त्वना, तिणे नव अंग जिनेन्द्र ।
पूजो वहु विधरागसे, कहे शुभवीर मुनेन्द्र ॥ १३ ॥
काल अनादि अनन्तसे, भवभ्रमन नहीपार ।
ते भ्रमन निवारवा, प्रदक्षिण त्रीणसार ॥ १४ ॥
भमतिमें भमतोंथकों, भवभावठ दुर पलाय ।
दर्शन ज्ञान चारित्ररूप, प्रदक्षिणा तीन देवाय ॥१५॥

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला पु. नं. ६१

श्री ककसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नम

अथ श्री

शीघ्रबोध भाग १८ वां

श्रीसिद्धसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नम

अथश्री

निरयावलिका सूत्र.

(संक्षिप्त सार)

पांचमा गणधर सौधर्मस्वामि अपने शिष्य जम्बुप्रते कह रहे हैं कि हे चीरंजीव जम्बु! सर्वज्ञ भगवान वीरप्रभु निरयावलिका सूत्रके दश अध्ययन फरमाये है वह मैं तुझ प्रति कहता हुं।

इस जम्बुद्विपमें भारतभूमिके अलंकाररूप अंगदेसमें अलकापुरी सदृश चम्पा नामकि नगरी थी. जिस्के बाहार इशानकोंनमे पुर्णभद्र नामका उधान. जिस्के अन्दर पुर्णभद्र यक्षका यक्षायतन. अशोकवृक्ष और पृथ्वीशीलापट्ट. इन सबका वर्णन 'उववाइ सूत्र' में सविस्तार किया हुवा है शास्त्रकारोंनें उक्त सूत्रसे देखनेकि सूचना करी है।

आज मनोरथ सहु फल्या, प्रगटियो पुन्य कीलोल ।
पापकर्म दुरे टल्यो, नाठा दुःख दंदोल ॥ २७ ॥
सुखदाता प्रभु तुं वडो, तुम सम अवरन कोय ।
करम मल दूरे कर्या, पाम्या शिवपद सोय ॥ २८ ॥
ज्ञानावर्णिय चय करी, दरसनावर्णिय कर्म ।
वेदनियकर्म दुरो करी, टाल्यो माहनि भर्म ॥ २९ ॥
आयुष्यकर्म ने नामकर्म, गौत्र अने अन्तराय ।
अष्ट करम इणीपरे, दुर कर्या महाराय ॥ ३० ॥
दोप अठारा चय गया, प्रगट्या पुन्य अनन्त ।
अन्तरंग सुख भोगवे, निश्चल धीर महन्त ॥ ३१ ॥
कल्पवृक्षने कामकुंभ, पुरे मनना कोड ।
प्रभुसेवाथी ज्हे मीले, जो वंच्छा होय अडोल ॥ ३२ ॥
त्रिभुवनमे तुं वडो, तुम सम अवरन कोय ।
इन्द्र चन्द्र चक्री हरि, तुजपद सेवे सोय ॥ ३३ ॥
प्रभुसेवा भावे करे, प्रेमधरी मन रंग ।
दुःख दोहग दुरे टले, पामे सुख मनचंग ॥ ३४ ॥
पूजा करतों प्राणीया, पोते पूजनिक होय ।
इणभव परभव सुख घणा, तस्म तोले नही कोय ॥ ३५ ॥
जीवडा जिनवर पूजिये, जिन पूज्या सुख थाय ।
दुःख दोहग दूरे टले, मनवंच्छित सुखपाय ॥ ३६ ॥
द्रव्यभावथी अतिघणो, हैडे हरप न माय ।
इणविध जिनवर पूजतों, शिवसपत्त सुख थाय ॥ ३७ ॥

। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु इति समाप्तं ।

मति थे वह धारणकर बहुतसे नोकर चाकर खोजा दास दासी-योंके परिवारसे बहारके उत्स्थान शालमें आइ, वहांपर अनुचरोंने धार्मीक रथको अच्छी सजावट कर तैयार रखा था, कालीराणी उस रथपर आरूढ हो चम्पानगरीके मध्यवजारसे निकलके पूर्णभद्रोद्यानमें आइ, रथसे उतरके सपरिवार भगवानको वन्दन-नमस्कार कर सेवा-भक्ति करने लगी।

भगवान् वीरप्रभुने कालीराणी आदि श्रोतागणोंको विचित्र प्रकारसे धर्मदेशना सुनाइ कि हे भव्य! इस अपार संसारके अन्दर जीव परिभ्रमन करता है इसका मूल कारण आरंभ ओर परिग्रह है। जवतक इन्होंका परित्याग न किया जाय. वहांतक संसारके जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक इत्यादि दुःखसे छुटना नहोगा, वास्ते सर्वशक्तिवान् वनके सर्व व्रत धारण करो अगर एसा न वने तो देशव्रती वनो, ग्रहन किये हुवे व्रतोंको निरतिचार पालनेसे जीव आराधि होता है. आराधि होनेसे ज० तीन उत्कृष्ट पन्दरा भवमें अवश्य मोक्ष जाता है इत्यादि देशना दी।

धर्मदेशना श्रवण कर श्रोतागण यथाशक्ति त्याग वैराग्य धारण किया उस समय कालीराणी देशना श्रवण कर हर्ष संतोषको प्राप्त हो वोली कि हे भगवान्! आप फरमाते है वह सव सत्य है. मैं संसारसमुद्रके अन्दर इधर उधर गोथा खा रही हुं। हे करूणासिन्धु! मेरा पुत्र कालीकुमार सैन लेके कोणकराजाके साथ रथमुशल संग्राममें गया है तो क्या वह शत्रुवोंपर विजय करेगा या नहीं? जीवेगा या नहीं? हे प्रभो! मे मेरा पुत्रको जीवता देखुंगी या नहीं?

भगवानने उत्तर दिया कि हे कालीराणी! तेरा पुत्र तीन हजार हस्ती, तीन हजार अश्व, तीन हजार रथ और तीन क्रोड

इस तीर्थंकरोंके महा वाक्यसे निशंक सिद्ध होताहैकि प्रभुपूजा अक्षय सुखरूपी फलदेनेमें कल्पवृक्ष सामानहे। किन्तु सुख कब मीलताहे कि जेसे कोइ बेमार मनुष्य अपनि बिमारी दूर करनेके हेतुसे कुच्छ औषधी लेनाचाहे तब वह डाक्टरके पास जावे वह डक्टर योग्य दवादेवे और उसीपर परेज रखना बतलावे और बिमार डाकटरकी दीहुइ दवालेवे और केहना माफीक परेज रखेतों रोगाकि चिकीत्साहोवे परन्तु बिमार पूर्णतय परेज नरखेंतो वह अच्छी दवा रोगमीटानेकि निष्पत् रोगकि वृद्धिदाता होतीहै। इस उपनय अर्थात् रोगी-संसारी-जीवोंके अनादिकालसे कर्मोंका रोग लगाहै। डक्टर सद्गुरु-महाराजने प्रभुपूजारूपी दवा दीवीहे साथमे दवा लेनेकि (प्रभुपूजाकरनेकि) विधि वतलाइहै और दवालेनेपर परजे (अविधि आसातना अतिचारादि) रखना-अयोग्याचरना न करना इत्यादि हितशिक्षाके माफीक वर्ताव करनेसे भावरोग (कर्मो) का शीघ्रही क्षय होजाताहे वास्ते भव्यात्माओंकों विधिपूर्वक प्रभुपूजा करनेमे विशेष पुरुषार्थ करना चाहिये भगवानने फरमायाहे कि " यत् "

विहिकुज्जाकिरियाओ अविहिम हऊ

आजकाल कीतनेहि देशोमें मुनिमहाराजोंका विहार कमहोनेसे कितनेकलोक प्रभुपूजादि धर्मकृत्याकि विधिसे अज्ञातहै उन्ही भाइयोंकों एक लघु किताबकि आवश्यताहै इसी

कहने लगी कि हे भगवान आप फरमाते हो वह सत्य है मेने न-जरोंसे नही देखा है तथापि नजरोंसे देखे हुवे कि माफीक सत्य है एसा कह वन्दन नमस्कार कर अपने रथपर बेठके अपने स्थानपर जानेके लिये गमन किया।

नोट—अन्तगढ दशांग आठवे वर्गमें इस कारणसे वैरागको प्राप्त हो भगवानके पास दिक्षा ग्रहन कर एकावली आदि तपश्चर्या कर कर्म रिपुको जीत अन्तमें केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गइ है एवं दशो राणीयो समझना।

भगवानने कालीराणीको उत्तर दीयाथा उस समय गौतमस्वामि भी वहां मोजुद थे. उत्तर सुनके गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान। कालीकुमार चेटक राजाके बाणसे संग्राममें मृत्यु धर्मको प्राप्त हुवा है तो एसे संग्राममें मरनेवालोंकि क्या गति होती है अर्थात् कालीकुंमर मरके कौनसे स्थानमें उत्पन्न हुवा होगा ?

'भगवानने उत्तर दिया कि हे गौतम! कालीकुमार संग्राममें मरके चोथी पंकप्रभा नामकि नरकके हेमाल नामका नरकावासमें दश सागरोपमकि स्थितिवाला नैरियापणे उत्पन्न हुवा है।

हे भगवान! कालीकुमारने कोनसा आरंभ सारंभ समारंभ कीया था. कोनसा भोग सभोगमें गृध्दित, मुर्च्छित और कोनसा अशुभ कर्मोंके प्रभावसे चोथी पंकप्रभा नरकके हेमाल नरकावासमें नैरियापणे उत्पन्न हुवा है।

उत्तरमें भगवान सविस्तारसे फरमाते है कि हे गौतम! जिस समय राजगृह नगरके अन्दर श्रेणिकराजा राज कर रहा था. श्रेणिकराजाके नन्दा नामकि राणी सुकुमाल सुन्दराकारथी उसी नन्दाराणीके अगज अभय नामका कुमर था। वह च्यार

खुले दीलसे घृतपुरसे, तात्पर्य यहहै कि जल इतनाहो कि जिससे साफ–स्वच्छ होजानेपर बेफायदे पाणी नजाना चाहिये। स्नानकरनेकास्थान बीलकुल शूकाहूवा जहापर सूर्यकि आताप पडतीहो एसास्थानमें या उन्ही स्थानपर एक चौकी (बाजो-ट) जिसके चौतर्फ वेदिक और विचमें एक नालीहो उन्ही नालीके नीचे एक भाजन रखदियाजायकि वह स्नानकापाणी उन्ही भाजनमे एकत्रहोजाय वह पाणी साफ निर्जीवभूमिका-पर यत्नासे परठदियाजायाकि तत्काल शूकजावे तांकेजीवोंकि उत्पातिनहों कारण श्रावकवर्ग हमेशों यत्नासेही प्रवृतिकरने-वाले होतेहै ' जयणा धम्मस्स जणणीओ "

स्नानकरतेसमय पएडपोप कवृति नरखनी चाहिये किन्तु आत्मकल्याण भावना रखनिचाहिये यथा–आज मेरा सफल दिनघडीहै कि मुझे जगतारक जिनेश्वरोंके चरणकमल भेटने-का समय मीलाहै कि ।

" जे आसव्वातेपरिसव्वा " भगवतीवचनात्

इन्द्रादिकतों भगवानका न्हवण (प्रक्षाल) मेरूसीख-रपर कराके अपनी जन्म पवित्र करतेहै क्याकरु मेरी इतनी शक्ति नहीहै म्है आज यहापरही मेरूसीखर समझके मेरा जन्म सफल करुगा । प्रभुपूजा करनेवाले अच्छे साफ स्वच्छ पुरुषोंको दोय वस्त्र स्त्रीयोंकों तीन वस्त्र नित्य धोयेहुवे रखना चाहिये और मुखकोश आठ पडवाला रखना चाहिये कारण

राजाश्रेणिकने और भी दोय तीनवार कहा परन्तु राणीने कुच्छ भी जवाब नही दीया। आखिर राजाने कहा, हे राणी! क्या तेरे एसो भी रहस्यकी वात है कि मेरेकों भी नही कहती है? राणीने कहा कि हे प्राणनाथ मेरे एसी कोइ भी वात नही है कि मैं आपसे गुप्त रखुं परन्तु क्या करुं वह वात आपको केहने योग्य नही है। राजाने कहा कि एसी कोनसी वात है कि मेरे सुनने लायक नही है मेरी आज्ञा है कि जो वात हो सो मुझे कह दो। यह सुनके राणीने कहा कि हे स्वामि! उस स्वप्न प्रभावसे मेरे जो गर्भ के तीन मास साधिक होनेसे मुझे दोहला उत्पन्न हुवा है कि मैं आपके उदरके मांसके शुले मदिराके साथ भोगवती रहुं। यह दोहला पुर्ण न होनेसे मेरी यह दशा हुइ है।

राजा श्रेणिक यह वात सुनके बोला कि हे देवी! अब आप इस वात कि बिलकुल चिंता मत करो. जिस रीतीसे यह तुमारा दोहला सम्पूर्ण होगा. एसा ही मैं उपाय करुंगा इत्यादि मधुर शब्दोसे विश्वास देके राजाश्रेणिक अपने कचेरीका स्थान था वहां पर आ गये।

राजाश्रेणिक सिंहासन पर बैठके विचार करने लगा कि अब इस दोहले को कीस उपायसे पुर्ण करना. उत्पातिक, विनयिक, कर्मीक, परिणामिक इस च्यारों बुद्धियोंके अन्दर राजाने खुब उपाय सोच कर यह निश्चय किया कि यातो अपने उदरका मांस देना पडेगा या अपनि जबान जावेगा. तीसरा कोइ उपाय राजाने नही देखा। इस लिये राजा शुन्योपयोग होके चिंता कर रहा था।

इतनेमें अभयकुंमर राजाको नमस्कार करनेकि लिये आया, राजाको चिंताग्रस्त देखके कुमर बोला। हे तातजी! अन्य

मीन्टमे एक टीकी इदर दुसरी उदरदेके अपनि वेगार निकाल-देतेहै इतनेमें जो घडीकि टैम दिखपडेतो यहही भावना होती है कि अहो टैमतो वहुत होगइहै आजतों दुकांन जलदीजानाहै कोन पांचाभिगम करतेहै कोन दशत्रीककों जानतेहै कोन चौरासी आसातना टालतेहै कौन भावना सहित चैत्यवन्दन करतेहै क्या भगवानकेभक्त श्रावकों एसाही होताहोगा ? नही ! नही । कवीनही । यह हमारा लिखना सर्व जिन्होंकों नहीहै परन्तु प्रमाद करनेवालोंकोंहीहै ।

(प्रश्न) तोंक्या पूजा नही करना चाहिये ?

(उ) वस कांटीका जौर आगडातकहीहै । प्यारे आत्मवन्धुवों श्रावकलोगोंका कृतव्यहै कि यथाशक्ति प्रभुपूजा-किये सिवाय अन्न जलभी लेना उचित नहीहै कारण प्रभुपूजा करनेसे चित्तवृति निर्मलहोती शासनपर दृढश्रद्धा रेहतीहै शंकाकच्चादि दोषणोंसे वचजातेहै यावत् परम्पदकि प्राप्ती होतीहै आपही विचारेकि हमने उपदेश कियाहै वह पूजा न करनेकाहै या विधिपूर्वककर अक्षय सुखप्राप्ती करनेकाहै देखिये शास्त्रकार क्या फरमातेहै ।

यथा–आणाइतवो आणाइसंजमो, तहदाणपूयाओ
आणारहियोधम्मो, पलालपुलव्व परिहई ॥ १ ॥

भावार्थ–वीतरागाकि आज्ञा संयुक्त तपजप संयम दान

होगा. राजा श्रेणिक और चेलनाके गर्भका जीव एक तापसके भवमे कर्म उपार्जन कीयाथा वह इस भवमें उदय हुवा है। इस कथानिक सबन्धका सार यह है कि कीसीके साथ वैर मत रखो. कर्म मत बान्धो. किमधिकम्।

एक समय राणीने यह विचार किया कि यह मेरे गर्भका जीव गर्भमें आते ही अपने पिताके उदर मांसभक्षण कीया है, तो न जाने जन्म होनेसे क्या अनर्थ करेगा. इस लिये मुझे उचित है कि गर्भहीमें ,इसका विध्वस करदु। इसके लिये अनेक प्रयोग किया परन्तु सबके सब निष्फल हो गये। गर्भके दिन पुर्ण होनेसे चेलनाराणीने पुत्रको जन्म दिया। उस वखत भी चेलनाराणीने विचार किया कि यह कोइ दुष्ट जीव है जो कि गर्भमें आते ही पिताके उदरका मांसभक्षण कीया था, तो न जाने बडा होनेसे कुलका क्षय करेगा या और कुच्छ करेगा. वास्ते मुझे उचित है कि इस जन्मा हुवा पुत्रको कीसी एकान्त स्थानपर (उखरडीपर) डालदु। एसा विचार कर एक दासीको बुलाके अपने पुत्रको एकान्तमें डालदेनेकी आज्ञा दे दी।

वह हुकमकी नोकर-दासी उस राजपुत्रको लेके आशोक नामकी सुकी हुइ वाडीमें एकान्त जाके डालदीया। उस राजपुत्रको भग्नवाडीमे डालतो ही पुत्रके पुन्योदयसे वह वाडी नवपल्लवित हो गइ। उसकी खबर राजाके पास आइ।

नोट—दासीने विचारा कि मैं राणीके कहनेसे कार्य किया है परन्तु कभी राजा पुच्छेगा तो मैं क्या जबाब दुंगी. वास्ते यह सब हाल राजासे अर्ज करदेना चाहिये। दासीने सब हाल राजासे कहा. राजाने सुना। फिर

राजा श्रेणिक अशोकवाडीमें आया. वहांपर देखा जावे तो

जयणाधम्मस्सजणणी, जयणाधम्मस्सपालणीचेव।
तहवुड्ढिकारि जयणा, एगन्तसुहावाहा जयणा ॥१॥

भावार्थ—यत्नासे चाले वेठे और सर्व धर्मक्रिया यत्नासेकरे क्युकि यत्नाहे सो धर्मकि माताहै माता विगर पुत्र रहे-नही शक्ताहे धर्मको पालके वृद्धिकरनेवाली यत्नाहे और एकान्तसुखकि देनेवाली यत्नाहै सिवाय यत्नाके धर्महोही नहीशक्ताहे वहुतसे लोक तत्त्वज्ञानसे अज्ञात होतेहुवे मात्र एक धर्म एसा शब्दही कि रटना करतेहै परन्तु धर्मकि रहस्यको नही जानतेहै वास्ते उन्होंको शास्त्रकार क्या फरमातेहै

तथाच—

जीवदयारमिज्जाई, इंदिय वग्ग दम्मिज्जइ ।
सद्दोसच्चं च जणेज्जा, धम्मस्स रहस्यभणिओ ॥१॥

भावार्थ—हे श्रावकवर्ग जीवदयामे रमणकरों इन्द्रिय-वर्ग (पांचो इन्द्रियोंकों) को दमनकरो अर्थात् विपयकपायमें वृतति इन्द्रियोंकों अपने कब्जे रखों हे श्रमणवर्ग यहही धर्म-कि सत्य रहस्यहै वास्ते जहा अयत्नाहै वहा कवीभी धर्म नही होताहै ।

उक्तंच—

आरंभे नथीदया, महिलासंगेण नासएवंभ ।
संकाए सम्मत्तंनथी, दव्वज्ज अत्थगहाणेणं ॥१॥

एकान्त डालनेसे कुर्कटने अगुली काटडाली थी, वास्ते इस कुमारका नाम " कोणक " दीया था.

क्रमसर वृद्धि होते हुवेके अनेक महोत्सव करते हुवे. युवक अवस्था होनेपर आठ राजकन्यावोंके साथ विवाह कर दिये, यावत् मनुष्य संबन्धी कामभोग भोगवता हुवा सुखपूर्वक काल निर्गमन करने लगा

एक समय कोणककुमारके दिलमे यह विचार हुवा कि श्रेणिकराजाके मोजुदगीमें मैं स्वय राज नहीं करसक्ता हु, वास्ते कोइ मोका पाके श्रेणिकराजाको निवडवन्धन कर मैं स्वय राज्याभिषेक करवाके राज करता हुवा विचरुं। केइ दिन इस वातकी कोशीष करी, परन्तु एसा अवसर ही नही वना। तव कोणकने काली आदि दश कुमारोंको वुलवायके अपने दीलका विचार सुनाके कहा कि अगर तुम दशो भाइ हमारी मददमें रहो तो मे अपने राजका इग्यारा भाग कर एक भाग मैं रखुगा और दश भाग तुम दशो भाइयोंको भेंट दुंगा। दशो भाइयोंने भी राजके लोभमे आके इस वातको स्वीकार कर कोणककी मददमें हो गये। " परिग्रह दुनियोंमे पापका मूल कारण है परिग्रहके लिये कैसे कैसे अनर्थ किये जाते है. "

एक समय कोणकने श्रेणिकराजाको पकड निवडवन्धन वांधके पिंजरेमें वन्ध कर दिया, और आप राज्याभिषेक करवाके स्वयं राजा वन गया. एक दिन आप स्नानमज्जन कर अच्छे वस्त्राभूषण धारण कर अपनी माता चेलनाराणीके चरण ग्रहन करनेको गया था. राणी चेलनाने कोणकका कुच्छ भी सत्कार या आशिर्वाद नहीं दिया। इसपर कोणक वोला कि हे माता! आज तेरे पुत्रको राज प्राप्त हुवा है तो तेरेको हर्ष क्यों नहीं

ल गुरुवन्दनादि क्रियाकरतो । स्वरूपसे हिंस्या देखनेमे आ-
तिहै परन्तु उन्होंका विपाक कडवा नहींहै वह बन्धहोतोंभी
पुन्यानूबन्धी पुन्यका बन्धहोगा जिसे भवान्तरमे धर्मसे नजी-
क करेगा वास्ते पूजादि धर्मकरणी यत्नापूर्वक करनेसे शास्त्र-
कारोंने आरंभ नही काहाहै कारण यहा परिणमधर्मका शुभहै
यथा—

यत् " सुभ जोगपडूच्च नोआयारंभा, नोपरारंभा, नोत-
दुभयारंभा अणारंभा " भगवतीसूत्रवचनात् ।

भावार्थ—जहां धर्मके इरादासे शुभयोगोंकि प्रवृति
होतीहै वहां आत्माकारंभ परकाआरंभ आत्मा या परकाआरंभ
नही होताहै किन्तु अनारंभहि कहाजाताहै हां अगर प्रमादसे
अशुभयोगोंसे धर्मकियाहीकिजावेतों उन्होंको शास्त्रकारोंने
आरंभकाहाहै ।

(प्र) अच्छा अगर हम प्रभुपूजा अविधिसेही करेगे
तो हमको क्या नुकशानहै कारण हमारा नामूनतों होजायगा-
कि सेठजी पूजाकरतेहै और कभी कामभी पडेगातो इन्ही
विसवाससे हमारा संसारीक कार्यभी निकलजायगा ।

(उ) हे आतमबन्धु इस्में आपका वडाभारी नुकशान
होताहै जेसे किसी मनुष्यने एक वैपार कराहै उन्हीमे एक
लक्ष रूपइया नफाका मिलताहै वह प्रमादके वसहोके उन्ही
नफाकि दरकार नही रखताहुवा केहताहैकि अगर नफा न

करते हुवेको बडाही मानसिक दुःख होने लगा. वखत वखतपर दीलमें आति है कि मैं केसा अधन्य हुं, अपुन्य हुं, अकृतार्थ हुं, कि मेरे पिता-देवगुरुकी माफीक मेरेपर पूर्ण प्रेम रखनेवाले होनेपर भी मेरी कितनी कृतघ्नता है। इत्यादि दीलको बहुत रंज होनेके कारणसे आप अपनी राजधानी चम्पानगरीमें ले गये और वहांही निवास करने लगा। वहांपर काली आदि दश भाइयोंको बुलायके राजके इग्यारा भाग कर एक भाग आप रखके शेष दश भाग दश भाइयोंको भेंट दीया, और राज आप अपने स्वतंत्रतासे करने लगगये, और दशों भाइओंने कोणककी आज्ञा स्वीकार करी।

चम्पानगरीके अन्दर श्रेणिकराजाका पुत्र चेलनाराणीका अंगज वहलकुमार जोके कोणकराजाके छोटाभाइ निवास करता था श्रेणिकराजा जीवतो 'सीचांणक गन्ध हस्ती और अठारे सरोंवाला हार देदीया था। सीचाणक गन्ध हस्ती केसे प्राप्त हुवा यह बात मूलपाठमें नहीं है तथापि यहां पर संक्षिप्त अन्य स्थलसे लिखते है।

एक वनमें हस्तीयोंका युथ रहता था उस युथके मालीक हस्तीको अपने युथका इतना तो ममत्व भाव था कि कीसी भी हस्तणीके बच्चा होनेपर वह तुरत मारडालता था कारण अगर यह बच्चा बडा होनेपर मुझे मारके युथका मालिक बन जावेगा। सब हस्तणीयोंके अन्दर एक हस्तणी गर्भवन्ती हो अपने पैरोंसे लंगडी हो १-२ दिन युथमें पीच्छे रेहने लगी, हस्तीने विचार किया कि यह पावोंसे कमजोर होगी। हस्तणीने गर्भ दिन नजीक जानके एक तापसोंके वृक्षजालीके अन्दर पुत्रको जन्म दीया. फीर आप युथमें सेमल हो गइ। तापसोंने उस हस्ती बच्चेको पोषण कर बडा किया और उसके मुंढके अन्दर एक

परिभ्रमन कररहाहै कोइ पुन्योदयही इस वखत यह सामग्री मीलीहैतों अवपुरुषार्थ रखों और विचारकरोंकि जितनी टैम पूजामे लगतीहै उन्हीमे गृहकार्यतों कुच्छकरभी नहीशक्तेहो चाहे विधि यत्नापूर्वक करो चाहे अविधि अयत्नासे करो टैमतों आपकों लगहीजावेगातो फीर प्रमाद क्यू करना चाहिये। जरा इसबातके लाभको सोचो संसारीककार्यमे एक पैसाकाभी लाभ मीलताहै उसीके लिये कितना पुरुषार्थ करतेहोतो यहतो आत्माकों अमूल्य लाभहै इस्केलिये पुरुषार्थ क्यु नकीयाजाय देखिये—

यत् जहणेण दंसण आरहाणेणं मंत्ते केइभव गहणेणं सज्झइ ? गोयमा जहणेण दंसण आराहणेणं जहाण तीन्नीभव, उक्कोसणसत्तठभव गहणेणं सज्झइ। भगवतीसूत्र वचनात्

भावार्थ—हे भगवान् अगर जीव जघन्यही दर्शनाराधनाकरेतो कीतनेभवोंसे मोच्च जाताहै ? हे गौतम जघन्य दर्शन आराधना करनेवाले भव्य जघन्य तीन भव और उत्कृष्टा सात आठ–पन्दरा भवकर मोच्च जातेहै ॥

लो अब आप क्या चाहातेहै प्रभुपूजाआदि दर्शन विशुद्धकरनेवाली क्रियाओं कर जघन्य आराधनही करोगेतो १५ भवसे अधिक नकरोंगे। अबतो पुरुषार्थकर विधिसेही क्रियाकर यह मनुष्यजन्मकों सफल करीये।

राजाश्रेणिक भगवान कि अमृतमय देशना श्रवणकर वापीस नगरमें जा रहा था. उस समय दोय देवता श्रेणिकराजाकि परिक्षा करनेके लिये एकने उदरवृद्धि कर साध्विका रुप बनाया. दुकान दुकान सुंठ अजमाकि याचना कर रहीथी. राजा श्रेणिकने देख उसे कहा कि अगर तेरेको जो कुच्छ चाहिये तो मेरे वहां से लेजा परन्तु यहां फीरके धर्मकि हीलना क्यों करती है। साध्विने उत्तर दीया कि हे राजन ! मेरेजेसी ३६००० है तुं कीस कीसको सामग्री देवेंगा। राजाने कहाकी हे दुष्टा ! छतीस हजार है वह सर्व रत्नोंकि माला है तेरे जेसी तो एक तुही है। दुसरा देव साधु बन एक मच्छी पकडनेकि जाल हाथमे लेके जाताको राजा देख उसे भी कहा कि तेरी इच्छा होगा वह हमारे यहां मील जायगा। तब साधु बोलाकि एसे १४००० है तुम कीस कीसको दोगे. राजा उत्तर दीया कि १४००० रत्नोकि माला हैं तेरे जेसा तुही है यह दोनों देवतोंने उपयोग लगाके देखा तो राजाके एक आत्मप्रदेशमें भी शंका नही हुइ. तब देवतावोंने बडीही तारीफ करी। एक मृत्युक (मटी) का गोला और एक कुडलकि जोडी यह दो पदार्थ देके देव आकाशमें गमन करते हुवे। राजा श्रेणिकने कुंडल युगल तो नंदारागणीको दीया और मटीका गोला राणी चेलनाको दीया। चेलना उस मटीका गोलाको देख अपमानके मारी गोलाको फेक दीया, उस गोलाके फेक देनेसे फुटके एक दीव्य हार नीकला इति।

इस हार और सींचाण हस्तीसे वहलकुमारका बहुतसा प्रेमथा इस वास्ते राजा श्रेणिक और राणी चेलनाने जीवतो हार और हस्ती वहलकुमरको दे दीया।

वहलकुमर अपने अन्तेवर साथमें लेके चम्पानगरीके मध्य-भागसे निकलके गंगा महा नदी पर जातेथे. वहांपर सीचांना

(३) पुष्प—चम्पा चमेली गुलाब मोगरादि तत्कालके लाये हुवे

(४) फल—भगवानको चडने योग्य आम्र नालेयर बदामादिफल

(५) नैवद्य-तत्काल बनाया हुवा उत्तम मिष्टान्न या मेवा

(६) धूप-अगर तगरादि दशांगधूप सौगन्धीकधूप

(७) दीप—पूजा समय अच्छा घृतका दीपक

(८) अक्षत—शुद्ध पवित्र अखंडित अक्षत

और भी जो वस्त्रके अंगलुणे आदि सब सामग्री साफ-शुद्ध होनेकी जरूरत है।

(३) द्रव्यशुद्धि—न्यायोपार्जित द्रव्य प्रभुभक्तिमें वापरना जरूरी है हालके जमानेमें कितनेक भाइयोंका कर्त्तव्य और वेपारादि देखा जावे तो इन्ही प्रतिज्ञाका पालन होना दुष्कर है उन्ही आत्मबन्धुओंको एक खाना ऐसा रखना चाहिये कि जो न्यायसे पैसा पैदा होता है वह उन्ही खानेमें अलग रखें. धर्मकार्यमें पैसा वापरना हो वह उस न्यायोपार्जित द्रव्य काममें लगावें एसे या कीसी अन्य प्रकारसे ही परन्तु जहांतक बन सके शुद्ध न्यायोपार्जित द्रव्य ही धर्मकार्यमें लगाना चाहिये। यह तीनों प्रकारकी द्रव्यशुद्धि है यह भावशुद्धिका कारण है इति द्रव्यशुद्धि।

करी परन्तु राजाने तो इस बातपर पूर्ण कान भी नहीं दिया। जब राणीने अपना स्त्रीचरित्रका प्रयोग किया राजासे कहा कि आप इतना विश्वास रख छोडा है. भाइ भाइ करते है परन्तु आपके भाइका आपकी तर्फ कितना भक्तिभाव हैं? मुझे उमेद नहीं है कि आपके मंगानेपर हार-हस्ती भेज देवे. अगर मेरे कहनेपर आपका इतबार न हो तो एक दफे मगवाके देख लिजिये।

एसा सूनाके मारा राजा कोणक एक आदमीको वहलकुमारके पास भेजा. उसके साथ सदेशा कहलाया था कि हे लघुभ्रात! तुं जाणता है कि राजमें जो रत्नादिकी प्राप्ति होती है वह सब राजाकी ही होती है, तो तेरे पास जो हारहस्ती है वह मेरेको सुप्रत कर दे, अर्थात् मुझे दे दो। इत्यादि। वह प्रतिहार जाके कोणकराजाका सदेशा वहलकुमारको सुना दिया।

वहलकुमारने नम्रताके साथ अपने वृद्धभ्रात (कोणकराजा) को अर्ज करवाइ कि आप भी श्रेणिकराजाके पुत्र, चेलनाराणीके अगज हो और मैं भी श्रेणिकराजाके पुत्र-चेलनाराणीके अंगज हुं और वह हारहस्ती अपने मातापिताकी मोजुदगीमें हमको दिया है इसके बदलेमें आपने राजलक्ष्मीका मेरेको कुच्छ भी विभाग नहीं देते हुवे आप अपने स्वतंत्र राज कर रहे हो। यद्यपि आपके मातापिताओंने किया हुवा विभाग नामजुर हो तो अबी भी आप मुझे आधा राज दे देवे और हारहस्ती ले लिजिये।

प्रतिहारी कोणकराजाके पास आके सर्व वार्ता कह दी. जब राणी पद्मावतीको खबर हुइ, तब एक दो नूना और भी मारा कि लो, आपके भाइने आपके हुकमके साथ ही हारहस्ती भेज दिया है इत्यादि।

राजा कोणकने दोय तीन दफे अपना प्रतिहारके साथ कह-

यह भी क्षेत्र अशुद्ध है। और पांच प्रकारके चैत्योंको क्षेत्रशुद्ध कहते है. यथा—

(१) एक गच्छकी निश्रायके बनाये हूवे चैत्य

(२) सर्व नगरके संघकी निश्राय बनाये हुवे चैत्य

(३) मंगलचैत्य–मन्दिरजीके दरवाजेपर मूर्ति होती है

(४) भक्तिचैत्य–अपने घरके अन्दर देरासर होता है

(५) शास्वत चैत्य–देवलोकोंमे तथा द्विप या पर्वतों पर हैं।

यह पांचो प्रकारके चैत्य चतुर्विध संघको वन्दनपूजन करने योग्य हैं इन्होंको क्षेत्रशुद्धि कहेते हैं। इति क्षेत्रशुद्धि।

(३) कालशुद्धि–अपने शरीरकी कायाचिंत्ता टट्टी पेसाब आदिसे नही निवृते, लेनदेनवालोंका टंटाफीसाद पीछे घूमताही रहै, राजका तथा नियातका बोलवा फीरता ही रहै यह सब काल अशुद्धि है क्योंकि पीछला विकल्प बना रहनेसे प्रभु पूजामें बरोबर ध्यान नहीं लगता है एक तरेहाकि वेगारके माफीक आतुरता रहती है वास्ते उक्त कार्योंसे निवृति होना वह कालशुद्धि है इतना अवश्य ख्याल रखना चाहिये कि यह संसारिक कार्य तों मैने अनंतिवार किया है वह सब परकार्य है परन्तु मेरी आत्माके हितकारीतो एक प्रभु पूजाही हैं तो इस टाइम पहिलेसेही कोइ तरेहका विघ्नभूत कार्य रखनाही नहीं चाहिये।

विगर पुच्छा आया है तो आप कृपाकर हारहस्ती और वहल-कुमारको वापीस भेज दीरावे।

दूत वैशाला जा के राजा चेटकको नमस्कार कर कोणकका संदेसा कह दीया उसके उत्तरमें राजा चेटक बोला कि हे दूत! तुम कोणकको कहदेना कि जेसे श्रेणिकराजाका पुत्र चेलना देवीका अंगज कोणक है एसाही श्रेणिकराजाका पुत्र चेलना-राणीका अंगज वहलकुमार है इन्साफ कि बात यह है कि हार-हस्ती अवल तो कोणकको लेना ही नही चाहिये क्यों कि वहल-कुमर कोणकका लघु भ्रात है और माता पितावोंने दिया हुवा है अगर हारहस्ती लेना ही चाहते हो तो आधा राज वहलकुमरको दे देना चाहिये। इस दोनों बातोंसे एक बात कोणक मंजुर करता हो तो हम वहलकुमरको चम्पानगरी भेज सकते है इतना कहके दूतको यहांसे विदाय कर दीया।

दूत वैशाला नगरीसे रवाना हो चम्पानगरी कोणकराजाके पास आयके सब हाल सुना दिया और कह दिया कि चेटक-राजा वहलकुमारको नही भेजेगा. इसपर कोणकराजाको और भी गुस्सा हुवा. तब दूतको बुलायके कहा कि तुम वैशाला नगरी जावो. चेटकराजा प्रत्ये कहना कि आप वृद्ध अवस्थामें ही राज-नीतिके जानकार हो. आप जानते हो कि राजमें कोइ प्रकारके पदार्थ उत्पन्न होते है. वह सब राजाका ही होता है तो आप हारहस्ती और वहलकुमारको कृपा कर भेज दीरावे. इत्यादि कहके दूतको दुसरीवार भेजा.

दूत कोणकराजाका आदेशको सविनय स्वीकार कर दुसरी दफे वैशाला नगरी गया. सब हाल चेटकराजाको सुना दिया. दुसरी दफे चेटकराजाने वही उत्तर दिया कि मेरे तो कोणक

दुसरी अग्रपूजा जो नगर निवासी चतुर्विधसंघ दर्शन कर लिया हो बादमें भगवानकी अग्रपूजा अंगपूजा करना वह विधि आगे चलके लिखेंगे ।

तीसरी कल्याणआरति–जोकि कुच्छ सूर्य दीखता है एसा सायकालमें धूपादिसे आरति करना और देववन्दन चैत्यवन्दनसे भावपूजा करना श्रावकोंका कर्तव्य है तत्पश्चात् मन्दिरजीका पटमंगल होना चाहिये ।

(प्र०) सायंकालमें अगर मन्दिरजीके पटमंगल कर दिया जावे तो भगवानकी भक्ति किस समय करनी चाहिये ?

(उ) भगवानकी आज्ञा हो उस समय भक्ति करना चाहिये.

(प्र०) सूर्यास्त होनेके बाद रोशनाइ करके भगवानकी भक्ति करनेकी शास्त्रकारोंकी आज्ञा हे या नही ?

(उ) शास्त्रकारोंकी तो आज्ञा है कि सायंकाल कल्याण आरति कर देववन्दन करके गुरुमहाराजके पास जाके अपने दिनके अन्दर लगे हूवे व्रतोंके अतिचार या कीया हुवे पापारंभकी आलोचना करनेकों प्रतिक्रमण करना चाहिये तत्पश्चात् गुरुमहाराजोंसे आत्मकल्याणके लिये तत्त्वज्ञान प्राप्त करना चाहिये यह आज्ञा है । परन्तु रात्री समय रोशनाइ करना कि जिससे असंख्य त्रस प्राणीओंका बलीदान होता है इतना ही

संग्राम करनेको तैयार होनेका आदेश दिया. काली आदि दशो भाइ राजके दश भाग लिया था वास्ते उन्होंको कोणकका हुकम मानके संग्रामकी तैयारी करना ही पडा। राजा कोणकने कहा कि हे बन्धुओ! आप अपने अपने देशमें जाके तीन तीन हजार गज, अश्व रथ और तीन क्रोड पैदलसे युद्धकि तैयारी करो, एसा हुकम कोणकराजाका पा के अपने अपने राजधानीमें जा के सेना कि तैयारी कर कोणकराजाके पास आये। कोणकराजा दशों भाइयोंको आता हुवा देखके आप भी तैयार हो गया, सर्व सैन्य तेतीस हजार हस्ती तेतीस हजार अश्व, तेतीस हजार संग्रामीक रथ, तेतीस क्रोड पैदल इस सब सेनाको एकत्र कर अंगदेशके मध्य भागसे चलते हुवे विदेह देशकि तर्फ जा रहाथा।

इधर चेटकराजाको ज्ञात हुवा कि कोणकराजा कालीआदि दश भाइयोंके साथ युद्ध करनेको आ रहा है। तब चेटकराजा कासी, कोशाल, अठारा देशके राजावो जो कि अपने स्वधर्मी थे उन्होंकों दूतों द्वारा बुलवाये। अठारा देशके राजा धर्मप्रेमी बुलवानेके साथ ही चेटकराकी सेवामें हाजर हुवे। और बोले कि हे स्वामि! क्या कार्य है सो फरमाए।

चेटकराजाने वहलकुमारकी सब हकिकत कह सुनाइ कि अब क्या करना अगर आप लोगोंकी सलाह हो तो वहलकुमरको दे देवे. और आप लोगोकी मरजी हो तो कोणकसे संग्राम करे। यह सुनके कर्मवीर अठारा देशोंके राजा सलाह कर बोले कि इन्साफके तौरपर न्यायपक्ष रख सरणे आयाका प्रतिपालन करना आपका फर्ज है अगर कोणक राजा अन्याय कर आपके उपर युद्ध करनेकों आता होतो हम अठारा देशोंके राजा आपकि तर्फ

यहांपर मौनव्रतका ही स्वीकार करना अच्छा है। अगर कालको शुद्ध बनाना हो तो भगवानकी आज्ञा हम उपर लिख आये हैं इति कालशुद्धि।

(४) भावशुद्धि—प्रभुपूजा करनेवालोंका अन्तःकरण निर्मल और निःस्पृही और केवल मोक्षके लिये ही होना चाहिये। परन्तु इस लोकमें राजऋद्धि पुत्र कलत्र धनधान्यादि पौद्गलीक सुखोंकी तथा परलोकमें देवादिकी ऋद्धिकी इच्छा न रखनी चाहिये। कितनेक लोक ज्ञानशुन्य होते हैं कि व्यापारमें भगवानका भाग रखते हैं तथा कष्ट आनेपर पूजा, शान्तिस्नात्र तथा तीर्थयात्राकी बोलावा और घृत तेलकी अखंड ज्योत करना तथा अपना यश कीर्ति नमूनादिके लिये भी कराते हैं इत्यादि महान् लाभका कार्य था उन्हीकों तुच्छ सुखोंके लिये वह महान् लाभको खो बैठते हैं शास्त्रकारोंने तो इन्हीको विषक्रिया कही है अर्थात् नफेके बदले नुकशान उठाना पडता है कारणके लोकोत्तरपक्षकी क्रिया करके लौकीक सुखकी अभिलाषा रखना यही तो प्रगट ही विपरीत श्रद्धा है और विपरीत श्रद्धावालोंको सिद्धान्तकारोंने मिथ्यात्वी कहा है तो दीर्घद्रष्टीसे विचारीये कि यह तुच्छ सुखोंका निदान करनेसे भवान्तरमें आराधक कैसे हो सक्ता है। दशश्रुतस्कन्धमें कहा है कि मोक्षपक्षकी क्रिया करके इस लोकके सुखका निदान करते हैं उन्होंको भवान्तरमें वीतरागके धर्मका श्रवण भी नहीं मीले।

अपने धनुष्यपर बांणको चढाके बडे ही जोरसे बांण फेंका किन्तु चेटक राजाको बांण लगा नही परन्तु अपराधि जाणके चेटक-राजाने एकही बांणमें कालीकुमारको मृत्युके धामपर पहुचादिया जब कालीकुमार सेनापति गिर पडा. तब उस रोज संग्राम बन्ध हो गया।

भगवान् फरमाते है कि हे गौतम! कालीकुमारने इस संग्रामके अन्दर महान् आरंभ, सारंभ, समारंभ कर अपने अध्य-वसायोंको मलीन कर महान् अशुभ कर्म उपार्जन कर काल प्राप्त हो. चोथी पंकप्रभा नरकके अन्दर दश सागरोपमकी स्थितिवाला नैरिया हुवा है।

गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान्! यह कालीकुमा-रका जीव चोथी नरकसे निकल कर कहां जावेगा।

भगवानने उत्तर दिया कि हे गौतम! कालीकुमारका जीव नरकसे निकलके महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाति-कुलके अन्दर जन्म धारण करेगा. (कारण अशुभ कर्म बन्धे थे वह नरकके अन्दर भोगव लिया था) वहांपर अच्छा सत्संग पाके मुनियोंकी उपासना कर आत्मभाव प्राप्त हो, दीक्षा धारण करेगा. महान तपश्चर्या कर घनघातीयां कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर अनेक भव्य जीवोंको उपदेश दे. अपने आयुष्यके अन्तिम श्वासोश्वासका त्याग कर मोक्षमें जावेगा.

यह सुन भगवान् गौतमस्वामी प्रभुको वन्दन-नमस्कार कर अपनी ध्यानवृत्तिके अन्दर रमणता करने लगगये।

इति निरयावलिका सूत्र प्रथम अध्ययन।

(२) दुसरा अध्ययन—सुकालीकुमारका. इन्होंकी माताका नाम सुकालीराणी है. भगवानका पधारणा, सुकालीका पुत्रके लिये

वृत्त होता हूं अर्थात् अब मैं संसारव्यवहारकी किसी किस्मकी बात न करूंगा। तत्पश्चात् मन्दिरजीके अन्दर कोइ भी फुटतुट कचरा आदि और भी कार्य करना हो तो आप करे और दुसरोंसे करावे बादमें रंगमंडपमें जाके दुसरीवार "निस्सिही" तीन दफे कहै अब मन्दिरजीके कार्यसे निवृत हुवा हूं। रंग-मंडपमें जानेपर श्री त्रिलोक्य पूजनीय जगतारक परमेश्वरकी शान्तमुद्राके दर्शन करते ही हृदयकमलमें आह्लाद आनन्द लाते हुवे अहोभाग्य समझना और खडे खडे दोय च्यार यावत् १०८ स्तुतियोंसे स्तवना करना बादमें तीन प्रदक्षिणा देना और भावना रखना कि मैं आज तीन लोकका भवभ्र-मणका विध्वंस करता हूवा ज्ञान दर्शन चारित्र यह रत्नत्र-यिकी आराधना करता हूं। तत्पश्चात् द्रव्यशुद्धिमें कहे माफीक (१) शरीर (२) वस्त्र (३) पूजाकी सामग्री (४) मन (५) वचन (६) कायाके योग (७) न्यायोपार्जित द्रव्य यह सातों प्रकारसे शुद्ध होके आप स्वयं ही पूजाप्रक्षालन अंग-लोणा करे किन्तु आप भगवानके आगेही सेठजी बनके नोक-रों पर हुँक्कम न लगादे "क्यारे पक्षाल होगइ" एसा न करना चाहिये कारण पूर्वभवोंमे पूर्वोक्त पूजा न करनेसे ही तो भव-भ्रमण करना पडता है कारण नोकरलोगोंको तो मात्र पैसोंका ही लोभ है वह भगवानकी भक्ति या आशातना क्या क्या स-मझते है वास्ते उन्होंसे तो बाहारका ही कार्य लेना चाहिये।

सग्रामका क्या हुवा, उसके लिये यहां पर भगवतीसूत्र शतक ७ उद्देशा ९ से सबन्ध लिखा जाता है

नोट–जब दश दिनोमें कोणक राजाके दशों योद्धा सग्राममें काम आगये तब कोणकने विचारा कि एक दीनका काम और है क्योंकि चेटक राजाका बाण अचुक है. जेसे दश दिनोंमे दश भाइयोंकी गति हुइ है वह एक दिन मेरे लीये ही होगा वास्ते कुच्छ दूसरा उपाय सोचना चाहीये. एसा विचार कर कोणक राजाने अष्टम तप (तीन उपवास) कर स्मरण करने लगा कि अगर कीसी भी भवमें मुझे वचन दीया हो, वह इस वख्त आके मुझे सहायता दो एसा स्मरण करनेसे 'चमरेन्द्र' और 'शक्रेन्द्र' यह दोनों और कोणक राजा कीसी भवमें तापस थे उस वखत इन दोनो इन्द्रोने वचन दीया था, इस कारण दोनों इन्द्र आये, कोणकको बहुत समझाये कि यह चेटक राजा तुमारा नानाजी है अगर तु जीत भी जायगा तो भी इसीके आगे हारा जेसाही होगा वास्ते इस अपना हठको छोड दे। इतना कहने पर भी कोणकने नही माना ओर इन्द्रोंसे कहा कि यह हमारा काम आपको करना ही होगा। इन्द्र वचनके अन्दर बन्धे हुवे थे। वास्ते कोणकका पक्ष करना ही पडा।

भगवती सूत्र—पहले दिन महाशीलाकंटक नामका सग्राम के अन्दर कोणक राजाके उदयण नामके हस्तीपर चम्मर ढोलाता हुवा कोणक राजा बेठा और शक्रेन्द्र अगाडी एक अभेद नामका शस्त्र लेके बेठ गया था जिसीसे दूसरोंका बाणादि शस्त्र कोणकको नही लगे और कोणककी तर्फसे तृण काष्ट ककर भी फेंके तो चेटक राजाकी सेना पर महाशीलाकी माफीक मालम होता था। इन्द्रकी सहायतासे प्रथम दिनके सग्राममें ८४००००० मनुष्योंका क्षय हुवा

ढीचण, हस्त, स्कन्ध, मस्तक, ललाट, कण्ठ, हृदय, उदर)×
का पूजन और भावना सहित काव्य बोलना।

नोट—हालमें विदेशी केसरका प्रचार बहुतसा बढ गया है अगर उन्होंकी तलास कि जाय तो पशुओंका रुधीर और दारू मिश्रत है एसा विलकुल अपवित्र द्रव्यसे त्रीलोक्य पूजनिक परमेश्वरोंको स्पर्श होना कितनी बडी आशातना है जैनागमोमें (रायपसेणी, जीवाभिगम, ज्ञाता, महानिसिथादि) चन्दनही की पूजाका लेख है बात भी ठीक है कि मैं कषाय रुपी अग्नि से जल रहा हूं हे प्रभु! आपको यह शीतल चन्दनसे अर्चन कर के मैं शीतलता चाहता हूं यह भावना पूजकोंकी होती है परन्तु केसर तो स्वयं ही गरमागरम है जो पाषाण के बिंब है वह गल जाते है धातु के बिंबों को काले काले छाटा लग जाते हैं इसी से भगवान को नव अंगो पर धातुकी बाटकीयो चाडी जाती है इन्होंसे पूजारीयोंको नव अंग भेटनेसे वचत रहना पडता है वास्ते सुज्ञ पुरुषोंको जिनाज्ञा माफीक चन्दनकी पूजा करना चाहिये न कि केसर क्यों कि विद्वान लोगोने तो अपने घरकार्यमें भी केसर वापरना बन्ध कर दीया हे तो भगवानको तो चढा ही कैसे सक्ते है अर्थात् नहींज चडे। " अस्तु "

× पूजकोंके चार अंग ललाट कण्ठ हृदय उदर पर पहले बींदि (टीक) करना चाहिये.

गयाथा कि कोणकको इन्द्र साहिता कर रहा है । तब चेटकराजा अपनि शेष रही हुइ सैना ले वैशाला नगरीमें प्रवेश कर नगरीका दरवाजा बंध कर दीया वैशाला नगरीमे श्री मुनिसुव्रत भगवानका स्थुभ था उसके प्रभावसे कोणकराजा नगरीका भंग करनेमें असमर्थ था वास्ते नगरीके वहार निवास कर बेठा था अठारा देशके राजा अपने अपने राजधानीपर चले गयेथे ।

वहल्लकुमर रात्रीके समय सीचानकगन्ध हस्तीपर आरुढ हो, कोणकराजाकि सेना जो वैशाला नगरीके चोतर्फ घेरा दे रखाथा उसी सेनाके अन्दर आके बहुतसे सामन्तोंको मार डालता था एसे कीतनेही दीन हो जानेसे राजा कोणकको खबर हुइ तब कोणकने आगमनके रहस्तेके अन्दर खाइ खोदाके अन्दर अग्नि प्रज्वलित कर उपर आच्छादीन करदीया इरादाथाकि इस रस्ते आने समय अग्निमें पडके मर जायगा " क्या कर्मोंकि विचित्र गति है. और कैसे अनर्थ कार्यकर्म कराते है " रात्री समय वहलकुँमार उसी रहस्तेसे आ रहाथा परन्तु हस्तीको जातिस्मरण ज्ञान हो-नेसे अग्निके स्थानपर आके वह ठेर गया. वहलकुँमरने बहुतसे अंकुश लगाया परन्तु हस्ती एक कदमभी आगे नही धरा वहलकुँ-मार बोला रे हस्ती ! तेरे लिये इतना अनर्थ हुवा है अब तूं मुझे इस समय क्यों उत्तर देता है यह सुनके हस्ती अपनि सुंढसे वहलकुँमरको दूर रख आप आगे चलता हुवा उस अच्छादित अग्निमे जा पडा शुभ ध्यानसे मरके देवगतिमें उत्पन्न हुवा वहलकुँमरको देवता भगवानके समोसरणमें ले गया वह वहां-पर दीक्षा धारण करली अठारा सरवाहार जिस देवताने दीया था, वह वापीस ले गया ।

पाठकों ! संसारकी वृत्तिको ध्यान देके देखिये जिसवार और

(५) नैवेद्यपूजा—अच्छे सुगन्धवाले मेवा मिष्टान मोदकादिसे नैवेद्यपूजा करते भावना रखनी कि हे भगवान मैं अनन्तकालसे इन्ही लोकमें परम् अशुची पौद्गलोंका आहार करता हूं आज आपकी यह नैवेद्यपूजा कर आपसे अनाहारी पदकी याचना करता हूं।

नोट—कितनेक अज्ञान लोक जो कि रोटी शाक तो क्या परन्तु मृत्युके पीछे किया हूवा भोजन जो अच्छे समझदार मनुष्य भी नहीं खाते है वह सीरा पुरी आदि, पवित्र भगवानके मन्दिर चडाते हैं क्या यह महान् आशातना नही है। यह खराब रीवाज अन्य लोकोंके देखादेख जैनमें भी घुस गयी है परन्तु अब तो इनका परित्याग करना चाहिये।

(६) दीपपूजा—अच्छा सुगन्धीत घृतका दीपकसे पूजा करते हुए भावना रखना कि हे भगवान मैं अनादि कालसे मिथ्यात्व रुप अन्धकारमें गोता खा रहा था आज आपकी यह दीपकपूजा कर ज्ञानउद्योत चाहता हूं—याचना करता हूं।

नोट—कितनेक लोभान्धतृष्णाप्रेरीत अपने संसारीक पुत्र कलत्र धन सन्मानादिके लिये मूल गुभारेमें अखंडित ज्योत कराते हैं जिन्होंसे मूल गुंभारा धुवांसे श्याम पडजाता है गृष्मऋतुमें जब गुंभारेके कमाड बन्ध कर दीये जाते है तब खुब गरमी हो जाती है तो क्या यह भक्ति है या महान् आशा-

यहमेरे तपश्चर्याका प्रभाव है, उस औषधिके प्रयोगसे साधुकों टट्टी और उलटी इतनी होगइ कि अपना होश भुलगया, तब वेश्याने उस साधुकि हीफाजितकर सचैतनकिया. साधुउसका उपकार मानके बोलाकि तेरे कुच्छ काम होतो मुझे कहे, तेरे उपकार कावदला देउ। वैश्या बोलीके चलीये। बस। राजा कोणके पास ले आइ, कोणकने कहाकि हे मुनि इस नगरीका भंग करा दो। वह साधु वहांसे नगरीमें गया नगरीके लोक १२ वर्ष हो जानेसे बहुत व्याकुल हो रहे थे. उस निमत्तीयाका रूप धारण करनेवाले साधुसे लोकोंने पुच्छा कि हे साधु इस नगरीको सुख कब होगा। उत्तर दिया कि यह मुनि सुव्रतस्वामिका स्थुभकों गिरा दोगे तब तुमकों सुख होगा। सुखाभिलाषी लोकोंने उस स्थुभकों गिरा दीया. तब राजा कोणकने उस नगरीका भंग करना प्रारंभ कर दीया, मुनि अपना फर्ज अदा कर वहांसे चलधरा।

. यह बात देख चेटकराजा एक कुँवाके अन्दर पड आपघात करना शरू कीया था, परन्तु भुवनपति देव उसकों अपने भुवनमें ले गया बस। चेटकराजाने वहां पर ही अनसन कर देवगति को प्राप्त हो गये।

राजा कोणक निराश हो के चम्पानगरी चला गया, यह संसारकि स्थिति है कहां हार, कहां हस्ती, कहां वहलकुमर, कहां चेटकराजा, कहां कोणक, कहां पद्मावती राणी, क्रोडों मनुष्यों की हत्या होने पर भी कीस वस्तुका लाभ उठाया ? इस लिये ही महान् पुरुषोंने इस संसारका परित्याग कर योगवृत्ति स्वीकार करी है।

चम्पानगरी आनेके बाद कोणक राजाको भगवान वीर प्रभुका दर्शन हुवा और भगवानका उपदेशसे कोणकको इतना तों

इत्यादि जो जो पूजाकी सामग्री चाहिये वह उदारता पूर्वक आत्मकल्याण समझके भावना पूर्वकही पूजन करना चाहिये।

जब द्रव्य पूजा होजावे तब बादमें तीसरी "निस्सिहि" कहते भावना रखना किअब मैं द्रव्यपूजासे विराम होता हूं द्रव्य-पूजा करते अगर कीसी प्रकारसे अयत्ना प्रवृत्तिसे जीवोंको तकलीफ हूइ हो तो शुद्धोपयोग संयुक्त इरियावही पडिक्मना बादमें चैत्यवन्दन रूप भाव पूजा करना और भावपूजा हो जावे तब भगवानसे प्रार्थनारूप भावना रखना कि आज मेरा अहो-भाग्य है कि मेरे निर्विघ्नपणे प्रभु पूजा हुई है एसा दिन हमेशां हो कि मेरे प्रभुपूजा होती रहै।

पूजा करके गुरुमहाराजके पास जाके धर्मदेशना या मंगलीक सुने और भोजनके समय भावना रखे कि धन्य है जो महानुभाव मुनिमहाराजोंको या साध्वीजीको सुपात्रदान देते है अपने घरपर पधार जावे तो आदर सत्कार पूर्वक दान दे के अपना जन्म सफल करे। भोजनादिके समय भक्षाभक्ष का अवश्य विचार करे परन्तु लोलुप्ताके वस नहि पडजाना चाहिये। बादमें न्यायपक्षसे गृहकार्यके निमित्त द्रव्योपार्जन करे यह गृहस्थाचार है.

बादमें सायंकाल भगवानकी कल्याणारतिकर गुरुमहा राजके समीप प्रतिक्रमण करके तत्त्वज्ञानकी प्राप्ती करता अपना

अथश्री

कप्पवडिंसिया सूत्र.

—०००—

(दश अध्ययन)

प्रथमाध्ययन—चंम्पा नगरी पुर्णभद्र उद्यान पुर्णभद्रयक्ष कोणक राजा पद्मावती राणी श्रेणक राजाकि काली राणी जिस्के काली कुमार पुत्र इस सबका वर्णन प्रथम अध्ययनमे समझना।

कालीकुमार के प्रभावति राणी. जिसको सिंह स्वप्न सूचित पद्मनामका कुमारका जन्म हुवा. माता पिताने बडाही महोत्सव किया. यावत युवक अवस्था होनेसे आठ राजकन्यावोंकि साथ पाणिग्रहन करा दिया. यावत् पंचेन्द्रियके सुख भोगवते हुवे काल निर्गमन कर रहे थे।

भगवान वीर प्रभु अपने शिष्य मंडलके परिवारसे भव्य जीवोंका उद्धार करते हुवे चम्पानगरी के पुर्णभद्र उद्यानमें पधारे।

कोणक राजा बडाही उत्सावसे च्यार प्रकारकी सेना ले भगवानको वन्दन करनेकों जारहा था. नगर निवासी लोगभी एकत्र मीलके भगवानकों वन्दन निमत्त मध्य बजारमें आरहे थे. इस मनुष्यों के वृन्द कों पद्मकुमार देखके अपने अनुचरोंसे पुच्छा कि आज चम्पानगरी के अन्दर क्या महोत्सव है? अनुचरोंने उत्तर दीया कि हे स्वामिन् आज भगवान वीर प्रभु पधारे है वास्ते जनसमूह एकत्रहो भगवानको वन्दन करनेको जारहे है। यह सुनके पद्मकुमार भी च्यार अश्वोंके रथपर आरूढ हो भगवानकों वन्दन करनेकों सर्व लोकोंके साथमें गया भगवानकों प्रदिक्षणा दे वन्दना कर अपने अपने योग्य स्थानपर बैठ गये।

अथ श्री

तीर्थयात्रा स्तवन.

(देशी–ख्यालकि).

जिन यात्रा करतां, हुइ पवित्र म्हारी आतमा । ऐ टेर । जिनवर जीत्या रागद्वेषने, जिनके निक्षेपाचार; विशेष उपगारी आगम बोले, स्थापना निक्षेप विचारहो ।। जि० ।। १ ।। भाव निक्षेपे जिनवर वैठा, स्थापना रुप शरीर; देखीने प्रतिबोधे प्राणी, वाणी वदे महावीर हो ।। जि० ।। २ ।। जिनप्रतीमाने जिनवर जाणी, यात्रा करे भविप्राणी; कर्म बापडा फिरे भागता, जीव वरे शिवराणी हो ।। जि० ।। ३ ।। अन्तरायको पाटो मूंडे, वांधी भवमें भमीयों; दूरो कीनो तीर्थ ओसीया, महावीर मेरे मन गमीयो हो ।। जि० ।। ४ ।। नगर ओसीया वीर भेटीया, तिवरी मंदिर दोय; दोय मंदिर लोहावटमांहे, भेट्या आनन्द होय हो ।। जि० ।। ५ ।। पांच मंदिर फलोधी चोमासे[1], जेसलमेर किलेमें आठ; दोय मंदिर है सहर माहिने, लगे पूजाका थाट हो ।। जि० ।। ६ ।। अमरतसरमें तीन

[1] स. १९७३ का चातुर्मास फलोधीमें हुवा था.

अनुभवकर महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाति-कुलमे जन्म धारण कर फीर वहांभी केवलीप्ररूपीत धर्म सेवनकर दीक्षा ग्रहनकर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा इति प्रथम अध्ययन समाप्तं।

नं०	कुमारके अध्ययन	माताका नाम	पिताका नाम	देवलोक गये	दीक्षाकाल
१	पद्म कुमार	पद्मावती	काली कुमार	सौधर्म देवलोक	५ वर्ष
२	महापद्म ,,	महापद्मावती	सुकाली ,,	इशान ,,	५ ,,
३	भद्र ,,	भद्रा	महाकाली,,	सनत्कुमार ,,	४ ,,
४	सुभद्र ,,	सुभद्रा	कृष्ण ,,	माहेन्द्र ,,	४ ,,
५	पद्मभद्र ,	पद्मभद्रा	सुकृष्ण ,,	ब्रह्म ,,	४ ,,
६	पद्मश्रेन ,,	पद्मश्रेना	महाश्रेण ,,	लान्तक ,,	३ ,,
७	पद्मगुल्म ,,	पद्मगुल्मा	वीरश्रेण ,,	महाशुक्र ,,	३ ,,
८	निलनिगु०,,	निलनिगुल्मा	रामकृष्ण ,,	सहस्र ,,	३ ,,
९	आनन्द ,,	आनन्दा	पद्मश्रेणकृ०,,	प्राणत ,,	२ ,,
१०	नन्दन ,,	नन्दना	महाश्रेणकृ०,,	अच्युत ,,	२ ,,

यह दशों कुमार श्रेणक राजाके पोते है भगवान वीर प्रभुकी देशना सुन संसारका त्याग कर भगवानके पास दीक्षा ग्रहण कर अन्तिम एकेक मासका अनशन कर देवलोकमें गये है। वहांसे सीधे ही महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्यभव कर फीर दीक्षा ग्रहन कर कर्मरीपुको जीत केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा. इति।

इतिश्री कप्पवडिंसीया सूत्र संक्षिप्त सार समाप्तम्।

पांच पर्यासी अन्तर महुर्तमें बान्धके एकदम युक्कावय धारण कर लेना कहा है जहाँ देवपणे उत्पन्न होनेका अधिकार आवे वहांपर एसाही समझना।

कर्मोंपर मेख हो ॥ जि० ॥ १७ ॥ अहमदाबाद आनन्दसे आया, वसे जैन आवाद; जिन मन्दिरोंकी रचना देखी, पाम्या चित अहल्लाद हो ॥ जि० ॥ १८ ॥ संभवनाथने आदेश्वरजी, वाडीमें भगवन्त; पचवीस दिन तक करी यात्रा, तोय न आया अन्त हो ॥ जि० १९ ॥ जैतलपुर खेडा मातरमें: साचा स्वामी भेट्या; देवा सोजतरा सुन्दरा में, भटादरे दुःख मेट्या हो ॥ जि० ॥ २० ॥ पेटलाद ने वोरसदमें, तीन तीन मन्दिर भारी; खेडासर गंभीरा मांहे, दर्शनकी वलीहारी हो ॥ जि० ॥ २१ ॥ मुजपुर मांहे एक मन्दिर है, पादरेमें तीन; वडोदरे भगवान भेटीया, हो भक्तिमें लीन हो ॥ जि० ॥ २२ ॥ मकरपुरमें घर देरासर, इंटालामें आया; मियागाव मजामें भेट्या, करजण दर्शन पाया हो ॥ जि० ॥ २३ ॥ पालेजमें परमेश्वर भेट्या, जीणोरमें जगनाथ; अंगालेसर घर देरासर, झघडीये आदिनाथ हो ॥ जि० ॥ २४॥ लींवेठ मांगरोल कठोरमें, कतारमें किरतार; साहेब विराजे सुरत मांहे, शिवरमणी भरतार हो ॥ जि० ॥ २५ ॥ साल पचंतर रया चौमासे, यात्रा करी श्रीकार; कृपा रत्नगुरुकी मुझपर, वरते जयजयकार हो ॥ जि० ॥ २६ ॥ सिद्धक्षेत्रकी यात्रा कारण, कतार गाममें आया; सायण किम कसूंबा होके, अंकलेश्वर दर्शन पाया हो ॥ जि० ॥ २७ ॥ भरुचनगरमें भेटीया सिरे, मुनिसुव्रत भूनाथ; सवाली आमोद भेटीया, जंबूसर जगनाथ हो ॥ जि० ॥ २८ ॥ कावी कृपानाथ विराजे, जहां में दर्शन

सामने जाके भगवानको वन्दन नमस्कार कर बोला कि हे भगवान आप वहां पर विराजमान है मैं यहां पर बेठा आपको वन्दन करता हुं. आप मेरी वन्दन स्वीकृत करावे। यहां पर सब अधिकार सूर्याभ देवताकी माफीक कहना। कारण देव आगमनके अधिकारमें सविस्तर अधिकार रायप्पसेनी सूत्र सूर्याभाधिकारमें ही कीया है इतना विशेष है कि सुस्वर नामकी घंटा बजाइ थी वैक्रयसे एक हजार योजन लंबा चौडा साडा बासठ योजन उचा वैमान बनाया था पचवीस योजनकी उंची महंद्र ध्वजा थी. इत्यादि बहुतसे देवी देवताओंके वृन्दसे भगवानको वन्दन करनेको आया, वन्दन नमस्कार कर देशना सुनी. फिर सूर्याभकी माफीक गौतमादि मुनियोंको भक्तिपूर्वक बत्तीस प्रकारका नाटक बतलाके भगवानको वन्दन नमस्कार कर अपने स्थान जानेको गमन किया।

भगवानसे गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे करुणासिन्धु यह चन्द्रमा इतने रुप कहांसे बनाये. कह प्रवेश कर दीये।

प्रभुने उत्तर दिया कि हे गौतम! जेसे कुडागशाल (गुप्तघर) होती है उसके अन्दर मनुष्य प्रवेश भी हो सक्ता है और निकल भी सक्ता है इसी माफीक देवोंको भी वैक्रिय लब्धि है जिससे वैक्रिय शरीरसे अनेक रूप बनाय भि सके और पीछा प्रवेश भी कर सके।

पुन. गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे दयालु! इस चन्द्रने पूर्वभवमें इतना क्या पुन्य किया था कि जिसके जरिये यह देवरुद्धि प्राप्त हुइ है?

भगवानने उत्तर दिया कि हे गौतम! सुन। इस जम्बुद्विपका भरतक्षेत्रके अन्दर सावत्थी नामकी नगरी थी वहां पर जय-

वसीमें, जातां डाबे हाथ; मूल मन्दिर के बारणे सिरे, जिहां नवा आदेश्वर नाथ हो. ॥ जि० ॥ ४० ॥ देवगुरुकी यात्रा करके, जन्म सफल कर लीनो; अब हम अमर भये न मरेंगे, दादे परवानो दीनो हो. ॥ जि० ॥ ४१ ॥ सिद्धाचल से पीछा चलतों, तेहीज मारग जाणो; बरवाला चाकी खरल, धंधूके नाथ पिछाणो हो. ॥ जि० ॥ ४२ ॥ फेदरा में एक मन्दिर है, उतेलीया में नाथ; कृपानाथ कोट में भेटया, गंगारमें जगनाथ हो ॥ जि० ॥ ४३ ॥ बावला भींडया मांहे; सरकेज मन्दिर एक, अहमदावाद वाडीमें भेटया, अरिहंत बिंब अनेक हो. ॥ जि० ॥ ४४ ॥ दूजी वार तो करी यात्रा, अधिको आनन्द आयो; सुरत जाय झघडीये आयो, सुखे [1]चौमासो ठायो हो ॥ जि०॥४५॥ आदेश्वरकी कृपा पूरी, मनमान्यो फलपायो; तिणहिज रस्ते यात्रा करता, अहमदावादे आयो हो. ॥ जि० ॥ ४६ ॥ अमदावादसे खोरज आयो, शेरीसर सुख पाया; पंच बिंब भूमिसे प्रगटया, वस्तुपाल भराया हो. ॥ जि० ॥ ४७ ॥ कलोल कृपानाथ भेटीया, पानसर में आयो; वीर प्रभूका दर्शन करतां, रोम रोम हुलसायो हो. ॥ जि० ४८ ॥ आतम अनुभव रसका प्याला, पीना समिति हाथ; तीन मन्दिर कडीमें भेटया, भोयणी मल्लीनाथ हो. ॥ जि० ॥ ४९ ॥ जोटाणेमें तीन मन्दिर है, दश मैसाणें दीपे; मन घोडे असवार

---

१ १९७६ का चातुर्मास झघडीये हुआ था.

गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान! चन्द्रदेवको स्थिति कितनी है।

हे गौतम! एक पल्योपम और एकलक्ष वर्षकि स्थिति चन्द्रकी है।

पुन प्रश्न किया कि हे भगवान! यह चन्द्रदेव ज्योतिषीयों का इन्द्र यहांसे भव स्थिति आयुष्य क्षय होने पर कहां जावेगा?

हे गौतम! यहांसे आयुष्य क्षय कर चन्द्रदेव महाविदेह क्षेत्रमें उत्तम जाति-कुलके अन्दर जन्म धारण करेगा। भोगविलाससे विरक्त हो केवली प्ररूपीत धर्म श्रवण कर संसार त्याग कर दीक्षा ग्रहण करेगा। च्यार घनघाती कर्म क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर सिधा ही मोक्ष जावेगा। इति प्रथम अध्ययन समाप्तम्।

(२) दुसरा अध्ययनमें, ज्योतिषीयोंका इन्द्र सूर्यका अधिकार है चन्द्रकि माफीक सूर्यभि भगवानकों वन्दन करनेको आयाथा वत्तीस प्रकारका नाटक कियाथा, गौतमस्वामिकी पृच्छा भगवानका उत्तर पूर्ववत् परन्तु सूर्य पूर्वभवमें सावत्थी नगरीका सुप्रतिष्ट नामका गाथापति था। पार्श्वप्रभुके पास दीक्षा, इग्यारा अंगका ज्ञान, वहुत वर्ष दीक्षा पाली, अन्तिम आधा मासका अनसन, विराधि भावसे कालकर सूर्य हूवा है एक पल्योपम एक हजार वर्षकि स्थिति. वहांसे चवके महाविदह क्षेत्रमें चन्द्रकि माफीक केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जावेगा इति द्वितीयाध्ययन समाप्तम् ॥

(३) तीसरा अध्ययन। भगवान वीर प्रभु राजगृह नगर गुणशीला चैत्यके अन्दर पधारे राजादि वन्दनकों गया।

चन्द्रकि माफीक महाशुक्र नामका गृह देवता भगवानकों वन्दन करने को आया यावत् वत्रीस प्रकारका नाटक कर वापिस चला गया।

प्रभुजी, धेय ध्याता थइ ध्याऊं; शान्त मुद्रा कारण पामी, हूं पण धेयपद पाऊ हो. ॥ जि० ॥ ६१ ॥ पालडीमें परम जगदगुरु शिवगंज शिवका दाता; मन्दिर आठ कर्मको काटे. मिले अटल सुखसाता हो. ॥ जि० ॥ ६२ ॥ कोरंटनगर ने और ओसीया मूर्ति श्री महावीर; एक दिनमें करी प्रतिष्टा, रत्नसूरी जगधीर हो. ॥ जि० ॥ ६३ ॥ ते तीर्थनी करी यात्रा, मन्दिर छे तिहां चार; वांकली भगवान भेटीया, आणी हर्ष अपार हो. ॥ जि० ॥ ६४ ॥ चान्तिसूरा चमानन्दीमें, दूजाणे दीनानाथ, करुणासिधु कोसेलावमें, झाल्यो शिव वधु हाथ हो. ॥ जि०॥ ६५ ॥ गाम नाडोलमें एक मन्दिर है, गुणगिरवा गुंदोज; नवलखाजी पाली भेट्या, मोच कारण मनमोज हो. ॥ जि० ॥ ६६ ॥ गोर्यांट होय सेलावस आयो, जगतारक जग छाजे; जोधपुर ने तिवरी ओसीयां, मेलाका वाजा वाजे हो. ॥ जि० ॥ ६७ ॥ वीर प्रभूकी करी यातरा, रोम रोम हुलसायो; संघ चतुरविध मिलके सारा, भक्ति ठाठ मचायो हो. ॥ जि० ॥ ६८ ॥ भक्ति द्रव्य भाव दोय भेदे, कारण कारज जाणो; चार निक्षेपा भक्ति केरा, भेदाभेद पिछाणो हो. ॥ जि० ॥ ६९ ॥ चार नयकी भक्ति कीनी, वार अनन्ती आगे; तोपण गरज मरी नही साहेव, किमकर कुमती भागे हो. ॥ जि० ॥ ७० ॥ जिहां देखूं तिहां धमाधम है, कारण धर्म आरोपे; गाडरी प्रवाह कुलाचारले, मूल मार्ग ने गोपे हो. ॥ जि० ॥ ७१ ॥ अध्यातम उलस्यो नहीं साहेब, तुज आणा

(१) हमारे यात्रा—जो कि तप नियम सयम स्वध्याय ध्यान आवश्यकादि के अन्दर योगोंका व्यापार यत्न पुर्वक करना यह यात्रा है। यहां आदि शब्द मे ओरभी वोल समावेश हो सक्ते हैं।

(२) जपनि हमारे दोय प्रकारकि है (१) इन्द्रियापेक्षा (२) नोइन्द्रियापेक्षा। जिसमें इन्द्रियापेक्षाका पाच भेद है (१) श्रोत्रेन्द्रिय (२) चक्षुइन्द्रिय (३) घ्राणेन्द्रिय (४) रसेन्द्रिय (५) स्पर्शेन्द्रिय यह पांचो इन्द्रिय स्व स्व विषयमें प्रवृत्ति करती हुइको ज्ञानके जरिये अपने कब्जे कर लेना इसको इन्द्रिय जपनि कहते है. और क्रोध मान माया लोभ उच्छेद हो गया है उसकि उदिरणा नही होती है अर्थात इस इन्द्रिय और कषाय रूपी योधोकों हम जीतलिये है।

(३) अव्याबाध ? जे वायु पित कफ सन्निपात आदि सर्व रोग क्षय तथा उपसम है किन्तु उदिरणा नहीं है।

(४) फासुक विहार। जहां आराम उद्यान देवकुल सभा पाणी वीगेरे के पर्व, जहां स्त्रि नपुंसक पशु आदि नहो ऐसी वस्ती हो वह हमारे फासुक विहार है।

(प्र०) हे भगवान ? सरस्व आपके भक्षण करणे योग्य है या अभक्ष है ?

(उ०) हे सोमल ? सरस्व भक्षभी है तथा अभक्ष भी है।

(प्र०) हे भगवान ! क्या कारण है ?

(उ०) हे सोमल ? सोमलको विशेष प्रतितिके लिये कहते है कि तुमारे ब्राह्मणोंके न्यायशास्त्रमें सरसव दो प्रकारके है (१) मित्र सरसवा (२) धान्य सरसवा। जिसमें मित्र सरसवाका तीन भेद है (१) साथमें जन्मा (२) साथमे वृद्धिहुइ (३) साथमें धूलादिमें खेलना। वह तीन हमारे श्रमण निग्रन्थोंको अभक्ष है और

अथश्री

जैन दीक्षा.

—•⊰◎⊱•—

जैन दीक्षा अनन्त सुखरूपी मोक्षफलकी दाता है। जितने जीव मोक्षमें गयें हैं वह सबके सब जैन दीक्षा आराधन करके ही गयें हैं इसलिये मोक्षार्थी आत्मबन्धुकों द्रव्य और भावसे जैन दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण करना चाहिये।

जैन दीक्षाको धारण करनेवाले तीर्थंकर चक्रवर्ति बलदेव और बडे बडे राजा महाराजा शेठ सेनापति गाथापति आदि हो गयें हैं जिन्होंका इतिहास जैन सिद्धान्तोंमे मोजुद है. बात भी ठीक है कि जिस वस्तुके योग्य मनुष्य होता है उसी को वह वस्तु दीजाती है अगर अयोग्य को वस्तु दिजावे तो वह लाभकी निष्वत् नुकशानको ही प्राप्त करनेवाली होती है।

सूत्र श्री स्थानायांग ठाणे तीजे तथा बृहत्कल्प उद्देश तीजामें अयोग्यको दिक्षाका निषेध कीया है और सविस्तर श्री प्रवचनसारोद्धारमें हैं उक्त आगमोंका संक्षीप्त सारांश यहांपर लिखा जाता है।

(उ०) हे सोमल ! तुमारे ब्राह्मणोंकि न्यायशास्त्रमें कुलत्थ दोय प्रकारका कहा है (१) स्त्रिकुलत्थ (२) धान्न कुलत्थ । जिस्मे स्त्रिकुलत्थके तीन भेद है । कुलकन्या कुलवहु. कुलमाता. यह श्रमण निग्रन्थोंको अभक्ष है और धान्नकुलत्थ जो सरसव धान्नकि माफक जो लद्रिया है वह भक्ष है शेष अभक्ष है इसवास्ते हे सोमल कुलत्थ भक्ष भी है तथा अभक्ष भी है ।

(प्र०) हे भगवान ! आप एकाहो ? दोयहो ? अक्षयहो ? अवेद हो ? अवस्थितहो ? अनेक भावभूतहो ?

(उ०) हां सोमल ! मैं एक भिहुं यावत अनेक० ।

(प्र०) हे भगवान ! एसा होनेका क्या कारण है ।

(उ०) हे सोमल ! द्रव्यापेक्षामें एक हूं । ज्ञानदर्शनापेक्षामें दोय हूं. आत्मप्रदेशापेक्षामें अक्षय. अवेद. अवस्थित हुं० और उपयोग अपेक्षामें अनेक भावभूत हूं. कारण उपयोग लोकालोक व्याप्त है वास्ते हे सोमल एक भी मैं हु यावत् अनेक भावभूत भी मैं हु.

इस प्रश्नोंका उत्तर श्रवणकर सोमल ब्राह्मण प्रतिबोधीत होगया । भगवान को वन्दन नमस्कार कर बोला कि हे प्रभु ! मैं आपकि वाणीका प्यासा हूं वास्ते कृपाकर मुझे धर्म सुनावों.

भगवानने सोमलको विचित्र प्रकारका धर्म सुनाया. सोमल धर्म श्रवणकर बोलाकि हे भगवान ! धन्य है आपके पास संसारीक उपाधियों छोड दीक्षा लेते है उन्हको ।

हे भगवान । मैं आपके पास दीक्षा लेनेमें तो असमर्थ हूं । किन्तु मैं आपकेपास श्रावकव्रत ग्रहन करूंगा । भगवानने फरमाया कि " जहासुख " सोमल ब्राह्मण परमेश्वर पार्श्वनाथजीने

जड–जैसे पाणीमें डूबते हूवेकी माफीक बडबड करते ही बोले, तथा बोलते हूवे गुस्सेसे भरा हूवा क्रोधसे बोले, और बकरेकी माफीक दिनभर बोलता ही रहे, वह भी स्पष्ट मालम न पडे गुंगाकी माफीक बोले (२) शरीरजड–जिसका शरीर भारी हो, हलनचलन क्रियामें आलसु–प्रमादी हो, समयपर बराबर क्रिया न कर सके (३) करणजड–हिताहितका ख्यालही न हो अगर हित शीक्षा देनेपर गुस्सा करे और गुरु-महाराजका वचनका उल्लंघन करता हो वहभी दीक्षाके अ-योग्य है ।

(६) दी० जिसके शरीरमें श्वास खांसी जलंदर भगंदर कोढ अर्गदका रोग हो वह अयोग्य है कारण रोगी हो वह आप पुरण संयम न पाले और दूसरे साधुओंको संयम पालने न दे (प्र०) अगर दीक्षा लेनेके बादमें रोग हो जावे तो क्या करना (उ०) अच्छे दीलसे उनकी वेयावच्च करना परन्तु पहिलेसे रोगीको दीक्षा देनेका हूकम नहीं है ।

(७) दी० गृहस्थावासमें चौरी करी हो, लोकोंमें अप्रतित हो वहभी दीक्षाके अयोग्य है कारण साधुओंको भिक्षादिको हरवख्त गृहस्थोंके वहां जाना पडता है अगर एसा साधु होतो लोगोंको अविश्वास होता है (प्र०) प्रभवादि चौरोंने दीक्षा तो लीथी (उ०) वह देनेवाले चार ज्ञान–श्रुत केवली थे भविष्यकालको जानते थे.

(उ०) आचारांगसूत्र २ । ५ में वस्त्रका अधिकारमें तीन वस्त्र कहा है और २ । ६ में पात्रके अधिकारमें वस्त्रकी भोला-वण दी है तथा उत्पातिकसूत्रमें उणोदरी अधिकारमें लिखा है कि एक वस्त्र और एक पात्र रखनेवालेको उणोदरी कही है विचारीये कि स्वादकों जीतनेके लिये साधु हूवे है तो एक पात्रमें रोटी दुसरेमें शाक और तीसरेमें पाणी लेवे तो फीर चोथाकी क्या जरुरत है । निशिथसूत्रमें लिखा है कि कीसी साधुका हाथ पग नाक कान तुट जावे-छेदा जावे तो उन्हीको एक पात्र अधिक देना चाहिये । कंबली संथारीया रखना दशवैकालिकमें कहा है और ज्ञान दर्शन चारित्रकी वृद्धिके लिये दंडासन आदि उपकरन भी रखाजाते है और वृद्ध हो-जानेपर कारणसे और भी उपकरण रखसक्ते है परन्तु उन्हीपर ममत्वभाव नहीं रखना चाहिये । अधिक उपाधि रखनेसे संय-मकी विराधना होती है प्रतिलेखन बन नहीं सक्ती है चौरा-दिका भय रहता है विहारमें पोटलीया-मजूर रखना पडता है बाजे बाजे तालाकुंची भी रखनी पडती है और दुनियां महा-वीरजीके पोठीयेके नामसे भी बतलाने लगजाती है । (प्र०) यह जो आचार बताये है वह तो चोथा आराके साधुवोंका है अबी तो पंचमो काल मंद संघयण है वास्ते अधिक भी रखना पडता है । (उ०) आपके उपर कीसने वजन रखा था कि आपको दीक्षा लेनाही पडेगा अगर आप इस बातको पहलेही सोच-

प्रकारके अत्याचार करते है जिन्हीसे धर्मपर कलंक लगता है वास्ते वहभी दीक्षाके अयोग्य है ।

(१३) मुढ हो हिताहितको न जाने अर्थात् अज्ञानी अविवेकी हो संसारमें भी अज्ञानसे अनेक दुष्ट कार्य कीया हो तथा तत्त्वमें अज्ञात हो (प्र०) दीक्षा लेनेके पहले ज्ञान और तत्वका जाणकार केसे हो सक्ता है (उ०) जिनेन्द्र भगवान की दीक्षा मूर्खोंके लिये नही किन्तु वडेही विचक्षणोंके लिये है ज्ञानी और तत्त्वके जानकार दीक्षा लेगा वही स्वपर आत्माओंका कल्याण कर सकेगा पहलेसे ही चिन्ह दीखाइ देता है कि यह भविष्यमें केसा होगा इत्यादि देखकेही दीक्षा देना । (प्र०) संप्रतिराजाके पूर्वभव भिक्षाचरको दीक्षा दी थी । (उ०) वह आगमविहारी थे और उन्होंने ही फरमाया है कि हमने कीया वैसे मत करो परन्तु हम कहे वैसे करो ।

(१४) ऋणी हो—जो दीक्षा लेवे उन्हीके शिरपर पारका करजा हो वह भी दीक्षाके अयोग्य है कारण लेनदार दाव–फरियादि करे । (प्र०) देना दीलवादे तो क्या हर्जा है । (उ०) मूल्य देके या दीराके शिष्य करना मना है और मूल्यके शिष्य कीतने दीन ठरनेका है क्या वह परिसह सहन कर सकेगा ? वास्ते वैरागवालोंको दीक्षा देना उचित है ।

(१५) दी० जाति, कर्म, शरीरसे दोषीत हो । जाति दोषीत जैसे धोवी कोली भील मेणा नाइ मोची के जिस्के

कीया है यावत् तापसी दीक्षा लेली है तो अब मुझे सूर्योदय हो-तेही पूर्वसंगातीया तापस तथा पीच्छेमें संगती करनेवाला तापस औरभि आश्रमस्थितोंकों पुच्छके वागलवस्त्र; वांसकि कावड लेके, काष्टकि मुहपति मुहपर वन्धके उत्तरदिशाकि तर्फ मुह करके प्रस्थान करु एसा विचारकरा।

सूर्योदय होतेही अपने रात्रीमें कियाहुवा विचारमाफीक वागलवस्त्र पहेरके वांसकी कावड लेके. काष्टकि मुहपतिसे मुहवन्धके उत्तरदीशा सन्मुख मुहकरके सोमल महाणऋषि चलना प्रारंभकीया उस समय औरभि अभिग्रह करलिया कि चलते चलते, जल आवे, स्थल आवे, पर्वत आवे, खाडआवे, दरी आवे विषमस्थान आवे अर्थात् कोइ प्रकारका उपद्रव्व आवे तोभी. पीच्छा नही हटना. एसा अभिग्रहकर चला जाते जाते चरम पहोरहुवा उससमय अपने नियमानुस्सार अशोकवृक्षके निचे एक वेलुरेतीकी वेदका रची उसपर कावडधरी डावतृण रखा. आप गंगानदीमें जाके पूर्ववत् जलमज्जन जलक्रीडा करी फीर उस अशोकवृक्षके नीचे आके काष्टकि मुहपतिसे मुहवन्ध लगाके चूपचाप वेठगया।

आदी रात्रीके समय सोमल ऋषिके पास एक देवता आया. वह देवता सोमलऋषिप्रते एसा वोलताहुवा। भो! सोमल माहणऋषि! तेरी प्रवृज्ञा (अर्थात् यह तापसी दीक्षा) है वह दुष्ट प्रवृज्ञा है. सोमलने सुना परन्तु कुच्छभी उतर न दीया, मौन कर ली। देवताने दुसरी-तीसरीवार कहा परन्तु सोमल इस वातपर ध्यान नही दीया। तब देव अपने स्थान चला गया.

सूर्योदय होतेही सोमल वागलके वस्त्र पहेर कावडादि उपकरण ले काष्टकी मुहपतिसे मुहवन्ध उत्तरदिशाकों स्वीकारकर चलना प्रारंभ करदीया. चलते चलते पीच्छले पहोर सीतावनवृक्ष-

तो दीक्षा देनेवाला भवान्तरमें दुर्लभबोधी होता है और जगतमें जैन मुनियोंकी भी अप्रतित होती है दुनीयां कहने लगजाती है कि साधु पाटपर विराजे व्याख्यान देते है तब दुसरोंको चौरी करनेका त्याग कराते है और आप खुद चौरीयों करते फीरते है शास्त्रकारोंका क्या फरमान है वह दशवैकालिक अध्ययन चोथा आचारांग सूत्र श्रुतस्कन्ध दुजा अ० पन्दरवा तथा प्रश्नव्याकरण सूत्रमें विना आज्ञा दीक्षा देना बीलकुल मना कीया है तो क्या दीक्षा लेनेवाले लोभीयोंको भगवानकी आज्ञासे भी यह लोभवृत्ति अधिक प्यारी हो गइ है सूत्र पाठ यथा—

अहावरे तच्चभंते महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं सव्वं भंते अदिन्नादाणं पच्चक्खामि से गामेवा नगरेवा रन्नेवा अप्पंवा बहुवा अणूवा थूलंवा चित्तमत्तं वा अचित्तमत्तं वा नेव सयं अदिन्नं गिह्विज्जा नेवन्नेहिं अदिन्न गिन्हाविज्जा अदिन्नं गिण्हंतेऽवि अन्नेन समणु जाणेज्जा जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि नकारवेमि करंतंऽपि अन्नेन समणु जाणामि तस्सभंते पडिक्कमामि नंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

भावार्थ—तीसरे व्रतमें चौरी करनेका त्याग करनेवाला साधु कहते है हे भगवन् मैं ग्राम नगर वन [जंगल] के अन्दर स्वल्प या वहूत छोटी या वडी अर्थात् दान्त सोधनेके

छोड दे. तब तुमारी सुन्दर प्रवृज्जा हो सक्ती है। देवने अपने ज्ञानसे सामलके अच्छे प्रणाम जान वन्दन नमस्कारकर निज-स्थानकों गमन करता हुवा।

सोमलने पूर्व ग्रहन किये हुवे श्रावकव्रतोंको पुनः स्वीकारकर अपनि श्रद्धाको मजबुत बनाके, पार्श्वप्रभुसे ग्रहन किया हुवा तत्त्वज्ञानमे रमणता करताहुवा विचरने लगा।

सोमल श्रावक बहुतसे चोत्थ छठ अठम अर्धमास मासखमणकी तपश्चर्या करता हुवा. बहुत कालतक श्रावकव्रत पालता हुवा अन्तिम आधा मास (१५ दिन) का अनसन किया परन्तु पहले जो मिथ्यात्वकी क्रिया करीथी उसकी आलोचना न करी, प्रायश्चित नलिया. विराधिक अवस्थामें कालकर महाशुक्र वैमान उत्पात सभाकि देवशय्यामें अंगुलके असंख्यात भागकि अवगाहनामे उत्पन्न हुवा, अन्तरमहुर्तमें पांचों पर्याप्तीको पूर्णकर युवक वय धारण करता हुवा देवभवका अनुभव करनेलगा।

हे गौतम! यह महाशुक्र नामका गृह देवकों जो ऋद्धि ज्योती क्रान्ती मीली है यावत् उपभोगमें आइ है इसका मूल कारण पूर्व भवमे वीतरागकि आज्ञा संयुक्त श्रावकव्रत पालाथा। यद्यपि श्रावककी जघन्य सौधर्म देवलोक, उत्कृष्ट अच्युत देवलोककि गति है परन्तु सोमलने आलोचना न करनेसे ज्योतीषी देवो में उत्पन्न हुवा है। परन्तु यहांसे चवके महाविदेह क्षेत्रमें 'दृढपइन्ना' कि माफीक मोक्ष जावेगा इति तीसराध्ययन समाप्तम्।

(४) अध्ययन चोथा—राजग्रहनगर के गुणशीलोद्यानमें भगवान वीरप्रभुका आगमन हुवा राजा श्रेणकादि पौरजन भगवानको वन्दन करनेको गये।

उस समय च्यार हजार सामानिकदेव सोला हजार आत्म-

(उ०) दीक्षा लेनेवालोंको अगर अन्तरंगसे भवभ्रमणका भय और संसारसे उद्वेग हूवा हो तथा वैरागकी भावना हृदय कमलमें उत्पन्न हूइ हो तो वह अपने माता पिता स्त्री आदिको उपदेशद्वारा शान्तकर आज्ञा ले आवेगा अगर आज्ञा न लावें तो साधुवोंको अपने तीसरा व्रतको तीलाञ्जली दे के परजीवोंका उपकार करना कीसने बतलाया है।

(प्र०) साधुवोंको तो इसमे कुच्छभी लोभ नहीं है परन्तु भव्यात्मावोंका कल्याण करनाभी तो साधुवोंका फरज है।

(उ०) यह बात सच्चे दीलसे कही जाती है या लोगोंमें सच्च बननेको जहांपर सूत्रोंमे अधिकार आता है वहां "जहा सुहँ" क्या आतें है। क्या पूर्व महा ऋषियों इस माफीक दीक्षा न दे सक्ते थे और क्यों एसा कायदा बांधते अगर आपके दीलमें परात्मावोंके तारनेकी बुद्धि हो तो भगवानकी आज्ञा माफीक दीक्षा देके "तिन्नाणं तारयाणं" बनना चाहिये किन्तु अपनी पलटन बढानेकी लोभदशासे वीचारे गृहस्थलोगोंके बेसमझ अज्ञान लडकोंको इदर उदर भगाके शिरमुडन करनेसे तो "डूबाणं डूबियाणं" के सिवाय कुच्छभी फल नहीं होता है। इसका परिणाम क्या आता है जोकी जैनमुनियोंकी छाप जगतपर असर करती थी वह आज इस तस्कर वृतिसे जैनोंकोही यह वृत्ति जम जेसी मालम होती है और जा-

स्कार कर बोली कि हे भगवान ! आप सर्वज्ञ हो मेरी भक्तिको समय समय जानते हों परन्तु गौतमादि छद्मस्थ मुनियोंको हम हमारी भक्तिपूर्वक बत्तीस प्रकारका नाटक बतलावेगी. भगवानने मौन रखीथी।

भगवानने निषेध न करनेसे बहुपुत्तीयादेवी एकान्त जाके वैक्रिय समुद्घातकर जीमणी भूजासे एकसो आठ देवकुमार डावी भुजासे एकसो आठ देवकुमारी और भी बालक रूपवाले अनेक देवदेवी वैक्रिय बनाये तथा ४९ जातिके वाजींत्र और उन्होंके बजानेवाला देवदेवी बनाके गौतमादि मुनियोंके आगे बतीस प्रकारका नाटककर अपना भक्तिभाव दर्शाया, तत्पश्चात् अपनी सर्व ऋद्धिको शरीरमें प्रवेशकर भगवानको वन्दन नमस्कारकर अपने स्थान गमन करती हुइ।

गौतमस्वामिने प्रश्न किया कि हे भगवान ! यह बहुपुत्तीयादेवी इतनि ऋद्धि कहांसे निकाली और कहां प्रवेश करी।

भगवानने उत्तर दिया कि हे गौतम ! यहां वैक्रिय शरीरका महत्व है कि जेसे कुडागशालामे मनुष्य प्रवेश भी करसक्ते है और निकल भी सक्ते है। यह द्रष्टान्त रायपसेनीसूत्रमें सविस्तार कहा गया है।

गौतमस्वामीने औरभी प्रश्न किया कि हे करूणासिन्धु ! इस बहुपुत्तीयादेवीने पुर्व भवमें एसा क्या पुन्य उपार्जन कियाथा कि जिस्के जरिये इतनि ऋद्धि प्राप्त हुइ है।

भगवानने फरमाया कि हे गौतम ! इस जम्बुद्विपके भरतक्षेत्रमे बनारसी नगरीथी, उस नगरीके बाहार आम्रशाल नामका उद्यान था, बनारसी नगरीके अन्दर भद्र नामका एक बडाही धनाढ्य सेठ (सार्थवाह) निवास करता था, उस भद्र सेठके सुभद्रा नाम-

(१) जातिवन्त हो-जिन्होके माताका पक्ष निर्मल हो कारन माताके वंसका एक अंस पुत्रमेंभी होता है ।

(२) कुलवन्त-जिन्होके पिताका पक्ष निर्मल हो अर्थात् जिन्होके कुलमें कुच्छभी कलंक न हो लोकमान्य कुल हो ।

(३) रूपवन्त हो-जिन्होका अंगोपांग शोभनीय हो ।

(४) बलवन्त हो—संयम भार वहन समर्थ हो ।

(५) विनयवन्त हो-संघ शासन गुरवादिका विनय करे कारण मूल प्रकृति विनयकी हो वही विनय करेगा ।

(६) लज्जावन्त हो—लौकीक और लोकोत्तर लज्जावन्त होगा उन्होंसे कबी अकार्य न होगा पुर्ण विचारही करता रहेगा ।

(७) ज्ञानवन्त हो-ज्ञानवन्त होगा तो कबी अस्थिर हूइ आत्माको ज्ञानके जरिये स्थिरीभूत कर सकेगा ।

(८) दर्शनवन्त हो-दृढश्रद्धा होनेसे कीसी प्रकारसे उपसर्गसे धर्मश्रद्धासे चलायमान न होगा ।

(९) यत्नावन्त हो-संयमके अन्दर भलीभांति यत्न करता हो ।

(१०) उदार चित्तवाला हो-उदारचित्त और गंभीरतावन्त होगा तो सब साधुवोंका निभाव करनेमें समर्थ होगा ।

हमलोग तो मोक्षमार्ग साधन करनेके लिये केवली प्ररूपीत धर्म सुनानेका व्यापार करते हैं। सुभद्राने कहा कि खेर! अपना धर्मही सुनाइये।

तब साध्विजीने उस पुत्रपीपासी सुभद्राको खडे खडे धर्म सुनाना प्रारंभ किया हे सुभद्रा! यह संसार असार है एकेक जीव जगतके सब जीवोंके साथ माताका भव, पिताका भव पुत्रका भव पुत्रीका भव इत्यादि अनन्ती अनन्तीवार संबन्ध कीया है अनन्तीवार देवतावोंकी ऋद्धि भोगवी है अनन्तीवार नरक निगोदका दुःख भी सहन किया है. परन्तु वीतरागका धर्म जिस जीवोंने अंगीकार नही कीया है वह जीव भविष्यके लिये ही इस संसारमे परिभ्रमन करता ही रेहगा. वास्ते हे सुभद्रा! तुं इस संसारको अनित्य-असार समज वीतरागके धर्मको स्वीकार करता जीससे तेरा कल्याण हो इत्यादि।

यह शान्ति रसमय देशना सुन सुभद्रा हर्ष-संतोषको प्राप्त हो बोली कि हे आर्य! आपने आज मुझे यह अपूर्व धर्म सुनाके अच्छी कृतार्थ करी है। हे आर्य! इतना तो मुझे विचार हुवा है कि जो प्राणी इस संसारके अन्दर दुःखी है, तृष्णाकि नदीमें झूल रहे है यह सब मोहनियकर्मकाही फल है। हे महाराज! आपका वचनमें श्रद्धा है मुझे प्रतित आइ है मेरे अन्तरआत्मामें रुची हुइ है धन्य है आपके पास दीक्षा लेते है। मैं इस बातमें तो असमर्थ हुं परन्तु आपके पास में श्रावकधर्मको स्वीकार करुंगी।

साध्विजीने कहा कि हे बहन! तुमहो एसा करो परन्तु शुभकार्यमें विलम्ब करना ठीक नहीं है। इसपर सुभद्रा सेठाणीने श्रावकके बारह व्रतको यथा इच्छा मर्यादकर धारण करलिया।

सुभद्राको श्रावकव्रत पालन करते कितनाएक काल निर्ग-

दीक्षा लेनेवालेको बाह्य और अभितर परिग्रहका त्याग करना चाहिये (१) बाह्यपरिग्रह धन धान्य रुपा सुवर्ण द्विपद (मनुष्यादि) चतुष्पद (पशुआदि) क्षेत्र (बागबगेचा खेतखला) वत्थु (हाटहवेली मकानादि) कुंभी धातु सर्व घरमें मणि मोती रत्न लोहा कांसी पितल आदि सर्व वस्तुसे रहीत होना (२) अभितर–हास्य भय शोक दुर्गंच्छा रति अरति क्रोध मान माया लोभ स्त्रिवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद मिथ्यात्व एवं १४ प्रकार इन्ही दोनों परिग्रहको त्याग करना चाहिये। अब जो संयमकी रक्षा निमित्त धर्म उपकरण रखा जाता है वह भी लिखदिया जाता है।

जैन साधु दोय प्रकारके होते है (१) स्थविरकल्पी (२) जिनकल्पी, जिस्में जिनकल्पी महात्मा जंगलमें रहते है वह पाणीपात्र लब्धिवाले होते है एक रजोहरन दुसरी मुख-वस्त्रिका रखते है और बिलकुल नग्न रहते है (२) दुसरे स्थविरकल्पी साधु होते है उन्होंके लिये बृहत्कल्पसूत्र तीजे उद्देशेके १४ वा सूत्रमें लिखा है कि जब दीक्षा लेते है उन्हीकों रजोहरन मुखवस्त्रिका तीन वस्त्र (एक हाथका पना चौवीस हाथका लंबा एक वस्त्र होते है) अगर साध्वी हो तो च्यार वस्त्र इन्ही वस्त्रोंसे चदर चोलपटा झोली मंडला पडला आदि सर्व उपगरण बनजाता है। पात्रा ३ तथा पात्रोंके बांधनेका गुच्छा। (प्र०) तीनही पात्र रखना क्या एसा लेख है ?

कीयोंको रमाडना खेलाना स्नानमज्जन कराना काजलटीकी क-रना इत्यादि घातिकर्ममें अपना दिन निर्गमन करने लगी.

यह बात सुव्रतासाध्विजीकों खबर पडी तब सुभद्राको कहने लगी। हे आर्य! अपने महाव्रतरूप दीक्षा ग्रहनकर श्रमणी नि-ग्रन्थी गुप्त ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेवाली है तो अपनेको यह गृह-स्थकार्य धूर्तीपणा करना नही कल्पते है इसपरभी तुमने यह क्या कार्य करना प्रारंभ कीया है ' क्या तुमने इस कार्योंके लिये-ही दीक्षा लीहै? हे भद्र इस अकृत्यकार्यकि तुम आलोचना करो और आगेके लिये त्याग करो। एसा दोय तीनवार कहा परन्तु सुभद्रासाध्वि इस बातपर कुच्छ भि लक्ष नहीं दीया। इसपर सर्व साध्वियों उस सुभद्राकों वार वार रोक टोक करनेलगी अर्थात् कहने लगीकि हे आर्य! तुमने संसारको असार जानके त्याग कीया है तो फीर यह संसारके कार्यको क्यों स्वीकार करती हो? इत्यादि.

सुभद्रासाध्विने विचार किया कि जबतक मैं दीक्षा नही ली थी तबतक यह सब साध्वियों मेरा आदरसत्कार करती थी अोर आज मैं दीक्षा ग्रहन करनेके बाद मेरी अवहेलना निंदा घृणा कर मुझे वार वार रोक टोक करती है तो मुझे इन्होंके साथही क्यों' रहना चाहिये कल एक दुसरा उपासराकि याचना कर अपने वहांपर निवास करदेना। बस! सुभद्राने एक उपासरा याचके आप वहांपर निवास करदीया। अब तो कीसीका कहना भि न रहा। हटकना वरजना भि न रहा इसीसे स्वछंदे अपनी इच्छा-नुसार बरताव करनेवाली हो के गृहस्थोंके बालबच्चोंको लाना खेलाना रमाना स्नान मज्जन कराना इत्यादि कार्यमें मुर्च्छित बन गइ। साधु आचारसेभी शीथिल हो गइ। इस हालतमें बहुतसे वर्ष तपश्चर्यादिकर अन्तिम आधा मासका अनसन किया परन्तु

लेते कि अबी पांचमा आरा है दीक्षा लेती वखत माता पिता स्त्री आदि समझते थे उन्ही समय तो चोथा आरा होगया था अब एक घर छोडके हजार घरोंकी उपाधी उठाती वखत पांचवा आरा होगया है यह कलीकालकी अद्भुत लीला नहीं तो क्या है आज भी नास्ति नहीं है संयमकी यथाशक्ति खपकरणेवाले भूमंडलपर विचरते है। (प्र०) एसे तो दीक्षा लेनेवाले अल्पही मीलेगा। (उ०) इस्की फीकर आप न करे वीरप्रभुका शासन २१००० वर्ष तक अमोघ चलता रहेगा। सिंह स्वल्पही होते है परन्तु जिस वखतपर धरतीपर गर्जना करते हैं तब बहूतसी गाडरीयोंके झूंडको दिशे दिश भगादेते है पूर्व महात्मऋषियोंने तप संयम और आत्मबलसे हजारों लाखोंकी संख्यामें नये जैन बनाये थे और आज शीतल प्रवृतिवालोंसे नये जैन बनाना तो दूर रहा परन्तु जो जैन है उन्हीकों संभालना या रक्षण करनाही नहीं बनता है और शीतलवृति देखदेखके लोकोंकी श्रद्धा शीतल होजाती है। वास्ते आप उग्र विहारी बनके योग्य पुरुषोंकों दीक्षा दे उन्हीकोभी उग्रविहारी बनावो ताके स्वपर आत्माओंका कल्याण करे। दीक्षा देनेकि विधि गच्छ गच्छकि भिन्न भिन्न है वास्ते यह नहीं लिखी है स्व स्व गच्छ मर्यादासेही दीक्षा देनी चाहिये।

दीक्षा देनेके बाद गुरु महाराज अपने शीष्यको हितकारी शिक्षा देवे अर्थात् ग्रहणशिक्षा-ज्ञानादि सेवन

टट्टी करेगा. कोइ पेशाब करेगा. कोइ श्लेष्म करेगा इस पुत्र पुत्रीयोंके मारे सोमा महा दुःखणि होगी. उसका घर बडाही, दुर्गन्ध वाला होगा. इस बाल बचोंके अवादासे सोमा अपने पति रष्टकुटके साथ मनोइच्छित सुख भोगवनेमें असमर्थ होगी। उस समय सुव्रता नामकि साध्वी एक सिंघाडासे गौचरी आवेगी, उसको भिक्षा देके वह सोमा बोलेगी कि हे आर्य ! आप वहुत शास्त्रका जानकर हो मुझे वडाही दुःख है कि मैं इस पुत्र पुत्रीयोंके मारी मेरे पतिके साथ मनुष्य संबधि भोग भोगव नही सकती हु वास्ते कोइ एसा उपाय बतलावों कि अब मेरे बालक नहो इत्यादि, साध्वि पूर्ववत् केवली प्ररूपित धर्म सुनाया सोमा धर्म सुन दीक्षा लेनेका विचार करेगी साध्विजीसे कहा कि मेरे पतिकी आज्ञा ले मैं दीक्षा लेहुगी। पतिसे पुच्छने पर ना कहेगा कारण माता दीक्षा ले तो बालकोंका पोषण कोन करे।

सोमा साध्विजीके वन्दन करनेकों उपासरे जावेगी धर्मदेशना सुनेगी श्रावकधर्म बारह व्रत ग्रहन करेगी। जीवादि पदार्थका अच्छा ज्ञान करेगी।

साध्वि वहांसे विहार करेगी. सोमा अच्छी जानकार हो जायगी. कितनेक समयके बाद वह सुव्रता साध्विजी फीर आवेगी. सोमा श्राविका वादनकों जावेगी धर्म देशना श्रवणकर अपने पतिकि अनुमति लेके उस साध्विजीके पास दीक्षा धारण करेगी. विनय भक्तिकर इग्यारा आंगका अभ्यास करेगी। वहुतसे चोथ छठ, अष्टम मासखमण अदमासखमणादि तपश्चर्या कर अन्तिम आलोचन कर आदा मासका अनसन कर समाधिमें काल कर सौधर्म देवलोकमें शक्रेन्द्रके सामानिक देव दो सागरोपमकि स्थितिमें देवपणे उत्पन्न होगी। वहांपर देवसबन्धि सुखोंका

मरी है की दीक्षा लेते ही यह गुटीका दी जावे तो सारी ऊमर तक यह असर उन्ही शिष्यके हृदयसे कवी नहीं नीकलती है ।

दीक्षा लेनेवाले शिष्यकोभी चाहियेकी मेरे अनन्त भवोंका पुन्योदय और कर्मोका क्षयोपशम हूवा है की यह चारित्र चुडामणि मेरे हाथमें आया है यह सव गुरुमहाराजकीही कृपाका फल है वास्ते गुरुमहाराजकी विनयभक्ति कर तत्त्वज्ञान प्राप्ती करूं एसी भावना हमेशां रखना चाहिये ।

जैन सिद्धान्त अनेकान्त पक्षवाला है परन्तु जिस समय जिसकी व्याख्या की जाती है उन्हींकी पुष्टीमें हेतुयुक्तिभी वही दी जाती है की पूर्व पदार्थको पुष्टी मीले इसालियेही यह जैनदीक्षा नामका प्रथम अंक लिखा गया है अव दीक्षा लेनेके बाद क्या करना वह दुसरे अंकमे लिखा जावेगा ।

॥ इति प्रथम अंक जैन दीक्षा ॥

(६) इसी माफीक मणिभद्र देवका अध्ययन भी समझना यह भि पुर्वभवमें मणिवति नगरीमें मणिभद्र गाथापतिथा स्थिवरोंके पास दीक्षा लेके सौधर्म कल्पमे देवता हुवाथा वहांसे महाविदेहमें मोक्ष जावेगा इति । ६ ।

(७) एवं दत्तदेव (८) वलनाम देव (९) शिवदेव (१०) अनादीत देव पुर्वभवमें सव गाथा पति थे दीक्षा ले सोधर्म देवलोकमें देव हुवे है. भगवानकों वन्दन करनेको गयेथे, वत्तीस प्रकारके नाटक कर भक्ति करीथी देवभवसे चवके महा विदेह क्षेत्रमें सव मोक्ष जावेगा इति । १० ।

॥ इति श्री पुष्फिया नामका सूत्रका संक्षिप्त सार ॥

देखी ज्ञान उपनो । पाम्यो भवनो पारजी ॥ प्रति० ॥ २ ॥
ठाणायंगके चोथे ठाणे । सत्यनिक्षेपा चारजी ॥ दशमें ठाणे
'ठवणासच्चे'। इम भाख्यो गणधारजी ॥ प्रति० ॥ ३ ॥
अंजनगिरिने दधिमुखा । नंदीश्वर द्विप मुझारजी ॥ बावन
मंदिर प्रतिमा जिनकी । वंदे सुर अणगारजी ॥ प्रति० ॥ ४ ॥
स्थापना चारज चोथे अंगे । द्वादश ठाणामांयजी ॥ सतरमे
समवायंग जंघाचारण । प्रतिमावंदन जायजी ॥ प्रति० ॥ ५ ॥
शतक तीजो उदेशो पहेलो । भगवतीमें सारजी ॥ चमरइंद्र
सरणा लइ जावे ॥ अरिहंत बिंब अणगारजी ॥ प्रति० ॥ ६ ॥
शाश्वति अशाश्वति प्रतिमा वंदे । दुगचारण मुनिरायजी ॥
शतक वीश उदेशे नवमे। वहुवचन कह्यो जिनरायजी ॥ प्रति०
॥ ७ ॥ सती द्रौपदी प्रतिमा पूजी । ज्ञातासूत्र मुझारजी ॥
आणंद श्रावक अंगसातमे । सुणो तेहनो अधिकारजी ॥ प्रति०
॥ ८ ॥ अन्यतीर्थी ने उणोरी प्रतिमा । नही वंदुं यावज्जीवजी ॥
स्वतीर्थीरी प्रतिमा वंदी ज्यारी । निर्मल समकित नीवजी ॥
॥ ९ ॥ अंतगढने अणुतरोवाइ । प्रथम उपांगरी साखेजी ।
अरिहंत चैत्ये नगरियां शोभे श्रीजिनमुखसे भाखेजी ॥ प्रति०
॥ १० ॥ प्रश्नव्याकरण पहले संवर । पूजा अहिंसा नामजी ॥
प्रतिमा व्यावच्च तीजे संवर । करे मुनि गुणधामजी ॥ प्रति०
॥ ११ ॥ विपाकमें सुबाहु प्रमुखा । आणंद सरीखा जोयजी ॥
उववाइ अरिहंत चेइयाणि । अंबड प्रतिमा वंदी सोयजी ॥

था जिस्का कटिका भाग नम गया था जंघा पतली पड गई थी. स्तनका अदर्श आकार अर्थात् बीलकुलही दीखाई नही देता था इत्यादि, जिस्कों कोइभी पुरुष परणनेकि इच्छाभी नही करता था.

उसी समय, निलवर्ण. नौ-कर (हाथ) परिमाण शरीर, देवादिसे पुजित तेवीसवां तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु सोल हजार मुनि अडतीस हजार साध्वियोंके परिवारसे पृथ्वी मंडलकों पवित्र करते हुवे राजग्रहोद्यानमें पधारे । राजादि सर्व लोक भगवानकों वन्दन करनेको गये ।

यह बात भूतानेभी सुनी अपने माता पिताकि आज्ञा ले स्नान मज्जनकर च्यार अश्वका रथ तैयार करवाके बहुतसे दास दासीयों नोकर चाकरोंके परिवारसे राजग्रह नगरके मध्यभागसे निकलके बगेचेमें आइ भगवानके अतिशय देखके रथसे निचे उत्तर पांचाभिगमसे भगवांनकों वन्दन नमस्कार कर सेवा करने लगी.

उस विस्तारवाली परिषदाकों भगवानने विचित्र प्रकारसे धर्मदेशना सुनाइ अन्तिम भगवानने फरमायाकि हे भव्यजीवों! संसारके अन्दर जीव-सुख-दुःख राजारंक रोगी निरोगी, स्वरूप-कुरूपवान, धनाढ्य दालीद्र उच गौत्र निच गौत्र इत्यादि प्राप्त करते है वह सब पुर्व उपार्जन किये हुवे सुभासुभ कर्मोकाही फल है। वास्ते पेस्तर कर्मस्वरूपको ठीक ठीक समझके नवा कर्म आनेकें आश्रव द्वार है उसकों रोकों ओर तपश्चर्या कर पुराणं कर्मोकों क्षय करो तांके पुन इस संसारमें आनाही न पडे इत्यादि ।

देशना श्रवण कर परिषदा आनन्दीत हो यथाशक्ति व्रत प्रत्याख्यान कर वन्दन नमस्कार स्तुति करते हुवे स्व स्व स्थान गमन करने लगे ।

प्रति० ॥ २२ ॥ निशीथकल्पदशाश्रुतखंधे । नगरियांको अधिकारजी ॥ चंपानीपरे मंदिर शोभे । वीतराग वचन ल्यो धारजी ॥ प्रति० ॥ २३ ॥ आवश्यक 'महिया' शब्द विचारो । भरत श्रेणिक भराव्या बिंबजी ॥ वग्गुर श्रावक पुरिमतालको । केई चैत्य कराव्या थूभजी ॥ प्रति० ॥ २४ ॥ वादीकहे आ तो पंचांगी । मैंतोमानां मूलजी ॥ वज्रभाषा बोले एसी । नहि समकितको सूलजी ॥ प्रति० ॥ २५ ॥ पंचांगी तो कही मानणी । सुण सूत्रकी साखजी ॥ समवायांग द्वादशांग हुंडी । जिनवर गणधर भापजी ॥ प्रति० ॥ २६ ॥ शतक पचवीश उदेशो तीजो । भगवती अंग पिछाणजी ॥ सूत्र अर्थ निर्युक्ति मानो । या जिनवरकी आणजी ॥ प्रति० ॥ २७ ॥ अनुयोग-द्वारसूत्रमे देखो । निर्युक्तिकि वातजी ॥ नंदीमे निर्युक्ति मानी । छोडो हठ मिथ्यात्वजी ॥ प्रति० ॥ २८ ॥ वादीकहे वह तो निर्युक्ति । गइ कालमे वीतजी ॥ नवी रची आचारिज ज्यारी । किम आवे प्रतितजी ॥ प्रति० ॥ २९ ॥ सूत्र रह्या निर्युक्ति वीती । किसी ज्ञानसे जाणीजी ॥ आचरज रचीया नहीं मानो । सुणजो आगे वाणीजी ॥ प्रति० ॥ ३० ॥ तीन छेद भद्रबाहु रचिया । पन्नवणा श्यामा चारजी ॥ दशवैकालिक सिजंभव कृत । निशिथ विशाखा गणधारजी ॥ प्रति० ॥ ३१ ॥ देव-र्द्धिगणीजी नंदी बनाइ । घणा सूत्रका नामजी ॥ ज्युं वृतिका कर्ता जाणो । भद्रबाहु स्वामीजी ॥ प्रति० ॥ ३२ ॥ प्रकरणमांसुं

हान् दुःख है जैसे किसी गाथापतिके गृह जलता हो-उसके अन्द-रसे असार वस्तु छोडके सार वस्तु निकाल लेते हैं वह सार-वस्तु गृहस्थोंकों सुखमे सहायता भूत हो जाती है एसे मैं भी अ-सार संसार पदार्थोंकों छोड संयम सार ग्रहन करती हु इत्यादि वीनती करी।

भगवानने उस भूताको च्यार महाव्रतरूप दीक्षा देके पुष्फ-चूला नामकि साध्विजीकों सुप्रत करदि।

भूतासाध्वि दीक्षा लेनेके बाद फासुक पाणी लाके कबी हाथ धोवे, कबी पग धोवे, कबी खांख धोवे, कबी स्तन धोवे, कबी मुख नाक आंखे शिर आदि धोना तथा जहांपर बेठे उठे वहांपर प्रथम पाणीके छडकाव करना इत्यादि शरीरकि सुश्रुषा करना प्रारंभ कर दीया।

पुष्फचूलासाध्विजी भूतासाध्विसे कहाकि हे आर्यं! अपने श्रमणी निग्रन्थी है अपनेकों शरीरकि सुश्रुपा करना नही कलपता है तथापि तुमने यह क्या ढंग मंड रखा है कि कबी हाथ धोती है कबी पग धोती है यावत् शिर धोती है हे साध्वी! इस अकृत्य कार्य कि आलोचन करो ओर आइंदासे एसे कार्यका परित्याग करो एसा गुरुणीजीके कथन कों आदर न करती हुइ भूताने अपना अकृत्य कार्यको चालु ही रखा। इसपर बहुतसी साध्वियों उस भूताको रोकटोक करने लगी हे साध्वि! तुं बडेही आडम्ब-रसे दीक्षा ग्रहन करीथी तों अब इस तुच्छ सुखोंके लिये भगवान आज्ञाकि विराधि हो अपने मीला हुवा चारित्र चुडामणिकों क्यो खो रही है?

गुरुणिजी तथा अन्य साध्वियोंकि हितशिक्षाकों नही मा-नती सोमाकि माफीक दुसरा उपासराके अन्दर निवासकर स्व-

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला पुष्प नं. १२.

अथ श्री

लिंगनिर्णयबहुत्तरी.

दोहा—

आदिनाथ आदि करी, चौवीसमा महावीर ।
ऋषभश्रेण गणधरथकी, गौतमवीर वजीर ॥ १ ॥
ब्राह्मी सुन्दरी साधवी, चन्दनवाला गुणखाण ।
शुद्धलिंग जिनराजसे, पामीपद निर्वाण ॥ २ ॥
श्रेयंससे श्रावक हुवा, आनन्दादिक जाण ।
सुव्रतासे हुइ श्राविका, सुलसातक पहेचाण ॥ ३ ॥
शुद्ध साधु श्रावकतणो, लिंग कह्यो जिनराय ।
सुरनरने सुन्दर लगे, निरखत नयन ठराय ॥ ४ ॥
हुंडा सर्पिणी योगसे, जैनमें मच्यो फेल ।
लुंके उत्थापि प्रतिमा, लवजी वदल्यो चेन्ह ॥ ५ ॥
भस्मीग्रह उतर्या पछी, संघराशी धूमकेत ।
तेपण हीव उतरी गयो, संघहुवो सावचेत ॥ ६ ॥
हठ कदाग्रही जीवडा, पकडी न छोडे वात ।
जहने शिवसुख चाहिए, तो तजीये पक्षपात ॥ ७ ॥
शुद्धलिंगसे मुनिवरा, कुलिंगसे कुसाध (साधु)
आगममे निर्णय करूं, सुणजो तजी प्रमाद ॥ ८ ॥

॥ अथश्री ॥

विन्हिदसा सूत्र संक्षिप्तसार।

(बारहा अध्ययन.)

(१) प्रथम अध्ययन—चतुर्थ आराके अन्तिम परमेश्वर नेमिनाथप्रभु इस भूमंडलपर विहार करतेथे उस समयकि बात है कि, द्वारकानगरी, रेवन्तगिरि पर्वत, नन्दनवनोद्यान सुरप्पिय यक्षका यक्षायतन. श्रीकृष्णराजा सपरिवार इस सवका वर्णन गौतम कुंमराध्ययनसे देखों।

उस द्वारकानगरीमें महान प्राक्रमी बलदेव नामका राजाथा उस बलदेवराजाके रेवन्ती नामकि राणी महिलागुण संयुक्त थी।

एक समय रेवन्ती राणी अपनि सुखशय्याके अन्दर सिंहका स्वप्न देखा यावत कुमरका जन्म मोहत्सव कर निषेढ नाम रखाथां ७२ कला प्रविण होनेसे ५० राजकन्यावोंके साथ पाणि ग्रहन करा दायचों यावत आनन्द पुर्वक संसारके सुख भोगव रहाथा जेसे गौतमाध्ययने विस्तारपुर्व लिखा है वास्ते वहांसे देखना चाहिये।

यादवकुल श्रृंगार देवादिके पूजनिय बावीसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवानका पधारना द्वारकानगरीके नन्दनवनमे हुवा।

श्रीकृष्ण आदि सब लोक सपरिवार भगवानको वन्दन करनेको गया उस समय निषेढकुंमर भी गौतमकि माफीक वन्दन करनेकों गये। भगवानने उस विशाल परिषदाकों विचित्र

शु० ॥ ८ ॥ अक्षर शुद्ध जाणे नहीं, आगम केम वंचाय ला० पायचन्द्रसूरितणो, सरणो लीधो जाय ॥ला० ॥ शु० ॥ ६ ॥ उक्तसूरि इम बोलीया, जो जावों जिन प्रासाद ला० जिनप्रतिमा मानों जिनतुल्य, एवी पालो मर्याद ॥ला० ॥शु०॥१०॥ तो तुमने टीका थकी, टबो देउं बनाय ला० मंजुर करी सब वातकी, सूरि टबो रह्या बनाय ॥ ला० ॥ शु० ॥ ११ ॥ टबो हुवो जाणी करी, लुंपको लोपीकार ला० हिंस्या हिंस्या करता फीरे, केइ मूढ हुवा त्हेनी लार ॥ ला० ॥ शु० ॥ १२ ॥ संवत् सत्तरासें आठमें, लुंपक बजरंग साध ला० तेहनो शिष्य क्रोधसे, लवजी कीयो उन्माद ॥ ला० ॥ शु० ॥ १३ ॥ मुंहडे बांधी मुहपत्ती, दंडो धरीयो दुर ला० लटकती झोली हाथमें, गुरु निन्दक भंडसूर ॥ ला० । शु० ॥ १४ ॥ गुरु बहुत समजावीयो, तांही न मान्यो मूढ ला० दीसे वेष डरावणो, नाम धर्यों लोको ढुंढ (ढुंढीया) ॥ ला० ॥ शु० ॥ १५ ॥ धर्मदास ढुंढक हुवो, अज्ञानमें सीरदार ला० पायचन्द्र टबा थकी, विप्रीत नीकल्यो सार ॥ ला० ॥ शु० ॥ १६ ॥ जहां जिनमन्दिर प्रतिमा, अर्थ दिया उलटाय ला० अनन्त संसार पोते किया, बहुतने दिया डुबाय ॥ ला० ॥ शु० ॥ १७ ॥ टीकासे टबो हुवो, दोनोंमें प्रतिमा जान ला० ज्ञान साधु वगेचो किये, तो ढुंढकने मानसी कोन ॥ ला० ॥ शु० ॥ १८ ॥

त्रमें धन धान्यसे समृद्ध पना राइसडा नामका नगर था, जि-
सके बाहार मेघवनोद्यान, मणिदत्त नामके यक्षका सुन्दर यक्षा-
यतन था।

उस नगरमे बडाही प्राक्रमी न्यायशील प्रजापालक महा-
बल नामका राजा राज करता था। जिस राजाके महिला गुण सं-
युक्त सुशीला पद्मावंती नामकि रांणी थी। उस राणीके सिंह स्वप्न
सूचित कुंमरका जन्म हुवा अनेक महोत्सव कर कुंमरका नाम
'वीरंगत्त' दीया था सुख पुर्वक चम्पकलताकि माफीक वृद्धिकों
प्राप्त होता बहोत्तर कलामे निपुण हो गया।

जब वीरंगत्त कुंमरकि युवक अवस्था हुइ देखके राजाने ब-
त्तीस राज कन्यावोंके साथ पाणिग्रहन करा दिया. इतनाही दत्त
आया, कुमर निराबाधित सुख भोगव रहाथा कि जिस्कों काल
जानेकि खबरही नही थी।

इसी समय केसी श्रमणके माफीक बहु श्रुति बहुत शिष्योंके
परिवारसे प्रवृत सिद्धार्थ नामका आचार्य महाराज उस रोंहीसडे
नगरके उद्यानमें पधारे. राजादि नगरलोक और वीरंगत कुंमर
आचार्य महाराजकों वन्दन करनेकों गये। आचार्यश्रीने विस्तार
पुर्वक धर्मदेशना प्रदान करी। परिषदा यथाशक्ति त्याग वैराग
धारण कर विसर्जन हुइ।

वीरंगत राजकुंमार, देशना सुन परम वैराग रंगमें रंगाहुवा
माता-पिताकि आज्ञा पुर्वक बडेही मोहत्सवके साथ आचार्यश्रीके
पास दीक्षा ग्रहन करी इर्यासमिति यावत् गुप्त ब्रह्मचर्य व्रत पा-
लन करने लगा विशेष विनय भक्ति कर स्थिवरोंसे इग्यारा अ
गका ज्ञानाभ्यास कीया। विचित्र प्रकार तपश्चर्या कर अन्तमे
आलोचना पुर्वक ४५ वर्ष दीक्षा पालके दोय मासका अनसन कर

लोपी ढुंढकनी आण ॥ ला० ॥ शु० ॥ २८ ॥ कुडापन्थी करडा घणा, जिन प्रतिमासे द्वेष ला० पंचांगी उत्थापता, जाणे न आगम रहस्य ॥ ला० ॥ शु० ॥ २९ ॥ मतवाला इम बोलीया, थारे चौरासी गच्छ ला० तेहने उत्तर दिजिये, सब जिनका चाल्या गच्छ ॥ ला० ॥ शु० ॥ ३० ॥ चोथे अंगे चाल्या, आदि जिनका चौरासी गच्छ[1] ला० यावत कह्या श्रीवीरना, इग्यारे गणधर नवगच्छ ॥ ला० ॥ शु० ॥ ३१ ॥ पंचांगी प्रतिमा विषे, श्रद्धा सहुनी एक ला० लिंग पण सहुनो सारखो, समझो आणी विवेक ॥ ला० ॥ शु० ॥ ३२ ॥ सामान्य विशेष क्रिया, देखीने भमके मूढ ला० पण जिनाज्ञा सहु वहे, दुरे राखीछे ढुंढ ॥ ला० ॥ शु० ॥ ३३ ॥ देशीकी जड काटवा, प्रदेशी[2] लीयो अवतार ला० आप थाणी अभिमानीया, आडंबर पूजावणहार ॥ ला० ॥ शु० ॥ ३४ ॥ स्थानकमें उतरो नहीं, उष्णोदकमें बतावे पाप ला० मूल्य भाडे गृहस्ती घर रहे, गुप्त पाणी पीवे सेवे पाप ॥ ला० ॥ शु० ॥ ३५ ॥ लम्बो रजोहरण राखतों, प्रायश्चित निशिथमें होय ला० गाति गांठ चदरतणी, यमपावण आयो जांखे कोय ॥ ला० ॥ शु० ॥ ३६ ॥

---

१ "उसभस्सं आह कोसलस्स उसभसेण पमुक्खाण चउरासी गण चउरासी गणहारा होत्था × × ×" समणे "भगवं महवारिस्स नवगण एक्कारस्स गणहरा होत्था" समवायांग सूत्र वचनात्।

२ ढुंढीयोंमें फिरका दो है. (१) देशी साधु. (२) परदेशी साधु।

नने देशना दी. निषेढकुंमर देशना सुनि. मातापिता कि आज्ञा प्राप्त कर बडे ही आडंम्बरके साथ मातापिताने थावचा पुत्र कुंमर कि माफीक मोहत्सव कर भगवानके समिप दीक्षा दीगइ। निषेढमुनि सामायिकादि इग्यारा अंगका ज्ञानाभ्यास कर पुर्ण नौ वर्ष दीक्षा पाल्ल अन्तिम आलोचना पुर्वक इकवीस दिनका अनसनकर समाधि सहीत कालकर सर्वार्थसिद्ध नामका महावैमान तैतीस सागरोपमकि स्थितिमें देवपणे उत्पन्न हुवा।

वहां देवतावोंसे आयुष्य पुर्णकर महाविदेहक्षेत्रमें उत्तम जातिकुल विशुद्ध वंसमे कुमरपणे उत्पन्न होगा भोगोंसे अरुची होगा केवली प्ररुपित धर्म स्वीकारकर, दीक्षा ग्रहनकर वीर तपश्चर्या करेगा जिस कार्यके लिये वह दीक्षाके परिसह सहन करेगा उस कार्यकों साधन करलेगा अर्थात् केवलज्ञान प्राप्तकर अन्तिम श्वासोश्वास ओर इस 'संसारका त्यागकर मोक्ष पधार' जावेगा इति प्रथम अध्ययनं समाप्तं।

इसी माफीक (२) अनिवढकुंमर (३) वहकुंमर (४) अगतिकुंमर (५) युक्तिकुंमर (६) दशरथकुंमर (७) दढरथकुंमर (८) महाधणुकुंमर (९) समधणुकुंमर (१०) दशधणुकुमर (११) नामकुमर (१२) शतधणुकुंमर।

यह बारहकुंमर बलदेवराजाकि रेवन्तीराणीके पुत्र है पचास पचास अन्तेवर त्याग श्री नेमिनाथ प्रभु पासे दीक्षा ले अन्तिम सर्वार्थसिद्ध वैमान गये थे वहांसे चवके महाविदेह क्षेत्रमें निषेढकी माफीक सब मोक्ष जावेगा।

इति श्री विन्हिदसासूत्रका संक्षिप्त सार समाप्तम्.

फिर रह्या फेल मचाय ॥ ढुं० ॥ ३ ॥ निंदक कुमरनी ढुंढणी-योंजी, इन्ही ज पेटामें जाण, कांइक अधिकाइ कपटनीजी, तीजो आदि पेच्छाण ॥ ढुं० ॥४॥ मुंढणी अक्षर जाने नहींजी क्लेश करण हुसीयार, काम पडे उत्तर तणोजी, रात्रीमें करे जो विहार ॥ ढुं० ॥५॥ लिखतोंही लाजां मरुंजी, कैसा कर रही काम, चरित्रका चीणा कर्याजी, क्रियाकि न वटे छ दाम ॥ ढुं० ॥ ६ ॥ पारवती हूइ ढुंढणीजी, समजाइ आतमाराम, इण समय गइ करुंजी, आगे म कर एसा काम ॥ ढुं० ॥ ७ ॥ सब ढुंढक नहीं खीजसोजी, कीधाका फल जोय, वात सुणो कुंलिगनीजी, एकाग्रचित्त होय ॥ ढुं० ॥ ८ ॥ मोटी चर्चा मुपत्तीजी, लेवे शक्र इन्द्र नाम, सूरियाभनी पूजातणोजी, गीणे देवनो काम ॥ ढुं० ॥ ९ ॥ भगवती शतक सोलमोंजी, मूलकों दुजो उदेश, शक्र इन्द्र भाषा विषेजी, मुख वान्धण नही लेश ॥ ढुं० ॥ १० ॥ हस्त वस्त्र मुख आगलेजी, राखीने बोले जोय । निर्वद्यभाषा जिन

१ मूर्तिसिद्धिमें प्रतिमा सिद्धि गयवरविलासादि बनचूकी है। ढुंढक सूरियाभदेवकी पूजाकों तो देवतोंकी करणी है एसा कहके उडादेते है और मुखवस्त्रिकाके समय शक्रेन्द्रका पाठको अगाडी मोरचें लाते है। तो जेसा शक्रेन्द्रका पाठ है वेसाही सूरियाभका पाठ है दोनोंकोही मानना चाहिये।

यत " तुब्भेणं भंते मुहपत्तीयए मुहबंधही तएण भगवं गोयममियादेवीए एवं वुत्ता समाणे मुहपत्तीयए मुहबंधेइ २ " विपाकसूत्र अ० १ वचनात

इति श्री

शीघ्रबोध भाग १७ वां १८ वां

॥ समाप्तम् ॥

कहेजी, अठ स्पर्श होजाय, हिंस्या हुवे वायुतणीजी जे-हथी मुख बन्धाय ॥ ढुं० ॥ २३ ॥ कीसासूत्रमें एह कहीजी, के मुखसे किनी थाप, न्युनाधिक प्ररूपतोंजी, आज्ञा भंग वज्र पाप ॥ ढुं० ॥ २४ ॥ थारें कहनेसे अठ स्पर्शी हुवेजी, तो मुख बान्ध्यो शुं थाय, पुद्गल तो रहे नहींजी, लोकान्त शुद्धि जाय ॥ ढुं० ॥ २५ ॥ मुखपत्ती सूत्रें कहीजी, हाथपत्ती न कहेवाय, थें आहार लोच निंद्रा करोजी, तो खीली केम मेलाय ॥ ढुं० ॥२६॥ धरती राख्यो धरतीपत्तीजी, पाटेपाटापत्ती होय, रही नही वहमुखपत्तीजी, हेतुगणा जगजोय ॥ ढुं० ॥ २७ ॥ रजोहरण सूत्र कहेजी, तो रजहरो दीनरात, के कामपडयो लो काममेंजी, तो मेलो मुपत्तीसाथ ॥ ढु० ॥ २८ ॥ दशवैकालिक सूत्रमेंजी, पांचमे अध्ययन पहेलो उदेश, गाथा त्यासी (८३) तीजेपदमेंजी, "हत्थगं" बोले समझो रहस्य ॥ ढुं० ॥ २९ ॥ थांरे मारे वाद छेजी, तीजो मत देवे साख, तो हठ कीण वातकोजी, परभवको डर राख ॥ ढुं० ॥ ३० ॥ वेदव्यासजी इम कहेजी, शिवपुराण अध्याय एकवीस,[1] जैनवस्त्र राखे हाथ-

---

[1] देखिये ढुढकजी ! वेदव्यासजी शिवपुराण अ० २१ में जैन मुनियोंके लिये क्या कहते है यथा—

मुंढ मलीन वस्त्रं च, कुंडीपात्रं समाचितम् ।
दधान पुञ्जीकां हस्ते, चालयन्ते पदे पदे ॥ १ ॥
वस्त्रयुक्त तयाहस्त, क्षिप्यमाणं मुखे सदा ।
धर्मेति व्यवहारान्तं, त नमस्कृत्य स्थितं हरेः ॥२॥

होके विहार करना, भिक्षाटन करना और व्याख्यान देना नहीं कल्पता.

आचाराग, लघुनिशिथ सूत्रमे अनभिज्ञ साधु यदि पूर्वोक्त कार्य करे तो उसे चतुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. और गच्छनायक आचार्यादि उक्त अज्ञात साधुवोको पूर्वोक्त कार्योंके विषय आज्ञा भी न दे. और यदि दे तो उन आज्ञा देनेवालोकोभी चतुर्मासिक प्रायश्चित होता है. इसलिये सर्व साधु साध्वियोको चाहिये कि वे योग्यता पूर्वक गुरुगमतामे इन छे छेदोका अवश्य पटन पाठन करें, विना इनके अध्ययन किये साधु मार्गका यथावत् पालन भी नहीं कर सक्ते. कारण जबतक जिस वस्तुका यथावत् ज्ञान न हो उसका पालन भी ठीक ठीक कैसे हो सक्ता है?

अगर कोइ शीथिलाचारी खुद स्वछन्दताको सिकार कर अपने साधु साध्वियोंको आचारके अन्धकारमें रख अपनी मन मानी प्रवृत्ति करना चाहे, उसको यह कहना आसान होगा कि साधु साध्वियोको छेदसूत्र न पढाने चाहिये. उनसे यह पूछा जाय कि छेदसूत्र है किस लिये? अगर ऐसाही होता तो चौरासी आगमोंमेंसे पैंतालीश आगमका पठन पाठन न रखकर उन चालीसका ही रख देते तो क्या हरज थी?

अब सवाल यह रहा कि छेद सूत्रोंमें कइ वातें ऐसी अपवाद है कि वह अल्पज्ञोको नही पढाइ जाती (समाधान) मूल सूत्रोमे तो ऐसी कोइभी अपवादकी वात नहीं है कि जो साधुवोको न पढाई

अथश्री

ककाबत्तीसी।

दोहा.

सद्गुरु चरण सरोजरज, मुझ शिर वसो हमेश।
कवि नहीं कविता करूं, ककाबत्तीसी लेश ॥ १ ॥
अक्षर अक्षर अनन्त भव, अरट घटिका माल।
सुमति सखी हित कारणे, दे उपदेश रसाल ॥ २ ॥
कका-कटक कर्मोंतणी, चढआइ तुझ लार।
अप्रमत्त गजारूढ हो, मतकर देर लिगार ॥ ३ ॥
खखा-खडग क्षमातणा, ज्ञानघोडे असवार।
कर्मकटकको जीततां, लागे कितनी वार ॥ ४ ॥
गगा-गारव तीन है, मोहतणा सीरदार।
तत्त्व तीन त्रीशुल ले, मर्द्दव दंड सुविचार ॥ ५ ॥
घघा-घौर कर देखिये, अपना घर है दूर।
जागो मोहनिद्रा थकी, अब उगा है सूर ॥ ६ ॥
चचा-च्यार कषाय है, उत्तर भेद पचवीस।
धन हरे दीर्घ कालसे, कब तुं इन्हसें बचीस ॥ ७ ॥

सूत्रोंमें ऐसा भी पाठ दिखाई देता है कि भगवान् वीरप्रभुने बहुतसे साधु, साध्वि, श्रावक, श्राविका, देव और देवांगनाओंकी परिषदामें इन सूत्रोंका व्याख्यान किया है अगर ऐसा है तो फिर दूसरे पढेंगे यह भ्रांति ही क्यो होनी चाहिये?

छेदसूत्रोंमें जैसे विशेषतासे साधुवोंके आचारका प्रतिपादन है, वैसे सामान्यतासे श्रावकोंके आचारका भी व्याख्यान है. श्रावकोंके सम्यक्त्व प्रतिपादनका अधिकार जैसा छेदसूत्रोंमें है, वैसा सायद ही दूसरे सूत्रोंमे होगा और श्रावकोकी ग्यारह प्रतिमाका सविस्तार तथा गुरुकी तेतीस आशातना टालना और किसी आचार्यको पदवीका देना वह योग्य न होनेपर पद्विका छोडाना तथा आलोचना करवाना इत्यादि आचार छेदसूत्रोंमें है. इसलिये श्रावकभी सुननेके अधिकारी हो सक्ते है.

अब तीसरा सवाल यह रहा की श्रावकलोक मूल सूत्र वाचनेके अधिकारी है या नही? इस विषयमें हम इतना ही कहेंगे कि हम इन छेदसूत्रोंकी केवल भाषाही लिखना चाहते है. और भाषाका अधिकारी हरएक मनुष्य हो सक्ता है.

प्रसंगत इन छेदसूत्रोंका कितनाक विभाग भिन्न २ पुस्तकोद्वारा प्रकाशित हो चुका है. जैसे सेनप्रश्न, हीरप्रश्न, प्रश्नोत्तरमाला, प्रश्नोत्तरचिन्तामणी, विशेषशतक, गणधरसार्द्धशतक और प्रश्नोत्तरसार्द्धशतकादि ग्रन्थोंमें आवश्यकता होनेपर इन छेदसूत्रोंके कतिपय मूलपाठोको उध्धृत कर उनका शब्दार्थ और विस्तारार्थमें उल्लेख किया है.

तेवीस योद्धा धनहरे, दोसो बावन मचावे शोर ॥ १८ ॥
धधा-धर्मदोय भेद है, सूत्र ओर चरित्र ।
शुद्ध श्रद्धासे कीजीये, नरभव जन्म पवित्र ॥ १९ ॥
नना-नाटक कर्म संग, नाच्यो काल अनन्त ।
निजघर आवो वाहला, सुमति कहे सुनों कन्थ ॥ २० ॥
पपा-पैसा पापसे, जोड्या लाख करोड ।
अणचेत्यों आसे रिपु, लेसे घांटो तोड ॥ २१ ॥
फफा-फूल सम देह है, चीण चीणमें चय थाय ।
पुन्य पूंजी ले आवियो, खाली खजांने जाय ॥ २२ ॥
बबा-बखत अमूल्य है, गइ न आवे कोय ।
वहां पें मूल्य करावीये, जहां कसोटी होय ॥ २३ ॥
भभा-भेद जाणों मति, आतम सिद्ध स्वरूप ।
भेद मीट्यो भर्म टल्यो, तब चैतन्य चिदरूप ॥ २४ ॥
ममा-मर्म जाण्यो पछे, कर्म न बान्धे कोय ।
पूर्व कर्म प्रजालके, सिद्ध समाना होय ॥ २५ ॥
यया-यम नियम धरे, आसन समाधि ध्यान ।
नही जाणी निज आतमा, यह सबलो अज्ञान ॥ २६ ॥
ववा-वाणी जिनतणी, करो सुधारस पान ।
मीटे पीपासा भवतणी, प्रगट्यो परम निधान ॥ २७ ॥
ररा-रात वीती गइ, उग्यो अब दीनकार ।
भानु प्रगट्यो निजघरे, दूर भयो अन्धकार ॥ २८ ॥

इन शीघ्रबोधके भागोको क्रमशः आद्योपान्त पढीये. इसके पढनेसे आपको ज्ञात हो जायगा कि सूत्रोंमें ऐसा कौनसा विषय है कि जो जनसमाजके पढने योग्य नहीं है? अर्थात् वीतरागकी वाणी भव्यजीवोंका उद्धार करनेके लिये एक असाधारण कारण है, इसके आराधन करनेसे भव्यजीवोंको अक्षय सुखकी प्राप्ति हुई है—होती है—और होगी

अन्तमें पाठकोंसे मेरा यह निवेदन है कि छद्मस्थोसे भूल होनेका स्वाभाविक नियम है. जिसपर मेरे सरीखे अल्पज्ञसे भूल हो इसमें आश्चर्य ही क्या है? परन्तु सज्जन जन मेरी भूलकी अगर सूचना देगे तो मैं उनका उपकार मान कर उसे स्वीकार करुगा और द्वितीयावृत्तिमें सुधारा वधारा कर दिया जावेगा इत्यलम्—

लेखक.

अथश्री

ककाबत्तीसीका संक्षिप्तार्थ ।

दोहा.

सद्गुरु चरण सरोजरज्ज, मुझ शिर बसो हंमेश ।
कवि नहीं कविता करूं, ककाबत्तीसी लेश ॥ १ ॥

अर्थ—सन्मार्गके बतलानेवाले सद्गुरुमहाराजके चरण-कमलोंकी रजरूपी जो कृपा हमारे मस्तक उपर हमेशां बनी रहे यह प्रार्थना सदैव करता हूं। कारण जो वस्तुकी प्राप्ती होती है वह सब गुरुकृपासे ही होती है क्योंकि एक पाषाणका खंड होता है वह भी गुरुमहाराजके निर्देश किये हूवे विधिविधानसे उच्चासनको प्राप्तकर दुनियांके उद्धारके लिये बडा भारी साधन होजाता है अर्थात् यह सब रस्ते बतलानेवाले गुरुमहाराज ही है वास्ते मैं गुरुमहाराजको वन्दन नमस्कार कर सदैवके लिये कृपाकी ही याचना करता हूं।

यद्यपि मैं कवि नहीं हूं तथापि गुरुकृपासे बालक्रीडावत् ककाबत्तीसीकी कविता करनेमें साहस किया है यह भी गुरुकृपाका ही फल है। हे भव्य जीवो! ज्यादा विस्तारसे नहीं कहता हूवा साधारण मनुष्योंके भी सुखपूर्वक समझमें आ सके वास्ते लेशमात्र ही कहूगा। वास्ते चित्त स्थिरकर पढिये।

नाम प्रचलित है। यहां पर तालवृक्षके फलकी आकृति लंबी और गोल समझनी चाहिये। प्रचलित भाषामें जैसी केलेकी आकृति होती है। साधु साध्वीयोंको ऐसा कच्चा फल लेना नहि कल्पै।

(२) कल्पै–साधु साध्वीयोंको कच्चा तालवृक्षका फल, जो उस फलकों छेदन भेदन करके निर्जीव कर दीया है, अर्थात् वह अचित्त हो गया हो तो लेना कल्पै।

(३) कल्पै—साधुवोंको पका तालवृक्षका फल; चाहे वह छेदन भेदन कीया हुवा हो, चाहे छेदन भेदन न भी कीया हो, कारण–वह पका हुवा फल अचित्त होता है।

(४) नहि कल्पै—साध्वीयोंको पका तालवृक्षका फल, जो उसकों छेदन भेदन नहि कीया हो, कारण–उस पूर्ण फलकी आकृति लंबी और गोल होती है।

(५) कल्पै—साध्वीयोंको पका तालवृक्षका फल, जीसको छेदन भेदन कीया हो, वह भी विधिसंयुक्त छेदन भेदन कीया हुवा हो, अर्थात् उस फल ऊभा नही चीरता हुवा, बीचमेंसे टुकडे किये गये हो, ऐसा फल लेना कल्पै।

(६) कल्पै—साधुवोंको निम्न लिखित १६ स्थानों, शहरपना (कोट) संयुक्त और शहरके बहार बस्ती न हो, अर्थात् उस शहरका विभाग अलग नहीं हुवे ऐसा ग्रामादिमें साधुवोंको शीतोष्णकालमें एक मास रहना कल्पै।

कार कर पालन करने लगी। इसीसे यह हुवा कि कुमति सखीने अपना पति चैतन्य राजाके निज आवासमें छावणी डालके निवास करदिया कि विचारी सुमति सखीको चैतन्य राजाका दर्शनभी दुर्लभ होगया।

जब कुमति कीसी समय अपने कार्यवशात् अपने पिता मोहराजाके वहां जाती है तब चैतन्यराजाको अपनी शय्याके अन्दर पोढाके उपर एक बहु मूल्यसाडी (मोहानिद्रारूप) ढांकके जाती है। बस, अनन्तकालतक निःचेष्ट हुवा चैतन्य उन्ही शय्या (निगोदादि) में ही पडा रहता है। कभी सुमति सखी अपने कायदे माफीक पतिके पास आवे-बतलावे तोभी घोर निद्रामें पडा हूवा चैतन्य बोलेभी क्यों। सुमतिका आदर तो दूर रहा परन्तु मुंह खोलके देखनाभी दुर्लभ था इसी निद्रामें चैतन्यजी अनन्तकाल व्यतित कर रहेथे।

एक समयकी बात है कि कुमति अपने पिताके वहां जानेके समय चैतन्यपर वह निद्रारूप साडी डालना भूल गइथी। कुमति जानेके बाद सुमति अपने पतिके कायदे माफीक पतिके पासमें आइ। चैतन्यने पहेचानी भी नही तथापि अपना स्वाभाविक गुण होनेसे सुमतिको आदर सत्कार देके अपने पास बैठाली और पुछा कि आप कौन हो? स्वामिनाथ! क्या आप मुझे भूल गये हो आपके निज आवासमें रहनेवाली सुमति हूं। इतना कहनेपर चैतन्यको अपना भान हूवा और

(११) निगम—जहांपर प्रायः वैश्य लोगोंकी अधिक वस्ती हो।

(१२) राजधानी—जहांपर खास करके राजाकी राजधानी हो।

(१३) संवहन—जहांपर प्रायः किरसानादिककी वस्ती हो।

(१४) घोपांसि—जहांपर प्रायः घोपी लोगों वस्तें हो।

(१५) एशीयां—जहांपर आये गये मुसाफिर ठहरतें हैं।

(१६) पुडभोय—जहां खेतीवाडीके लीये अन्य ग्रामोंसें लोगों आकरके वास करते हो।

भावार्थ—एक माससें अधिक रहनेसें गृहस्थ लोगोंका अधिक परिचय होता है और जिससे राग द्वेपकी वृद्धि होती है। सुखशीलीयापना वढ जाता है। वास्तें तन्दुरस्तीके कारन विना मुनिकों शीतोष्ण कालमें एक माससे अधिक नहि ठहरना।

(७) पूर्वोक्त १६ गढ, कोट शहरपनासें संयुक्त हो। कोटके वहार पुरा आदि अन्य वस्ती हो, ऐसे स्थानमें साधुको शीतोष्ण कालमें दोय मास रहेना कल्पे, एक मास कोटकी अंदर और एक मास कोटकी वहार; परंतु एक मास अन्दर रहे वहां भिक्षा अन्दर करे, और वहार रहे तव भिक्षा वहारकी करे। अगर अन्दर एक मास रहेते हुवे एक रोजही वहारकी भिक्षा करी हो, तो अन्दर और वहार दोनो स्थानमें एकही मास रहेना कल्पनीय है। अगर अन्दर एक मास रहके वहार

घरमें क्या क्या बरतावे हूवा है वह सब हाल मुझे सुनावो, कारण मैं आपकी मधुर भाषा द्वारा सब हाल सुनना चाहता हूं ॥

सुमति सखीने चैतन्यके सब हाल सुनके यह विचार किया कि जो मैं कल्पना करती थी कि मेरी शोक कुमति मेरे पति चैतन्यराजाको वशमें करलिया होगा, यह मेरी कल्पना बिलकुल असत्य है, परन्तु मेरे पिताजी और मेरा भाइ सद्बोध सदागम कहता था कि " आत्मा निमित्तवासी है " यह बात सत्य है। सुमतिने सुविचार किया कि जबतक कुमतिके दुर्गुणोंसे चैतन्यने अनन्तकाल तक दुःख सहन किया है, वह सब चैतन्यको न समझाये जाय, तबतक चैतन्यकी रूची कुमतिसे कभी हठेगी नहीं। और यह चैतन्य और भी कुमतिके वश हो नरक-निगोदके दुःखोंको सहन करेगा। वास्ते मुझे उचित है कि पहले यह भी हाल सुनादूं

हे आत्मवीर! जबसे आप इस मोहराजाकी पुत्री कुमतिके वशमें हूवे हैं तबसे इस अपार संसारके अन्दर जन्म मरण रोग शोक आदि अनेक दुःखोंका अनुभव किया है और यह कुमति एक आपको ही नहीं किन्तु आप जैसे अनन्त जीवोंकों हालमें भी दुःखोंका अनुभव करा रही है। वह आप देखते ही है कि यह पशवादि और कितनेक मनुष्योंको भी अन्यायाचारमें प्रेरणा करती है। यह वही कुमति है जो कि

अन्दर, चोरा (हथाइकी बैठक), चौकके मकानमें और जहां-पर दोय तीन च्यार तथा बहुतसे रस्ते एकत्र होते हो, ऐसे मकानमें साध्वीयोंको उतरना और स्वल्प या बहुत काल ठह-रना उचित नहीं हैं। कारण एसे स्थानोंमें रहनेसे ब्रह्मचर्यकी गुप्ति (रक्षा) रहनी मुश्कील हैं।

भावार्थ—जहांपर बहुतसे लोगोंका गमनागमन हो रहा है, वहांपर साध्वीयोंको ठहरना उचित नहि है।

(१३) पूर्वोक्त स्थानोंमें साधुवोंको रहना कल्पे।

(१४) जिस मकानके दरवाजोंके किवाड न हो अर्थात् रात दिन खुला रहेते हो, ऐसे मकानमें साध्वीयोंको शीलरक्षाके लीये रहेना कल्पे नहीं।

(१५) उक्त मकानमें साधुवोंको रहेना कल्पै।

(१६) साध्वीयों जिस मकानमें उतरी हो उसी मकानका किवाड अगर खुला रखना चाहती हो तो एक वस्त्रका छेडा अन्दर बांधे और दुसरा छेडा बहार बांधे। कारण—अगर कोइ पुरुष कारणवशात् साध्वीयोंके मकानमें आना चाहता हो, तोभी एकदम वो नहीं आसकता।

भावार्थ—यह सूत्र साध्वीयोंके शीलकी रक्षाके लीये फरमाया है।

(१७) घडाके मुख माफिक संकुचित मुखवाला मात्राका

हाल कुमतिको पहूंच गया है । यह वात सुनतेही कुमतिने अपने जनक मोहराजाके पास जाके आपकी और मेरी शीकायत करी है, उसपरसे मोहराजाने अपनी सर्व सेनाके साथ आपके उपर चडाइ करी है, एसा समाचार अबी ही सूना है ।

हे हितकारिणी सुन्दरी । जब मेरे सुसराजी मेरेपर सेना लेके आ रहे हैं तो अब मेरेको क्या करना चाहीये, और एसा उपाय वतलावो कि मैं मोहराजाका पराजय कर सकूं ।

हे आत्मवीर ! आप घवरावे नहीं कारण मेरा पिता धर्मराजाके पासभी बहुतसी सेना है आपतो एक हो परन्तु आपके जेसे अनन्ते जीव इन्ही दुष्ट मोहराजाके पंजोसे छूडवायके मेरे पिताने अक्षयस्थानमें पहूंचा दीया है उन्होंके विषयमें तो मोहराजा अभीतक दांतोंको पीस ही रहा है आप एकाग्रचित्त होके मेरी अर्ज सुनिये ।

कका–कटक कर्मोंतणी, चढआइ तुझलार ।
अप्रमत्त गजारूढहो, मतकर देर लिगार ॥३॥

अर्थ–हे स्वामिन् ! इन्ही कर्मकटकका अधिपति मोह नामका नरेन्द्र है जिन्होके कर्मकर्त्ता मिथ्यादर्शन प्रधान है और राग केसरी और द्वेष गजेन्द्र तथा सर्व २८ उमरावों और ज्ञानावर्णिय उपराजा पांच उमरावोंसे, दर्शनावर्णियराजा नव उमरावोंसे, वेदनियराजा दोय उमरावोंसे, आयुष्यकर्म राजा चार उमरावोंसे, नामकर्मराजा १०३ उमरावोंसे, गोत्रकर्म राजा

कायोत्सर्ग करना, (१४) आसन लगाना, (१५) धर्मदेशना देना, (१६) वाचना देना, (१७) वाचना लेना-यह १७ बोल जलाश्रय पर न करनेके लीये है।

(२३) साधु साध्वीयोंको सचित्र-अर्थात् नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रा हुवा मकानमें रहेना कल्पे नहीं।

भावार्थ—स्वाध्याय ध्यानमें वह चित्र विघ्नभूत है, चित्तवृत्तिको मलिन करनेका कारण है।

(२४) साधु साध्वीयोंको चित्र रहित मकानमें रहेना कल्पे। जहांपर रहनेसे स्वाध्याय ध्यान समाधिपूर्वक हो सके।

(२५) साध्वीयोंको गृहस्थोंकी निश्रा विना नहीं रहेना, अर्थात् जहां आसपास गृहस्थोंका घर न हो ऐसे एकांतके मकानमें साध्वीयोंको नहीं रहेना चाहिये। कारण-अगर कोइ ऐसेभी ग्रामादि होवे कि जहांपर अनेक प्रकारके लोग वसते है, अगर रात दिनमें कारण हो, तो किसके पास जावे। वास्ते आसपास गृहस्थोंका घर होवे, ऐसे मकाममें साध्वियोंको रहना चाहिये।

(२६) साधुवोंको चाहे एकान्त हो, चाहे आसपास गृहस्थोंका घर हो, कैसाही मकान हो तो साधु ठहर सके। कारण-साधु जंगलमेंभी रह सकता, तो ग्रामादिकका तो कहना ही क्या ? पुरुषकी प्रधानता है।

(२७) साधु साध्वीयोंको जहांपर गृहस्थोंका धन-द्रव्य,

और सुमतिको पुछाकि अब क्या उपाय करना चाहिये। तब सुमति बोली कि हे स्वामिन् आप क्यों घबराते हो, मेरा पिताके खजानेमें एक ऐसा चन्द्रहास खडग (क्षमारूपी खडग) है वह मानों दुश्मनोंके लिये एक सुदर्शन चक्र है और दुसरा कम्बोज देशका आकरणी जातिके अश्वकोभी लज्जित करनेवाला अश्व (ज्ञानरूपी अश्व) है उन्हीपर आप असवार होके वह खडग हाथमें धारण करो, फिर इन्ही जड कर्मोंको पराजय करनेमें क्या देर लगती है।

हे नाथ-क्षमारूपी खडग और ज्ञानरूपी अश्व अर्थात् ज्ञान सहित क्षमा करनेसे हजारों दुश्मनरूपी कर्मोंका एक श्वासोश्वासमें नाश हो जाता है। इन्ही सुमति सखीकि हित शिक्षाको धारण कर चैतन्य हिम्मत बाहादुर होते हूवे रिपुवोंका पराजय करनेको कम्मरकस तैयार हो गया है वास्ते सबको तैयार होना चाहिये।

गगा-गारव तीन है, मोहतणा सीरदार।
तत्त्व तीन त्रीशुलले, मर्द्दव दंड सुविचार ॥ ५ ॥

अर्थ-इतनेमें तो मोहराजाके सीरदार जो रसगारव, ऋद्धिगारव, सातागारव, इन्होंकि मददमें मायाशल्य, निदानशल्य, मिथ्यादर्शनशल्य भी साथमें केसरीया करके चैतन्यपर चढाइ करीथी, एक दुसरेके साथमें अभिमान कर रहेथे, कि चैतन्यकि क्या ताकत है देखिये हम उन्हीको रसमें गर्द बना

चाहिये। कारन—गृहस्थोंकी बहिन, बेटी, बहुवोंका हरदम वहां रहेना होता है। वह किस अवस्थामें बैठ रहेती है, और महिला परिचय होता है।

(३६) साध्वीयोंको ऐसा मकान हो, तो भी ठहरना कल्पै।

(३७) दो साधुवोंको आपसमें कषाय (क्रोधादि) हो गया होवे, तो प्रथम लघु (शिष्यादि) को वृद्ध (गुर्वादि) के पास जाके अपने अपराधकी क्षमा याचनी चाहिये। अगर लघु शिष्य न जावे तो वृद्ध गुर्वादिको जाके क्षमा देनी लेनी चाहिये। वृद्ध जावे उस समय लघु साधु उस वृद्ध महात्माका आदर सत्कार करे, चाहे न भी करे; उठके खडा होवे चाहे न भी होवे; वन्दन नमस्कार करे चाहे न भी करे, साथमें भोजन करे, चाहे न भी करे, साथमें रहे, चाहे न भी रहे; तोभी वृद्धोंको जाके अपने निर्मल अन्तःकरणसे खमावना चाहिये।

प्रश्न—स्थान स्थान वृद्धोंका विनय करना शास्त्रकारोंने बतलाया है, तो यहांपर वृद्ध मुनि सामने जाके खमावे इसका क्या कारन है?

उत्तर—संयमकासार यह है कि क्रोधादिको उपशमाना, यहांपर वडे छोटेका कारन नहीं है। जो उपशमावेगा—खमत-खामणा करेगा, उसकी आराधना होगी; और जो वैर विरोध रक्खेगा अर्थात् नहीं खमावेगा, उसकी आराधना नहीं होगी। वास्ते सर्व जीवोंसे मैत्रीभाव रखना यही संयमका सार है।

आप अपने घरपर जानेका प्रयाण किया था तो इस विषम रस्तेमें क्यों लेट रहे हो कारण अभीतक आपका घर (मोक्ष) बहुत दुर है वास्ते अब मोहनिद्राको जरा दुर करो अनन्तकाल हो गये हैं इन्ही घोर अन्धकाररूपी रात्रीमें ही आप इदर उदरके धक्के खा रहे हो परन्तु जरा दुसालेको दुर कर मुंह बहार निकालोगे, तो आपको सूर्य (ज्ञान) दीख पडेगा फीर अपने मकानपर जाने योग्य रस्तेका स्वीकार कर निज स्थानपर पहुंच जाना। चैतन्य यह सुमति सखीका वचन सुनके खडा हो वार्तालाप करने लगा। इतनेमें सुमति सखी चैतन्यसे कहने लगी हे स्वामीन्!

चर्चा—च्यार कषाय है, उत्तर भेद पचवीश।
धन हरे दीर्घकालसे, कब तुं इन्हसे बचीश ॥ ७ ॥

अर्थ—हे कन्थ! मुख्य च्यार कषाय है परन्तु इन्हीका उत्तर भेद पचवीश है।

४ अनन्तानुबन्धी—क्रोध, मान, माया, लोभ। सम्यक्त्व गुणको रोके।

४ प्रत्याख्यानि—क्रोध, मान, माया, लोभ। देशव्रत गुणको रोके।

४ अप्रत्याख्यानि—क्रोध, मान, माया, लोभ। संयम गुणको रोके।

यादि वृद्धोंको सुप्रत कर देना, फिर वह आज्ञा देनेपर वह वस्त्रादि काममें ले सकते है। भावार्थ—यहां स्वच्छंदताका निषेध, और वृद्ध जनोंका विनय बहुमान होता है।

(४२) इसी माफिक विहारभूमि जाते हुवेको, स्वाध्याय करनेके अन्य स्थानमें जाते हुवेको आमंत्रणा करे तो।

(४३) एवं साध्वी गोचरी जाती हो।

(४४) एवं साध्वी विहारभूमि जातीको आमंत्रणा करे, परन्तु यहां साध्वीयों अपनी प्रवर्त्तिनी—गुरुणीके पास लावे और उसीकी आज्ञासे प्रवर्ते।

नोटः—इस दोयसूत्रमें विहारभूमिका लिखा है, तो विहार शब्दका अर्थ कोइ स्थानपर जिनमंदिरका भी कीया है। साधु स्वाध्याय तो मकानमें ही करते है, परन्तु जिनमंदिर दर्शनके लीये प्रतिदिन जाना पडता है। वास्ते यहांपर जिनमंदिर ही जाना अर्थ ठीक संभव होता है।

(४५) साधु साध्वीयोंको रात्रिसमय और वैकालिक (प्रतिक्रमण समय) अशनादि च्यार आहार ग्रहन करना नहीं कल्पै। कारन—रात्रि—भोजनादि कार्य गृहस्थोंके लीये भी महापाप वतलाया है, तो साधुवोंका तो कहना ही क्या? । रात्रिमें जीवोंकी जतना नहीं हो सकती। अगर साधुवोंको निर्वाह होने योग्य ठहरनेको मकान नहीं मिले उस हालतमें कपडे आदिके व्यापारी लोग दुकान मंडते हो, उसको देनेमें दृष्टि

दुनियोंकी छती या अछती निंदा कर अपनी कुमति सखीका पोषण करते हो परन्तु क्या आप अनन्तकालके दुःखोंको भुल गये है कि परछिद्र देखना और परनिंदा करना भवान्तरमें कितना दुःखका कारण होता है। भला आप दीर्घदृष्टिसे विचारीये कि इसमें आपको क्या स्वार्थकी प्राप्ति होती है। चैतन्य बोला कि हे सुमति ! इसमें मेरेको स्वार्थ तो कुच्छ भी नहीं है परन्तु मेरेको यह एक कीस्मका इसक (स्वभाव) ही पड-गया है कि अब मेरेसे रहा नहीं जाता है। हे नाथ ! यह आपके हृदयमें दीर्घकालमें असर जमानेवाली कुमति है परन्तु आपको एसा ही इसक होगया हो तो मैं आपका इसक छोडाना नहीं चाहती हुं किन्तु आप ज्ञानरूपी दीपक हाथमें लेके अपने आत्माका छिद्र देखीये कि यह आत्मा क्या क्या करता है और एक दिनमें कितने अकृत्य कार्य करता है। अकृत्य कार्य किये हुवेकि निंदा हमेशाकि लिये करते रहो, अगर इस पाप का वजन कोइ कम करनेवाले (आपकी निंदा करनेवाला) मील जावे तो आपको खुशी मानके उन्ही उपगारी पुरुषोंका उप-कार मानो. हे साहिब ! एसा इसक रखो कि जिन्होंसे भव-भवमें मेरी और आपकी प्रीति बनी रहे अगर आपका यह दुष्ट इरादा हो कि मैं दुसरोंका छिद्र देख निंदा कर पराजय कर दूं तो यह भी आपका विचार खराब है इन्हीके लिये भी आप कान देके सुनिये।

एकेला साधु कितना वख्त और कहांपर जाते है इत्यादि। वास्ते चाहिये कि आपसहित दो या तीन साधुवोंको साथ जाना। कारन—दूसरेकी लज्जासे भी दोष लगाते हुवे रुक जाते है। तथा एक साधुको राजादिके मनुष्य दखल करता हो, तो दूसरा साधु स्थानपर जाके गुर्वादिको इतल्ला कर सकता है।

(५०) इसी माफिक साध्वीयां दोय हो तो भी नहीं कल्पे, परन्तु आप सहित तीन च्यार साध्वीयोंको साथमें रात्रि या वैकालमें जाना चाहिये। इसीसे अपना आचार (ब्रह्मचर्य) व्रत पालन हो सकता है।

(५१) साधुसाध्वीयोंको पूर्व दिशामें अंगदेश चंपानगरी, तथा राजगृह नगर, दक्षिण दिशामें कोसम्बी नगरी, पश्चिम दिशामें स्थूणा नगरी, और उत्तर दिशामें कुणाला नगरी, च्यार दिशामें इस मर्यादा पूर्वक विहार करना कल्पै। कारन—यहांपर प्रायः आर्य मनुष्योंका निवास है. इन्हके सिवा अनार्य लोगोंका रहेना है, वहां जानेसे ज्ञानादि उत्तम गुनांका घात होता है, अर्थात् जहांपर जानेसे ज्ञानादिकी हानि होती हो, वहां जानेके लीये मना है। अगर उपकारका कारन हो, ज्ञानादि गुणकी वृद्धि हो, आप परीषह सहन करनेमें मजबूत हो, विद्याका चमत्कार हो, अन्य मिथ्यात्वी जीवोंको बोध देनेमें समर्थ हो, शासनकी प्रभावना होती हो, अपना चरित्रमें दोष न लगता हो, वहांपर विहार करना योग्य है।

। इतिश्री वृहत्कल्पसूत्रमें प्रथम उद्देशाका संक्षिप्त सार।

अर्थ—हे स्वामिन्! सर्व पापोंका बाप तथा नायक एक झुठ बोलना है कारण कि दुनियामें सब बातोंका इलाज हो सक्ता है परन्तु झुठ बोलनेवालेका इलाज नहीं है और सर्व दुर्व्यसनोमें शिरोमणि कर्मदलिकमें अधिक तीव्रता रस डालनेवाला असत्य है और मिथ्यात्वके आगमनमें अग्रेश्वर मोहराजाके सर्व दुतोंमे यह एक नायक दुत है वास्ते आप इन्होंका पराजय करनेके लिये अपने निज खजानासे एक सत्य और दुसरा शील यह दोनों बडेही जोरदार शस्त्र धारण करके इन्ही पापके बापको अपने कब्जे करलो कि फीरसे इसी चौरासीके अन्दर भव भ्रमनके तापरूपी संतापके संकटोंका मुंह ही देखना न पडे अर्थात् भवभ्रमनको जलांजलि देके मोक्ष चले जावोगे फीर अपने अचलानन्दमें अव्याबाध सुखोंका अनुभव करते रहेंगे।

हे स्वामिन् कुमतिने आपको यहभी भर्म डालाथा कि सुमतितो भीखारण है निर्धन है इन्होंके पास जानेवाला बडा ही दुःखी हो जाता है क्योंकि सुमति अति प्रसन्न होती है तब जगतके अच्छे सुन्दर पदार्थ खानेका पीनेका पहेरनेका मोजमजा रंगरागका तो प्रथमही त्याग करा देती है बादमें योगि बनाके घर घरमें भिक्षा मंगवाति है यह सर्व दालिद्रताकाही चिन्ह है वास्ते हे कामणगारा कन्त! आप भुल चुकके सुमतिके प्रासादमें कभी नहीं जाना, अगर इन्ही कुमतिके कहनेपर आप विश्वास किया होतो अब सुनिये।

कुल मना की गइ है, परन्तु यहांपर अपवाद है कि दुसरा मकान न मिलता हो या दुसरे गाम जानेमें असमर्थ हो तो ऐसे अपवादका सेवन करके मुनि अपना संयमका निर्वाह कर सकता है।

(२) साधु साध्वीयाँ जिस मकानमें ठहरना चाहते है, उस मकानमें सुरा जातिकी मदिरा, सोवीर जातिकी मदिराके पात्र (बरतन) पडा हो. शीतल पाणी, उष्ण पाणीके घडे पडे हो, रात्रि भर अग्नि प्रज्वलित हो, सर्व रात्रि दीपक जलते हो, ऐसा मकानमें हाथकी रेखा सुझे वहां तक भी साधु साध्वीयोंको नहीं ठहरना चाहिये। अपने ठहरनेके लिये दुसरा मकानकी याचना करनी। अगर याचना करनेपर भी दुसरा मकान न मिले और ग्रामान्तर विहार करनेमें असमर्थ हो, तो उक्त मकानमें एक रात्रि या दोय रात्रि अपवाद सेवन करके ठहर सकते है, अधिक नहिं। अगर एक दो रात्रिसे अधिक रहे तो उस साधु साध्वीको जितने दिन रहै, उतने दिनका [1]छेद तथा तपका प्रायश्चित होता है। ३। ४। ५।

(६) साधु साध्वीयों जिस मकानमें ठहरना चाहे उस मकानमें लड्डु, शीरा, दुध, दहीं, घृत, तेल, संकुली, तील, पापडी, गुलधाणी, सीरखण आदि खुले पडे हो ऐसा मकानमें हाथकी रेखा सुझे वहांतक भी ठहरना नहीं कल्पे। भा-

---

१—दीक्षाकी अन्दर छेद कर देना अर्थात् इतने दिनोंकी दीक्षा कम समजी जाती है।

अर्थ-हे प्रभो ! आपके निजानन्द नामका ठाकुर अनन्तकालमे कुमतिसखीकी साथ शय्याके अन्दर मोहनिद्रारूपी दुसाला ओडके सुता हुवा है। हे गुफावासी सिंह ! जरा हमारी अर्जपर ध्यान देके सम्यग्दर्शनरूपी हातल और ज्ञानरूपी गर्जना करिये । अर्थात अनन्तवीर्यरूपी प्राक्रममे सिंहनादकि ललकार करिये तांके आपको अनन्तकाल तक अपने कब्जे रखके अनन्ते भव भ्रमन करानेवाले अरि (वैरी) को जड-मूलसे नष्ट होनेमें क्या देर लगति है । हे स्वामिन् जहांतक आप इन्ही दुश्मनोंसे घबराते रहोगे, वहां तक यह दुश्मन आपको कवी छोडनेवाले नही है बल्के आपको अधिकाधिक दुःख देंगे । हे स्वामिन् मै आपके दुश्मनोंका भी परिचय करा देती हूं । (१) केवल ज्ञानावर्णिय (२) निंद्रा (३) निंद्रा निंद्रा (४) प्रचला (५) प्रचला प्रचला (६) स्त्यानर्द्धि (७) केवल दर्शनावर्णिय (८) मिथ्यात्वमोहनीय (९) अन्तानुबन्धी क्रोध (१०) एवं मान (११) एवं माया (१२) एवं लोभ १३-१४-१५-१६ प्रत्याख्यानी क्रोध मान माया लोभ १७-१८-१९-२० अप्रत्याख्यानी क्रोध मान माया लोभ एवं २० दुश्मनों आपके निजगुणोंकी सर्वथा घात करनेवाले है और (१) मतिज्ञानावर्णिय (२) श्रुतज्ञानावर्णिय (३) अवधिज्ञानावर्णिय (४) मनःपर्यवज्ञानावर्णिय (५) चक्षुदर्शनावर्णिय (६) अचक्षुदर्शनावर्णिय (७) अवधि दर्शनावर्णिय ८-९-१०-११ संज्वलनका

वहां भेज दीया, परन्तु अभी तक सज्जनने पूर्ण तोर पर स्वीकार नहीं कीया हो, जैसे कि–भोजन आनेपर कहते है कि यहां पर रख दो, हमारे कुटुम्बवालोंकी मरजी होगी तो रख लेंगे, नहीं तो वापिस भेज देंगे ऐसा भोजन भी साधु साध्वीयोंको लेना नहीं कल्पै ।

(११) उक्त भोजन सज्जनने रख लिया हो, उसके अन्दरसे नीकला हो, और प्रवेश किया हो तो वह भोजन साधु साध्वीयोंको ग्रहण करना कल्पै ।

(१२) उक्त भोजनमें सज्जनने हानि वृद्धि न करी हो, परन्तु साधु साध्वीयोंने अपनी आम्नायसे प्रेरणा करके उसमें न्यूनाधिक करवायके वह भोजन स्वयं ग्रहण करे तो उसको दोय आज्ञाका अतिक्रम दोष लगता है, एक गृहस्थकी और दुसरी भगवान्‌की आज्ञा विरुद्ध दोष लगे। जिसका गुरु चतुर्मासिक प्रायश्चित होता है ।

(१३) जो दोय, तीन, च्यार या वहुत लोग एकत्र होके भोजन बनवाया है, जिसमें शय्यातर भी सामेल है, जैसे सर्व गामकी पंचायत और चन्दा कर भोजन बनवाते है, उसमें शय्यातर भी सामेल होता है, वह भोजन साधु साध्वीयोंको ग्रहण करना नहीं कल्पै । अगर शय्यातर सामेल न हो तथा उसका विभाग अलग कर दीया हो, तो लेना कल्पै ।

पान एश आरामादि कार्योमें प्रेरणा करती है और आपके हाथसे न करने योग्य अत्याचार कराति है कभी कभी तो आपके हृदयकमलमें निवास कर देति है और आपके प्रदेश प्रदेशमें अपना असर पहुंचा देती है जिन्होंके जरिये आपको जडवत् बनादेती है। वास्ते महान् पुरुषो इन्ही कुटिला कुमातिको डाकनके नामसे पुकार रहें है। डाकन हो तो एक ही भवमें भक्षण करती है परन्तु यह कुमति डाकन तो भवोभवमें भक्षण करती है, हे नाथ! विचारी डाकन तो एक दोय अथवा तीन जीवोंका भक्षण करती है परन्तु यह महान् दुराचारिणी कुमतिने तो अनन्ता जीवोंका भक्षण किया है इतनेपर भी तृप्त न हुइ और अनन्ते जीवोंका भक्षण कर रही है, और इन्हीके पंझोंमें आवेगा उन्होंको कभी नहीं छोडेगी, हे स्वामिनाथ! आप मेरी शय्याके अन्दर पधारे हो वास्ते मैं आपकों नम्रतापूर्वक अर्ज करती हूं कि आप अपनी दशाको ठीक ठीक संभाल करते रहें कारण जहांतक इन्सान अपने ढंगपर चलते है उन्हों पर किसीका जोर नहीं चलता है वास्ते ही मैं आपको वार वार अर्ज करती हूं कि—

ढढा—ढंग आच्छो रखो, ढंगसे सुधरे काज।
स्वसत्तामें रमणता, कर पामो स्वराज ॥ १४ ॥

अर्थ—हे स्वसत्ताविलासी! अनन्तकालकी कुमति दुर हो गइ है अब भी आपको चेतना हो तो आप अपना ढंग—

ओंको कल्प ग्रहन करना। शय्यातरका इतना परेज रखनेका कारन-अगर जिस मकानमें साधु ठहरे उसके घरका आहार लेनेमें प्रथम तो आधाकर्मी आदि दोष लगनेका संभव है, दुसरा मकान मिलना दुर्लभ होगा इत्यादि।

(२२) साधु साध्वीयोंको पांच प्रकारके वस्त्र ग्रहन करना कल्पै (१) कपासका, (२) उनका, (३) अलसीकी छालका, (४) सणका, (५) अर्कतूलका।

(२३) साधु साध्वीयोंको पांच प्रकारके रजोहरन रखना कल्पै (१) उनका, (२) ओटीजटका, (३) सणका, (४) मुंजका, (५) तृणोंका।

। इति श्री बृहत्कल्पसूत्रमें दूसरा उद्देशाका संक्षिप्त सार।

तीसरा उद्देशा.

(१) साधुओंको न कल्पै कि वो साध्वीयोंके मकान पर जाके उभा रहै, बैठे, सोवे, निद्रा लेवे, विशेष प्रचला करे, अशन, पान, खादिम, स्वादिम करे, लघुनीति या वडी नीति करे, परठे, स्वाध्याय करे, ध्यान या कायोत्सर्ग करे, आसन लगावे, धर्मचिन्तन करे-इत्यादि कोइ भी कार्य वहां पर नहीं करना चाहिये।

प्रगणा- रणतुर वाजियो, चढ चालो रणखेत ।
अन्तःकरण शुद्ध आठमे, शुक्लध्यान लो श्वेत ॥ १५ ॥

अर्थ—हे निजानन्द ! मै आपसे पहले ही कहती थी कि यह कुमति आपके उपर कुपीत होगी, देखीये रणतुरकी अवाज आ रही है, अगर इस अवसरपर आप चुपचाप बेठ जावोगे, तो यह कुमति अपने बान्धवोंके साथ आपपर अपना हुमला करके आपको पकड अपनी शय्याके अन्दर लेजावेगी, तो फीर आपको अनन्तकाल तक नहीं छोडेगी । वास्ते आप अब पेस्तर मदचुर मुद्गल, विषय विध्वंसन वज्र, कषाय निकंदन कुद्दाल, निद्रानष्ट स्मृतिशैल और विकथाभंग चक्र हाथमें धारण करो इन्होंसे कुमतिके जितने योद्धे—मद, विषय, कषाय, निद्रा, विकथाका शिर छेदके अन्तःकरण शुद्धिरूपी निसरणी (श्रेणी) पर चढके आप एकदम शुक्लध्यानरूपी मेरा वृद्ध वन्धवके साथ वार्तालाप करो, वह आपकी पूर्णतया सहायता करेगा, और साथमें मै भी इस बातकी कोशीष करती रहुंगी, देर न करीये पुरुषार्थरूपी रथ आपके लिये तैयार है इसपर विराजके रणखेतमे जल्दी चलिये ।

हे स्वामिन् अबी मेरे कानोंमें अवाज हूइ है कि हे सुमति ! तुं तेरे प्राणपतिको हितशिक्षा तो दे रही है परन्तु कभी २ कुमतिका एक छोटासा लडका चेतन्यके पास आता है इन्होंके

(१२) यह दोनो उपकरण साधुओंको नहीं कल्पे।

(१३) साध्वीयोंको गोचरी गमन समय अगर वस्त्र याचनाका प्रयोग हो तो स्वयं अपने नामसे नहि, किन्तु अपनी प्रवर्तिनी या वृद्धा हो उसके नामसे याचना करनी चाहिये। इसीसे विनय धर्मका महत्व स्वच्छन्दताका निवारण ओर गृहस्थोंको प्रतीति इत्यादि गुण प्राप्त होते है।

(१४) गृहस्थ पुरुषको गृहवासको त्याग करनेके समय (१) रजो हरण (२) मुखवास्त्रिका (३) गुच्छा (पात्रोंपर रखनेका) झोली [1]पात्र तीन संपूर्ण [2]वस्त्र इसकी अंदर सब वस्त्र हो सकते हैं।

(१५) अगर दीक्षा लेनेवाली स्त्री हो तो पूर्ववत्। परन्तु वस्त्र च्यार होना चाहिये। इसके सिवा केइ उपकरण अन्य स्थानों पर भी कहा है। केइ उपगृही उपकरण भी होते है। अगर साधु साध्वीयोंको दीक्षा लेनेके बाद कोइ प्रायश्चित स्थान सेवन करनेसे पुनः दीक्षा लेनी पडे तो नये उपकरण याचेनकी आवश्यकता नही। वह जो अपने पास पूर्वसे ग्रहण किये हुवे उपकरण है, उन्होमे ही दीक्षा ले लेनी चाहिये ऐसा कल्प है।

(१६) साधु साध्वीयोंको चतुर्मासमें वस्त्र लेना नहि

---

१ पात्र तीन। २ एक वस्त्र २४ हाथका लंबा, एक हाथका पना एवं ७२ हाथ।

विनय करना, भक्ति करना, वेयावच्च करना, तथा परमेश्वरका भजन करना यह ही सार है। इन्होंसे ही यह मीलाहुवा नर-भव रत्न चिंतामणि सफल होता है वास्ते आप अहंकारको छोडके सद्कार्यमें अपना शरीर अर्पण कर दो। हे स्वामिन्! कितनेक लोगोंका यह भी दुर्ध्यान है कि माता पिता पुत्र कलत्र धन धान्यादि मेरा है वास्ते यह शरीर उन्होंके कार्यमें लगादेतें है वास्ते आप जरा इधर भी देखीये।

थथा-थारो को नही। कीससे करिये प्यार।
ज्ञानदर्शनमें रमणता। करिये तत्त्व विचार॥ १७॥

अर्थ—हे चैतन्यराजा! इस दुनियांमें सभी प्राणी-यनीयेकी दुकानें और सरायके मेलाकी माफीक मुसाफरोंके रूपमें एकत्र हुवे हैं। नजाने कौनसा मुसाफर कीस देशसे आया है और कीस देशमें जावेगा, और कितनी वखत यहांपर ठरेगा और यह मेरी प्रित कितनेकाल पालन करेगी? जब इतनाही निश्चय नहीं है तो फीर उन्ही मुसाफरोंका विश्वास कर उन्होंके साथ प्रेम करना क्या उचित है? अर्थात् यह कुटुम्ब मेला है वह सब मुसाफर है यह तेरा नहीं है कारण जब तुं परभव गमन करेगा तब यह सब यहां-परही रहेगा और जब वहलोक परभव जावेगा तब तुं यहांपर रहेगा। तो ऐसा कारमी कुटुम्बसे प्रेम कर अपने अमूल्य मनुष्य-

(२२) साधु साध्वीयोंको गृहस्थके घरपे जाके चार पांच गाथ (गाथा) विस्तार सहित कहना नहीं कल्पै । अगर कारण हो तो संक्षेपसे एक गाथा, एक प्रश्नका उत्तर एक वागरणा (संक्षेपार्थ) कहेना, सो भी उभा रहके कहेना, परन्तु गृहस्थोंके घर पर बैठके नहीं कहेना । कारण–मुनिधर्म है सो निःस्पृही है । अगर एकके घरपे धर्म सुनाया जाय तो दुसरेके वहां जाना पडेगा, नहीं जावे तो राग द्वेपकी वृद्धि होगी । वास्ते अपने स्थान पर आये हुवेको यथासमय धर्मदेशना देनी हीं कल्पै ।

(२३) एवं पांच महाव्रत पचवीश भावना संयुक्त विस्तारसे नहीं कहेना । अगर कारन हो तो पूर्ववत् । एक गाथा एक वागरणा कहना सो भी खडे खडे ।

(२४) साधु साध्वीयोंने जो गृहस्थके वहांसे शय्या (पाट पाटा), संस्तारक, (तृणादि) वापरनेके लिये लाया हो, उसको वापिस दिया विना विहार करना नहीं कल्पै । एवं उस पाटा पर जीवोत्पत्तिके कारनसे लेप लगाया हो, तो उस लेपको उतारे विना देना नहीं कल्पै । अगर जीव पड गया हो, तो जीव सहित देना भी नहीं कल्पै । (२६) अगर उस पाटादिको चोर ले गया हो, तो साधुको उसकी तलास करनी चाहिये, तलास करने पर भी मिल जावे, तो गृहस्थसे कहके दुसरी वार आज्ञा लेनी, अगर नहीं मिले तो गृहस्थसे कह देना कि–'तुमारा पाटादि चौर ले गया हमने तलास की परन्तु क्या करे मिला नहीं । एसा कहके दुसरा पाटादिकी

र्थ तवसे यह वेश्या समान पांचो इन्द्रियां जोकि श्रोत्रेन्द्रिय-आपके अच्छे मनोहर विलासकारी शब्द श्रवण करनेमें प्रेरणा कर रही है, चक्षुइन्द्रिय अच्छे सुन्दराकार तत्काल विषयोत्पन्न करनेवाले रूप देखनेको खींच रही है, घ्राणेन्द्रिय अच्छे सुगन्धदार पुष्पादिकी सुवास लेनेको निमन्त्रण कर रही है, रसेन्द्रिय अच्छे अच्छे भोजन करनेमें आपको बेभान बना देती है, कि जो भक्षाभक्ष, रात्रि है कि दिन है! इन्होंसे भी आपको विकल बना देती है और स्पर्शेन्द्रिय सुखशय्या आदिमें अपनी छटा दीखानेमें कुछभी कसर नहीं रखती है। हे महाराज! यह पांचो इन्द्रिय अपनी विषय प्रतिकुल पदार्थमें आपको बडेही कुपीतभी बना देती है। केवल पांचों इन्द्रियांही नही किन्तु इन्होके २३ पुत्रोंको भी साथमें रखती है। श्रोत्रेन्द्रियका जीवशब्द, अजीवशब्द, मिश्रशब्द, आदि चक्षुरिन्द्रियका श्याम, निला, लाल, सफेत, श्वेत. घ्राणेन्द्रियका दोय सुरभिगन्ध दुरभिगन्ध. रसेन्द्रियका पांच तीक्त, कटुक, कषीत, आम्ल, मधुर और स्पर्शेन्द्रियका आठ कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष एवं २३ तथा इन्होका भी परिवार २५२ सुभट है+

+ श्रोत्रेन्द्रियके १२ विकार है। जैसे सुशब्द, दुःशब्द इन्होंके सचित्त, अचित्त, मिश्र करनेसे ६ इन्ही छे अच्छे होनेसे राग और बुरे होनेसे द्वेष एवं १२ और चक्षुइन्द्रियके ६० विकार है। पाच शुभवर्ण, पाच अशुभवर्ण एवं १० सचित्त, १०

मकानकी आज्ञा भी कोई नहीं देता हो, अर्थात् वह मकानमें देवादिकका भय हो, देवता निवास करता हो, अगर ऐसा मकानमें साधुओंको ठहरना हो, तो उस मकान निवासी देवकी भी आज्ञा लेना, परंतु आज्ञा विना ठहरना नहीं। अगर कोइ मकान पर प्रथम भिक्षु (साधु) उतरे हो, तो उस भिक्षुवोंकी भी आज्ञा लेना चाहिये. जिससे तीसरे व्रतकी रक्षा और लोकव्यवहारका पालन होता है।

(३१) अगर कोइ कोट (गढ) के पासमें मकान हो, भींत, खाइ, उद्यान, राजमार्गादि किसी स्थानपरके मकानमें साधुवोंको ठहरना हो तो जहांतक घरका मालिक हो, वहांतक उसकी आज्ञासें ठहरे, नहि तो पूर्व उतरे हुवे मुसाफिरकी भी आज्ञा लेना, परंतु विना आज्ञा नहीं ठहरना। पूर्ववत्.

(३२) जहां पर राजाकी सैनाका निवास हो, तथा सार्थवाहके साथका निवास हो, वहां पर साधु-साध्वी अगर भिक्षाको गया हो, परंतु भिक्षा लेनेके बाद उस रात्रि वहां ठहरना न कल्पै। कारण-राजादिको शंका हो, आधाकर्मी दोपका संभव है, तथा शुभाशुभ होनेसे अप्रतीतिका कारण होता है। ऐसा जानके वहां नहीं ठहरे। अगर कोइ ठहरे तो उसको एक तीर्थकरोंकी दुसरी राजा और सार्थवाह-इन्ह दोनों की आज्ञाका अतिक्रम दोप लगनेसे गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित होता है।

स्थानायांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्म कथा, उपासग-दशांग, अन्तगडदशांग, अनुत्तरोववाइदशांग, प्रश्नव्याकरण, विपाक और दृष्टिवाद इन्होंके सिवाय वर्तमान जो उपांग, मूल, छेद आदि पूर्व महाऋषियोंके बनाये हुवे प्रकरणादि यह सर्व सूत्रधर्म है इन्होंके अन्दर पूर्ण श्रद्धा रखके पठन पाठन करना और चारित्रधर्म जो देशसे श्रावकव्रत और सर्वसे साधु-व्रत है इन्होको श्रद्धापूर्वक यथाशक्ति पालन कर अपना मीला हुवा मनुष्यजन्मको पवित्र बनाना। हे मोक्षाभिलाषी ! यह दोनो कुंजिये आपके निजावासकी है इन्हीको स्वीकार कर चलिये मेरे साथ आनन्दसे अनुभव करो। यह मेरा वारवार आमंत्रण है क्योंकि आप मेरेसे दीर्घकाल दुर ही रहे थे जैसे कि—

नना—नाटक कर्म संग, नाच्यो काल अनंत।

निज घर आवो वालहा, सुमति कहे सुनो कन्त ॥२०॥

अर्थ—हे साहिबजी ! मै अनन्तकाल हो गये आपकी राह देख रही हूं मेरी शय्या आपके सिवाय बिलकुल सुनी है परन्तु क्या करूं ! आपके वन्धे हुवे कायदेसे मै लाचार हूं। क्योंकि आप कुमतिके भ्रममें पडके इन्ही मोहराजाके राजमें नाना प्रकारके नाटक करते थे। वह मैं सब देखरही थी मुझे बडा दुःख होता था कि मेरा भरतार अनन्त शक्तिवाला

(३) दुष्टता–जिसका दोय भेद. (१) कषाय दुष्टता जैसा कि एक साधुने मृत–गुरुका दांत पत्थर से तोडा. (२) विषय दुष्टता–जैसा कि राजाकि राणी और साध्वीसे विषय सेवन करे. प्रमाद–जो पांचवी स्त्यानार्द्धि निद्रावाला, वह निद्रामें संग्रामादिभी कर लेता है. अन्योन्य–साधु–साधुके साथ अकृत्य कार्य करे. इस तीनों कारणों से दशवां प्रायश्चित्त होता है, अर्थात् गृहस्थलिंग करवाके संघको ज्ञात होनेके लीये दुकानोंसे कोडी प्रमुख मंगवाना, इत्यादि. भावार्थ–मोहनीय कर्म बडाही जबरजस्त है. बडे बडे महात्मावोंको श्रेणिसे गिरा देता है. गिरनेपरभी अपनी दशाको संभालके पश्चात्ताप पूर्वक आलोचना करनेसे शुद्ध हो सकता है. जो प्रायश्चित्त जनसमूहकी प्रसिद्धिमें सेवन कीया हो तो उन्होंके विश्वास के लीये जनसमूहके सामने हि प्रायश्चित देना शास्त्रकारोंने फरमाया है. इस समय नौवां दशवां प्रायश्चित्त विच्छेद है. आठवां प्रायश्चित्त देनेकी परंपरा अबी चलती है.

(४) नपुंसक हो, स्त्री देखनेपर अपने वीर्यको रखनेमें असमर्थ हो, स्त्रीयोंके कामक्रीडाके शब्द श्रवण करते ही कामातुर हो जाता हो, इस तीन जनोंको दीक्षा न देनी चाहिये. अगर अज्ञातपनेसे देदी हो, पीछेसे ज्ञात हुवा हो, तो उसे मुंडन न करना चाहिये. अज्ञातपनेसे मुंडन कीया हो तो शिष्यशिक्षा न देना चाहिये. एसा हो गया हो तो उत्थापन अर्थात् वडी दीक्षा न देनी चाहिये. औसाभी हो गया हो, तो

स्वामिन् ! देखीये आपको कभी वैश्या, दूति, दासी, विधवा आदिके वेषमें नाच नचाया था। कभी देवतावोंमें परमाधामी-पणे कि बिलकुल निर्दय, तो कभी व्यंतर पणे, कभी आसुरी-काय तो कभी क्लिबिषिया, कभी अभोगीक तो कभी कुतूह-लीक. हे स्वामिनाथ। मैं कबतक इस आपके आत्महरण नाट-कका व्याख्यान करू। क्या उन्ही नाटकोंसे आप विस्मृत हो गये है ? क्या वह सब दुःख इतनेहीमें आप भुल गये हो। हे नाथ ? आपने तो उन्ही प्रेमसहित दुःखका अनुभव किया है परन्तु मैं तो आपका दुःख देखदेखके आधा शरीरवाली हो गइ हूं तो आपने फीर उन्ही दुःखों को मूल्य खरीद करने-का इरादा करते हो यह बात मैं ठीकतौरपर जानती हूं परन्तु याद रखीये।

पपा-पैसा पापसे। जोड्या लाख करोड।
अणचेत्यो आसे रिपू। लेसे घांटो मरोड ॥ २१ ॥

अर्थ—हे पुद्गलानन्दी। आप इतने दुःख देखनेपर भी इन्ही सुमडी मायासे प्रीत रखते हो परन्तु अभीतक आपने यह नही सुना होगा कि इस दुनियांके अन्दर महान् सत्वधारी महात्मावोंने इन्ही सुमडी मायाका कैसा वडा तीरस्कार कीया है उन्ही जगविनाशक मायाका आप आदर सत्कार करतें है उन्हीके लिये राजाका हांसल चौराते हो, मातपिता बन्धु सजनोंको धोखा दे देते हो, विश्वासघात करते हो, झूठ बोलते

माता बहिन और पुत्री–उस साधुको ग्रहण करे. उसका कोमल स्पर्श हो तो अपने दिलमें अकृत्य (मैथुन) भावना लावे तो गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है.

(१०) एवं साध्वीको अपना पिता, भाइ या पुत्र ग्रहण कर सके.

(११) साधु–साध्वीयोंको जो प्रथम पोरसीमें ग्रहण कीया हुवा अशनादि च्यार प्रकारके आहार, चरम (छेल्ली) पोरसी तक रखना तथा रखके भोगवना नहीं कल्पे. अगर अनजान (भूल) से रहभी जावे, तो उसको एकांत निर्जीव भूमिका देख परठे. और आप भोगवे या दुसरे साधुवोंको देवे तो गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है.

(१२) साधु–साध्वीयोंको जो अशनादि च्यार प्रकार के आहार जिस ग्रामादिमें किया हो, उसीसे दोय कोस उपरांत ले जाना नहीं कल्पे. अगर भूलसे ले गया हो, तो पूर्ववत् परठ देना, परंतु नहीं परठके आप भोगवे या अन्य साधुवोंको देवे तो गुरुचातुर्मासिक प्रायश्चित आता है.

(१३) साधु–साध्वी भिक्षा ग्रहण करते हुवे, अगर अनजानसे दोषित आहार ग्रहण कीया, बादमें ज्ञात होनेपर उस दोषित आहारको स्वयं नहीं भोगवे, किन्तु कोइ नव दिक्षित साधु हो (जिसको अभी बडी दीक्षा लेनी है) उसको देना कल्पे. अगर ऐसा न हो तो पूर्ववत् परठ देना चाहिये.

(१४) प्रथम और चरम तीर्थकरोंके साधुवोंके लीये

तेरा घांटा मोडके तुजे ले चलेगा—और दुष्कृतकर जो माया एकत्र करी है उन्होंका फल तेरेको परमाधामीयोंसे दीरावेगा वहांपर न तेरी माया काम आवेगी। न तेरे कायाके मजुर पुत्र कलीभी काम आवेगा। वहांपर निर्धन होके तुजे अकेलेको ही दुःख सहन करना पडेगा वास्ते हे नाथ! आप इस सुमडीमाया-तृष्णाको दूर ही रखो। और इन्ही प्रधान शरीरसे बने वहांतक अच्छे कार्य करो क्यांकि—

फफा—फुल सम देह है, क्षण क्षणमें क्षय थाय।
पुन्य पुंजी ले आवियो, खाली खजाने जाय ॥२२॥

अर्थ—हे आत्मविलासी! अगर यह प्रधान शरीर अर्थात् मनुष्य जन्म जो कि बहुत मुश्कीलसे मीला हुवा है वह भी प्रतिक्षण क्षय हो रहा है। इन्हीके लिये अगर आप जरा भी विचार न करोगे तो क्या यह प्रधान मनुष्यभव आपको वार२ मीलाही करेगा? नही नही. यह नरावतार बडाही दुर्लभसे मीलता है। आजतक जो तुमने संसारके अन्दर भव किया है उन्होंका हीसाब किया जाय तो अनन्ते भव तीर्यंचके करनेपर एक भव देवतावोंका मीला है और असंख्याते भव देवतावोंके करनेपर एकभव नरकका मीला है और असंख्याते भव नरकके करनेपर एक भव मनुष्यका मीला है अर्थात् एक भव मनुष्यका कब मीलता है कि असंख्याते नरकके भव, उन्होंसे असंख्यात गुणे देवतावोंका भव, उन्होंसे अनन्त गुणे तीर्यंचके

जानेका इरादा करे तो उसको अपनी पद्वी दुसरेको दीया विगर जाना नहीं कल्पै, परंतु पद्वी छोडके सात पद्वीवालोंको पूछे, अगर आज्ञा दे, तो अन्य गच्छमें जाना कल्पै, आज्ञा नहीं देवे तो नहीं कल्पै.

(२०) आचार्य, उपाध्याय, स्वगच्छ छोडकर परगच्छमें जानेका इरादा करे, तो अपनी पद्वी अन्यको दीया विना अन्य गच्छमे जाना नहीं कल्पै. अगर पद्वी दुसरेको देनेपरभी पूर्ववत् सात पद्वीवालोंको पूछे, अगर वह सात पद्वीधर आज्ञा दे, तो जाना कल्पै, आज्ञा नही देवे तो जाना नहीं कल्पै. भावार्थ—अन्य गच्छके नायक कालधर्म प्राप्त हो गये हो पीछे साधु समुदाय बहुत है, परंतु सर्व साधुवोंका निर्वाह करने योग्य साधुका अभाव है, इस लीये साधु गणविच्छेदक तथा आचार्य महालाभका कारण जान, अपने गच्छको छोड उपकार निमित्त परगच्छमें जाके उसका निर्वाह करे. आज्ञा देनेवाले अन्य गच्छका आचार धर्म आदिकी योग्यता देखे तो जानेकी आज्ञा देवे. अथवा नहींभी देवे.

(२१) इसी माफिक साधु इरादा करेकि अन्य गच्छवासी साधुवोंसे संभोग (एक मंडलेपर साथमें भोजनका करना) करे, तो पेस्तर पूर्ववत् सात पद्वीधरोंसे आज्ञा लेवे, अगर आचारधर्म, क्षमाधर्म, विनयधर्म अपने सदृश होनेपर आज्ञा देवे, तो परगच्छके साथ संभोग कर सके, अगर आज्ञा नहीं देवे, तो नहीं करे.

अर्थ--हे निजानन्द! इस संसारके अन्दर जितने पौद्-गलीक पदार्थ है वह गये हुवे फीर भी मील सक्ते है जैसे माता पिता पुत्र कलत्र नोकर चाकर राज सुवर्ण चांदी हाट और यह शरीर भी किसी कालमे मील सक्ता है। किन्तु जो समयरूपी वखत जाता है वह फीरसे कबी नहीं मीलता है वास्ते इन्ही समयको व्यर्थ न खो देना चाहिये। हे चैतन्य! तूं ज्ञान लोचनोंसे देख, जब किसी मनुष्यका १०० वर्षका आयुष्य होता है वह ५० वर्ष तो निद्रामें ही क्षय कर देता है शेष ५० वर्षोंके अन्दर दश वर्ष बाल्यावस्था और दश वर्ष वृद्धावस्थामें चले जातें है शेष ३० वर्ष रहता है जिस्में खाना-पीना वेपार करना विवाह-सादी आनाजाना सज्जन संबंधी आदि कितने प्रकारकी उपाधीयां है उन्होंके लिये अगर १५ वर्ष छोडदिया जाय तो शेष सो वर्षोंके अन्दर पन्दर वर्ष आपके लिये जमा रहता है। अगर उन्होंको भी गफलतीमे खोदें तो क्या वह मनुष्यजन्मका सारांश निकाला अर्थात् सोके सो वर्ष धूलमें खो दिया कहना क्या अनुचित होगा? हे चैतन्य! आपको इस मनुष्यभवके वखतकी किंमत न हो तो किसी सत्पुरुषोंके पास जावों कि जिन्होंके पास किंमत करनेकी कसोटी हो। वह आपको किंमत कर बतलावेगा कि इस समयकी इतनी किंमत है। अगर आप अकेले नहीं जा सक्ते हो तो चलीये मैं आपके साथ चलूं। सुमति और चैतन्य दोनों समयकी किमत करानेको कसोटीवालोंके पासगये। वहांपर

इसीसे भविष्यमें बहुत ही लाभका कारन होगा. इस इरादेसे अन्य गच्छमें जा सकते हैं.

(नोट) इन्ही महात्मावोंकी कितनी उच्च कोटिकी भावना और शासनोन्नति, आपसमे धर्मस्नेह है. ऐसी प्रवृत्ति होनेसे ही शासनकी प्रभावना हो सकती है.

(३०) कोइ साधु रात्रीमें या वैकाल समयमे कालधर्म प्राप्त हो जाय तो अन्य साधु गृहस्थ संबंधी एक उपकरण (वांस) मरजीना याचना करके लावे और कंबली प्रमुखकी झोली बनाके उस वांससे एकांत निर्जीव भूमिकापर परठै. भावार्थ—वांस लाती वखत हाथमें उभा वांसको पकडे, लाते समय कोइ गृहस्थ पूछे कि–'हे मुनि ! इस वांसको आप क्या करोगे ?' मुनि कहे–'हे भद्र ! हमारे एक साधु कालधर्म प्राप्त हो गया है, उसके लीये हम यह वांस ले जाते हैं. इतनेमे अगर गृहस्थ कहे कि–हे मुनि ! इस मृत मुनिकी उत्तर क्रिया हम करेंगे, हमारा आचार है. तो साधुवोंको उस मृत कलेवरको वहांपर ही वोसिराय देना चाहिये. नहि तो अपनी रीति माफिक ही करना उचित है.

(३१) साधुवोंके आपसमें क्रोधादि कषाय हुवा हो तो उस साधुवोंको विना खमतखामणा–(१) गृहस्थों के घरपर गोचरी नहीं जाना, अशनादि च्यार प्रकारका आहार करना नहीं कल्पै. टटी पैसाव करना, एक गामसे दुसरे गाम जाना, और एक गच्छ छोडके दुसरे गच्छमे जाना नहीं कल्पै. अलग

सुमतिके भरतार ! अब आप अपनी आत्माको सिद्ध सामान्य समझो जैसे सिद्धोंका स्वभाव अनाहारी है तो मेरा भी स्वभाव अनाहारी है, सिद्धोंका स्वभाव शान्त हे तो मेराभी स्वभाव शान्त है, सिद्धज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य रूप धनमय है वैसे मेरी आत्मा भी ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्यमय है, जैसे सिद्धोंको पर स्वभावमें रमणता नही है, वेसे मेरेभी परसत्तामें रमणता नही है। सिद्ध स्वसत्तामें रमणता कर रहे है वैसेही मुझेभी स्वसत्तामें रमणता करना चाहिये। ऐसे जो अभेद आत्मा हो गया है फेर कीसी प्रकारका भर्म नही रहता है अर्थात् भेद भाव मीट गया है तो चैतन्यको कीसी प्रकारका भर्म नही रहता है एसा होनेसे आत्मा चिदानन्द रूप होजाता है। हे चैतन्य—

> **ममा**–मर्म जाणयों पछे कर्म न बान्धे कोय।
>
> पूर्वकर्म प्रजालके। सिद्ध समाना होय ॥ २५ ॥

अर्थ—हे आनन्दानन्द ! इस रौद्र संसारके अन्दर जीतने प्राणीयों शुभाशुभ कर्मोपचय करतें है वह अभितक कर्मोंके मर्मसे अज्ञात है तथा आत्माके मर्म (अभितरके गुण) से अज्ञात है और जिन्ही महापुरुषोंने कर्मोंका मर्म जैसे जल-निवास करने वाली मच्छीयों के लिये प्रथम गोलीयों डालतें हैं उन्ही गोलीयोंकी लालचसे मच्छीगरकी जालमें अनेक मछलीयां फंस जाती है. और मृग रागश्रवण कर, हस्ती सुन्दर

इस नदीयोंकी अन्दर पाणी बहुत रहेता है, अगर आधी जंघा प्रमाण पानी हो, कारणात् उसमें उतरणा भी पडे, तो एक पग जलमें और दुसरा पगको उंचा रखना चाहिये. दुसरा पग पाणीमें रखा जावे तब पहिलाका पग पाणीसे निकाल उंचा-रखे, जहांतक पाणीकी बुंद उस पगसे गिरनी बंध हो जाय. इस विधिसे नदी उतरनेका कल्प है. इसी माफिक कुनाला देशमें अरावंती नदी है.

(३५) तृण, तृणपुंज, पलाल, पलालपुज, आदिसे जो मकान बना हुवा है, और उसकी अन्दर अनेक प्रकारके जीवोंकी उत्पत्ति हो, तो असा मकानमें साधु, साध्वीयोंको ठहरना नहीं कल्पे.

(३६) अगर जीवादिरहित हो, परन्तु उभा हुवा मनुष्यके कानोंसे भी नीचा हो, असा मकानमें शीतोष्ण काल ठहरना नहीं कल्पै. कारण उभा होनेपर और क्रिया करते हर समय शिरमें लगता, मकानको नुकशानी होती है.

(३७) अगर कानोंसे उंचा हो, तो शीतोष्ण कालमें ठहरना कल्पै.

(३८) उक्त मकान मस्तक तक उंचा हो तो वहां चातुर्मास करना नहीं कल्पै.

(३९) परन्तु मस्तकसे एक हस्त परिमाण उंचा हो तो साधु साध्वीयोंको उस मकानमें चातुर्मास करना कल्पै.

। इति श्री बृहत्कल्पसूत्रका चौथा उद्देशाका संक्षिप्त सार ।

अर्थ—हे परमानन्दमय ! इस दुनियामें ऐसे भी ढोंगी धूर्त कुमति रमणी और कदाग्रह पुत्रके वसीभूत हुवे मनुष्य देखनेमें आते है कि जिन्होंके हृदयसे अभी तक विषय कषायोंकी वासना दूर नहीं हुइ है। जिन्होंने वर्ष दो वर्ष कष्ट करनेपर भी अन्तिम सवाल करते है कि हमको यह वस्तु चाहती है। हे भक्तो ! तुम मुझको यह वस्तु-पदार्थ दीलादो अगर कितनेक ऐसे भी होते है कि बाह्य देखावमें विषयकषायसे निवृत्ति देखते है परन्तु अन्दरमें जीवाजीवको नहीं जानता है, वन्धहेतु जो मिथ्यात्व, अवृत, कषाय, योग उन्होंको नही जाना है, निर्जराका हेतुको नहीं जाना है, मोक्षका हेतु जो सम्यक्ज्ञान, दर्शन, चारित्रको नहीं जाना है, एसा जो अज्ञानी जीव अष्टांगध्यान जो यम नियम आदिसे ही स्वर्गकी इच्छा करते है। कथञ्चित् कष्टके जोरसे स्वर्गादिकके पौद्गलीक सुख मील भी जाते है तो भी इन्होंसे हुवा क्या ? जो संसारमें भवभ्रमणके तंतु थे उन्होंका तो छेद नहीं होता है। वास्ते महाऋषियोंने स्वसत्ता परसत्तामें अज्ञात लोगोंका उक्त कष्टादि सर्वको अज्ञानदशाकी चेष्टा मात्र मानी है। हे आत्मवीर ! आप पेस्तर सदागमसे प्रेमकर जीवाजीवको समझो। यह जीव कीस कारणसे अजीवके पासमें वन्धा है और कैसे छूट सकता है इन्होंका हेतु-कारणको ठीक ठीक समझके ही यम नियमादि अष्टांगध्यानमे सहज समाधिमें तल्लीन होजावों कि

वादला था पर्वतका आडसे सूर्य नहीं दिखा, परन्तु यह जाना जाता था कि सूर्य अवश्य होगा. तथा उदय हो गया है, इस इरादासे आहार-पानी ग्रहण कीया. बादमें मालुम हुवा कि सूर्य अस्त हो गया तथा अभी उदय नहीं हुवा है, तो उस आहारको भोगवता हो, तो मुंहका मुंहमे हाथका हाथमें और पात्रका पात्रमें रखे, परन्तु एक बिन्दु मात्र भी खावे नहीं, सबको अचित्त भूमिपर परठ देना चाहिये, परन्तु आप खावे नहीं, दुसरेको देवे नहीं, अगर खबर पडनेके बाद आप खावे, तथा दुसरेको देवे तो उस मुनियोंको गुरु चातुर्मासिक प्राय-श्चित्त आवै.

(७) एवं समर्थ शंकावान्.

(८) एवं असमर्थ निःशंक.

(९) एवं असमर्थ शंकावान् । भावार्थ—कोइ आचार्यादिक वैयावच्च के लीये शीघ्रता पूर्वक विहार कर मुनि जा रहा है. किसी ग्रामादिमे सवेरे गोचरी न मिलीथी श्यामको किसी नगरमें गया. उस समय पर्वतका आड तथा बादलमें सूर्य जानके भिक्षा ग्रहण की और सवेरे सूर्योदय पहिले तक्रादि ग्रहण करी हो, ग्रहन कर भोजन करनेको बेठनेके बाद ज्ञात हुवा कि शायद सूर्योदय नहीं हुवा हो अथवा अस्त हो गया हो औसा दुसरोंसे निश्चय हो गया हो तो उस मुंहका, हाथका और पात्रका सब आहारको निर्जीव भूमिपर परठ देनेसे आज्ञाका उल्लंघन नहीं होता है.

कर इन्हीके स्वादको समझो कि आपको कैसा आनन्द होता है इतना ही नहीं बल्कि आपके निज घरमें निधान-खजाना (केवलज्ञान, केवलदर्शन) आपसे प्रगट हो जायगा, ऐसा होनेपर यह पीपासा आपसे मुंह छीपाती फीरेगी अर्थात् कभी भी आपके पास नहीं आवेगी जीससे आत्मा आनन्दमय हो जायगा।

ररा-रात वितित गइ, उगो अब दिनकार।

भानु प्रगट्यो निज घर, दुर भयो अन्धकार ॥२८॥

अर्थ—हे चैतन्य! अनन्तकाल हो गया है कि आप मिथ्यात्वरूपी अन्धकारमें इधर के उधर गोता खा रहे हो, नरकसे तीर्यंच, तीर्यंचसे मनुष्य, मनुष्यसे देव, देवसे तीर्यंच, तीर्यंचसे निगोद इत्यादि अमावास्याकी रात्रीमें आप रमते रमते अनन्त दुःख सहन किया है। हे नाथ! कुमतिने कुच्छ भी कसर नहीं रखी है। एसा कोइ भी लोकाकाश प्रदेश नहीं छोडा है कि आपने उन्ही आकाशप्रदेश पर जन्ममरण नहीं किया हो। परन्तु अब आप इन्ही सदागमके उपासक बने हो और मैं भी आपके लिये पुरण कोशीष करती हूं कि अमावास्याकी रात्री पूर्ण हो गइ है और सम्यक्त्वरूपी सूर्य उदय हो गया है। अब आप अपने अन्तरआतमाका पडलको दूर करो कि आपके निज घरमें इन्ही सूर्यका प्रकाश पडे और सूर्यके प्रकाश पडनेसे आपके निज घरमें जो अनन्त खजाना

(१४ एवं शरीर शुद्धि करते वखत पशु-पत्तीकी इन्द्रियसे अकृत्य कार्य करनेसे भी चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. यह दोनों सूत्र मोहनीय कर्मापेक्षा है. कारण-कर्मोकी विचित्र गति है. वास्ते असे अकृत्य कार्योंके कारणोंको प्रथम ही शास्त्रकारोंने निषेध कीया है.

(१५) साध्वीयोंको निम्नलिखित कार्य करना नहीं कल्पै.

(१६) एकेलीको रहना,

(१७) एकेलीको टटी-पैसाव करनेको जाना

(१८) एकेलीको विहार करना,

(१९) वस्त्ररहित होना,

(२०) पात्ररहित गौचरी जाना,

(२१) प्रतिज्ञा कर ध्यान निमित्त कायाको वोसिरा देना,

(२२) प्रतिज्ञा कर एक पसवा (वा)डे सोना,

(२३) ग्राम यावत् राजधानीसे बाहार जाके प्रतिज्ञापूर्वक ध्यान करना नहीं कल्पै. अगर ध्यान करना हो तो अपने उपासरेकी अन्दर दरवाजा बन्ध कर ध्यान कर सकते हैं.

(२४) प्रतिमा धारण करना,

(२५) निषद्या-जिसके पांच भेद हैं-दोनों पांव बराबर रख बैठना, पांव योनिसे स्पर्श करते बैठना, पांवपर पांव चढाके बैठना, पालटी मारके बैठना, अर्द्ध पालटी मारके बैठना,

(२६) वीरासन करना,

(२७) दंडासन करना,

सलाह है कि आप कुमतिका मुंह कालाकर इसतिफा दे दीजीये और आत्मारामकी साक्षीसे आप दृढ विश्वास करके जो अनन्तकाल तक अव्याबाध आनन्द-सुख देनेवाली "शिवसुन्दरी" के हाथमें हाथ मीलाके उन्हीके शिवमन्दिर पर पधारीये। फीर आपको इन्हीं कुटीलाकुमति जो अनन्ते जीवोंको दासकी माफीक नाटक कराती है उन्होंकी मालुम पड जायगी.

शा-शक्ति सिंहतणी, पिंजर दीधि रोक।
हालत पटकी नादकर, करे न कोइ टोक ॥ ३० ॥

अर्थ—हे मुग्ध! तुझे कर्मोंरूपी पिंजरमें रोक देनेसे क्या मेरे अन्दर अनन्त ज्ञान दर्शन चारित्र वीर्य रूप जो सिंह शक्तिथी उन्होंका कीसीने हरन कर लिया होगा। क्या एसा तुझे भर्म है या तेरे अन्दर शक्ति है उन्होंसे कर्मरूपी पंजरमें अधिक शक्ति है। एसे तुमको भर्म हुवा है या मेरा बल क्षीण हो गया है एसा तुमको भर्म है। इन्हीके सिवाय भी कीसी कीस्मका अगर तुमको भर्म हुवा भी हो तो मैं आपको निःशंक दावाके साथ कहती हूं कि विचारे कर्मोंकी क्या ताकत है कि तेरी शक्तिके सामने भी दृष्टी कर सके। हां, कर्मोंने तुझको पींजरामें रोका है परन्तु हाथल पटकके सिंहनाद करना तो मना नही कीया है तो अब आप अपने असली स्वरूपको स्मरण करो कि मैं एक सिंहोकी गीनतीका सिंह हूं।

(३६) अैसे साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४०) पाटाके शिरपर पागात्रोंका आकार होते है, अैसा पाटापर साधुवोंको वेठना सोना कल्पै.

(४१) साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४२) साधुवोंको नालिका सहित तुंवडा रखना और भोगवना कल्पै.

(४३) साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४४) उघाडी डंडीका राजेहरण (कारणात् १॥ मास) रखना और भोगवना कल्पै.

(४५) साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४६) साधुवोंको डांडी संयुक्त पुंजणी रखना कल्पै.

(४७) साध्वीयोंको नहीं कल्पै.

(४८)साधु-साध्वीयोंको आपसमें लघु नीति (पेसाव) देना लेना नहीं कल्पै. परन्तु कोइ अतिकारन हो, तो कल्पै भी. भावार्थ—किसी समय साधु एकेला हो और सर्पादिका कारण हो, अैसे अवसरपर देना लेना कल्पै भी.

(४६) साधु साध्वीयोंको प्रथम प्रहरमे ग्रहन कीया हुवा अशनादि आहार, चरम प्रहरमे रखना नहीं कल्पै. परन्तु अगर कोइ अति कारन हो, जैसे साधु बिमार होवे और बतलाया हुवा भोजन दुसरे स्थानपर न मिले. इत्यादि अपवादमें कल्पै भी सही.

दुर नही रहता है अर्थात् पांचोद्रव्य आपकी हाजरी भरते है। परन्तु आपतो इन्ही पांचो द्रव्यके ठाकुर हो वास्ते किसीभी द्रव्यकी नोकरी नही करते हो। तो क्या आप अपने नोकरोंके रोकनेपर कभी रूक सक्ते हो। हे निजानन्द! कभी आपको यह भर्म होता हो कि नोकर असंख्य है और मै अकेला हुं तो इन्होंके लिये मैं आपको एक एसा यंत्र देती हूं कि आप अपनी या शेष पंचद्रव्योंकी शक्तिरूपी तत्त्वका विचार कर सक्ते हो। उन्ही यंत्रका नाम शास्त्रकारोंने 'नय' रखा है। वह नय मुख्य-दो प्रकारका है (१) द्रव्यास्तिकनय (२) पर्यायास्तिकनय जिस्में जो द्रव्यको ग्रहन करते है उन्होंको द्रव्यास्तिकनय कहते है जिन्होंका चार भेद है यथा-नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहार-नय, ऋजोसूत्रनय, और द्रव्यके पर्यायको ग्रहन करे उन्होंको पर्यायास्तिकनय कहते हैं जिन्होंका तीन भेद है, शब्दनय संभी-रूढनय और एवंभूतनय एवं कुल मीलके ७ नय है इन्होका स्वभाव भिन्न भिन्न है।

(१) नैगमनय-सामान्यार्थको ग्रहण करते हूवे एकांशको वस्तु माने।

(२) संग्रहनय-सत्ताको ग्रहणकर सामान्य वस्तुकोभी वस्तु माने।

(३) व्यवहारनय-दीसती वस्तुकी प्रवृत्तिको वस्तु माने।

(४) ऋजोसूत्रनय-वर्तमान वरताति वस्तुको वस्तु माने।

सबसे पूछना चाहिये. कारण-फिर ज्यादा हो तो परठनेमें महान् दोष है. वास्ते उणोदरी तप करना.

॥ इति श्री वृहत्कल्प सूत्रका पांचवा उद्देशाका संक्षिप्त सार ॥

—०००—

छट्ठा उद्देशा.

(१) साधु-साध्वीयों किसी जीवोंपर

(१) अछता-झूठा कलंक देना,

(२) दुसरेकी हीलना-निंदा करना,

(३) किसीका जातिदोष प्रगट करना,

(४) किसीकोंभी कठोर वचन बोलना,

(५) गृहस्थोंकी माफिक हे माता, हे पिता, हे मामा, हे मासी-इत्यादि मकार चकारादि शब्द बोलना.

(६) उपशमा हुवा क्रोधादिककी पुनः उदीरणा करनी यह छे वचन बोलना साधु-साध्वीयोंको नहीं कल्पै. कारन-इससे परजीवोंको दुःख होता है, साधुकी भाषासमितिका भंग होता है.

(२) साधु-साध्वीयों अगर किसी दुसरे साधुवोंका दोषको जानते हो, तोभी उसकी पूर्ण जाच करना, निर्णय करना, गवाह करना, बादहीमे गुर्वादिकको कहना चाहिये. अगर ऐसा न करता हुवा एक साधु दुसरे साधुपर आक्षेप कर देवे, तो गुर्वादिकको जानना चाहियेकि आक्षेप करनेवालेको प्राय-

(४) भाव महावीर-सिद्धार्थ राजा और त्रीसलाराणी के पुत्र तीर्थ रुप होनेसे।

इसी मार्फीक धर्मास्ति आदि षट् द्रव्यपर भी निक्षेपा लगा लेना चाहिये। अब विशेष ज्ञान होनेके लिये प्रमाण बतलाते हैं। वह प्रमाण च्यार प्रकारके है। प्रत्यक्ष प्रमाण, आगम प्रमाण, अनुमान प्रमाण, उपमा प्रमाण, जिस्मे प्रत्यक्ष प्रमाणका दोय भेद है (१) इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण; (२) नोइन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण। जिस्में इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण जो कि इन्द्रियद्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान होना कि यह वस्तु एसी है जिन्होंका पांच भेद है यथा-श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय। और नोइन्द्रिय प्रत्यक्षज्ञान जो कि इन्द्रियकी अपेक्षा विगर ज्ञान होना उन्होंका दोय भेद है। (१) सर्वसे (केवलज्ञान) (२) देशसे मनःपर्यवज्ञान, अवधिज्ञान और आगम प्रमाणके १२ भेद है। आचारांगसूत्र, सूयगडायांगसूत्र, स्थानायांग, समवायांग, भगवती, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तगडदशांग, अनुत्तरोववाइ, प्रश्न व्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टीवाद तथा दृष्टीवादके विभागरुप उपांगादि आगम है वह सब आगम प्रमाण है तथा अनुमान प्रमाणके तीन भेद है। पुव्वं, सासवं, दिठ्ठिसामं, जिस्में अपना सजन दीर्घकालसे मीलने पर तीलमसादि के अनुमानसे पहेचाने उसे 'पुव्वं' कहते है तथा सासवंके पांच भेद है।

गृहस्थोंका सर्व योग सावद्य है, वास्ते गृहस्थोंसे नहीं निकल-वाना, धर्मबुद्धिसे साध्वीयोंसे नीकलाना चाहिये. कारन-ऐसा कार्यतो कभी पडता है. अगर गृहस्थोंसे काम करानेमें छुट होगा, तो आखिर परिचय बढनेका संभव होता है.

(४) साधुके आँखों (नेत्रों) मे कोइ तृण, कुस, रज, बीज या सुक्ष्म जीवादि पड जावे, उस समय साधु निकाल-नेमें असमर्थ हो, तो पूर्ववत् साध्वीयों निकाले, तो जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं होता है. (कारणवशात्) एवं (५–६) दोय अलापक साध्वीयोंके कांटादि या नेत्रोंमे जीवादि पड जानेपर साध्वीयों असमर्थ हो तो, साधु निकाल सक्ता है, पूर्ववत्.

(७) साध्वी अगर पर्वतसे गिरती हो, विषम स्थानसे पडती हो, उस समय साधु धर्मपुत्री समज, उसको आलंबन दे, आधार दे, पकड ले, अर्थात् संयम रक्षण करता हुवा जिनाज्ञाका उल्लंघन नहीं होता है. अर्थात् वह जिनाज्ञाका पालन करता है.

(८) साध्वीयों पाणी सहित कर्दममें या पाणी रहित कर्दममें खुंची हो, आप बहार निकलनेमें असमर्थ हो, उस साधु धर्मपुत्री समज हाथ पकड बाहार निकाले तो भग-वानकी आज्ञा उल्लंघन नहीं करे, किन्तु पालन करे.

(९) साध्वी नौकापर चढती उतरती, नदी में डूबती को साधु हाथ पकड निकाले तो पूर्ववत् जिनाज्ञाका पालन करता है.

अर्थ—हे सदानन्द प्रीतमजी ! जीस रथपर बैठके अनन्ते जीव निजावासमें पहुंच गये है वह ही रथ आज आपके लिये तैयार किया है। इन्हीका परिचय स्थुलदृष्टिसे आप कर लिजिये। जैसे जैनशासनरूपी रथ वडा ही मजबुत है कि जिन्होंकी तुलना कोइ भी मतवादी कर नहीं सक्ता है और दोनों धोरी अर्थात् दोनों बलद इतनी शीघ्र गतिवाला हैं कि जिन्होंके सामने कीसी प्रकारके सवारोंका वेग काममें नहीं आता है। आपके सुसराजी (मोह) के लश्करमें अनन्ते सुभट (कर्मवर्गणायें) है परन्तु आप जो उक्त रथ द्वारा एकेक सुभटको अलग अलग पकडना चाहते हो तो उन्हीको पकड सक्ते हो। क्यों कि इन्ही धर्मराजाके धोरी सिवाय इस दुनियामें इन्ही अनन्ते सुभटोंको अलग अलग पकडनेवाला कोइ भी नहीं है। हे स्वामिन् ! एक पदार्थमें अनन्त धर्म है उन्होंको सापेक्ष स्याद्वादसे ही जान सक्ते हैं न की एकान्त पक्षी। जैनशासनकी गंभीरता और वस्तु धर्म प्रतिपादन शैली है तो एक स्याद्वादमें ही है। जैसे एक वस्तुमें एक ही समय स्वगुणकी अस्ति है उसी समय परगुणकी नास्ति है शास्त्रकारोंने इन्होंके ७ भांगे किये है।

(१) स्यात् अस्ति–स्वगुणापेक्षा अस्ति है।

(२) स्यात् नास्ति–उन्ही समय परगुणापेक्षा नास्ति है।

(३) स्यात् अस्ति नास्ति–दोनों गुण एक समयमें है।

इच्छा लोलुपता अर्थात् तृष्णाको वढाना, यह सर्व कार्योंका पलिमन्थु है. (६) तप-संयमादि कृत कार्यका वार वार निदान (नियाणा) करना, यह मोक्ष मार्गका पलिमन्थु है. अर्थात् यह छे वातों साधुवोंको नुकशानकारी है. वास्ते त्याग करना चाहिये.

(२०) छे प्रकार के कल्प है. (१) सामायिक कल्प, (२) छेदोपस्थापनीय कल्प, (३) निवट्टमाण, (४) निवट्टकाय, (५) जिनकल्प, (६) स्थविरकल्प इति.

इति श्री वृहत्कल्पसूत्र—छट्ठा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

इति श्री वृहत्कल्पसूत्रका संक्षिप्त सार समाप्त.

योंका उपशम होता है–इतनेपर दयावन्त, कोमल हृदयवाला चैतन्य इन्ही दुष्टोंपर रहीमतालाको छोड देते है और आप इग्यारवे गुणस्थानवाले उपशान्त वीतरागी हो जाते है । फीर वह धूर्त मोहके सर्व दूत एकत्र होके चैतन्यको प्रथम गुणस्थानके काराग्रहरूपी निगोद तक पहूंचा देते है, वास्ते आप इन्ही धूर्तवाजीसे वचके सव शत्रुवों (कर्मो) का शिर छेदते हुवे आठवां गुणस्थानसे जो आपके निजावास पहूंचनेकी चपकश्रेणीसे आरूढ होके शत्रुवोंका शिरछेदन करते हुवे सिधे ही वारहवां गुणस्थानपर चले जाना । वहांपर तुटे लंगडे विलकुल कमजोर तीन उपराजा वेठे हुवेको एक हुंकार शब्दसे गीराके आप अपने निजसत्ता (केवलज्ञान) को प्राप्त कर लेना यह मेरी अन्तिम अर्ज है वास्ते आप कृपा कर स्वीकार कीजिये ।

दुहा–हाः इति खेद है, हार्यो रत्न अमूल्य ।
सुमति तु प्रसंगसे, चैतन्य भयो अतूल्य ॥ ३३ ॥

अर्थ–सुमति सखीके हृदयकी हितशिक्षा द्वारा चैतन्य अपनी शुद्ध दशाका भान करता हुवा जेसे कोइ मनुष्य नसाके अन्दर क्रोडो द्रव्य खो देनेके वादमें शुद्ध दशा आनेसे निःश्वासके साथ खेद करता है इसी माफीक चैतन्यने भी अपने अनन्त भवोंमें आत्मशक्तिको मोह नसामें खो दीथी परन्तु सुमतिसखी द्वारा अपना हाल सुनते ही वडा भारी निःश्वास लेते हूवे मुर्च्छित हुवा तव सुमतिने अश्वासना देके सावचेत किया । तव

(५) रत्नत्रयादिसे वृद्ध जनोंके सामने बोले, अविनय करे तो अस० दो०

(६) स्थविर मुनियोंकी घात चिंतवे, दुर्ध्यान करे तो अस० दोष०

(७) प्राणभूत जीव–सत्त्वकी घात चिंतवे, तो अस० दोष.

(८) किसीके पीछे अवगुण–वाद बोलनेसे अस० दोष.

(९) शंकाकारी भाषाको निश्चयकारी बोलनेसे अस० दोष.

(१०) वार वार क्रोध करनेसे अस० दोष.

(११) नया क्रोधका कारण उत्पन्न करनेसे अस० दोष.

(१२) पुराणे क्रोधादिकी उदीरणा करनेसे अस० दोष.

(१३) अकालमे सज्झाय करनेसे अस० दोष.

(१४) प्रहर रात्रि जानेके बाद उंच स्वरसे बोले तो अस० दोष लगे.

(१५) सचित्त पृथ्व्यादिसे लिप्त पावोंसे आसनपर बैठे तो अस० दोष लगे.

(१६) मनसे झूझ करे किसीका खराब होना इच्छे तो अस० दोष.

(१७) वचनसे झूझ करे, किसीको दुर्वचन बोले तो अस० दोष लगे.

(१८) कायासे झूझ करे अंग मोडे कटका करे, तो अस० दोष.

(१९) सूर्योदयसे अस्ततक खाना, खानेमे मस्त रहे तो अस० दोष.

अर्थ—चैतन्यके एसे सुवाक्य श्रवणकर सुमतिसखी आनन्दकी अवाज करती हुइ बोली कि हे प्राणेश्वर! आज मैं अपना टाइमको सफल मानती हूं कारण कि मैं एक आपकी दासी तूल्य हू परन्तु आपने मेरे वचनोंपर आरूढ होके अपनी स्वसत्ताको प्रगट करदी है वस यह ही मेरा मुख्य उद्देश था। परन्तु हे स्वामिन् अब मेरेको निःशंक होके कह देना उचित है कि आप मनोर्थसेहि कार्यको सिद्ध करना चाहते हो तो एसा मैंने हजारो नही वलके असंख्य चैतन्योंको देखा है कि कीसी हितकारी शिक्षाको श्रवणकर मनोर्थ कर लेते है परन्तु पुरुषार्थकी वखत पीछे हट जाते हुवे फीर भी कुमतिकी शय्याका सेवन कर लेते है वास्ते आपको अगर सच्चा रंग लगा हो तो मेरी अर्ज सुनों। यह नर देह बडा ही नाजुक है और क्षीण क्षीणमें आयुष्य जैसे पतंगका रंग तथा पाणीका वेगकी माफीक क्षय हो रहा है। इसीमें न जाने मोहका दूत 'काल' कीस समय धाड पाडेगा। वास्ते लो मैं भी आपके पुरुषार्थ करनेमें अच्छी अच्छी सलाहोंकी मदद देनेको तैयार हूं आप पुरुषार्थ रूपी गजपे आरूढ हो जाइये, हे स्वामिन्! मेरा भी दील हो रहा है कि एसे पवित्र पुरुषोंके साथ ही शिवमन्दिर (मोक्ष)की सुख शय्यामें आनन्दका अनुभव करुं इसलिये हे वालमजी! आप देर न करे अर्थात् पुरुषार्थ कर कर्म-शत्रुवोंका पराजय जल्दी ही कर मोक्षमें चलें मैं भी

जबरदस्तीसे लाया हुवा, भागीदारकी विगर मरजीसे लाया हुवा, और सामने लाया हुवा—औसे पांच दोष संयुक्त आहार—पाणी भोगनेसे सबल दोष लगे.

(७) प्रत्याख्यान कर वार वार भंग करनेसे सबल दोष.

(८) दीक्षा लेके छे मासमें एक गच्छसे दुसरे गच्छमें जानेसे सबल दोष लगे.

(९) एक मासमें तीन उदग (नदी) लेप+लगानेसे सबल दोष.

(१०) एक मासमें तीन मायास्थान सेवे तो सबल दोष.

(११) शय्यातरके वहांका अशनादि भोगनेसे सबल दोष.

(१२) जानता हुवा जीवको मारनेसे सबल दोष लगे.

(१३) जानता हुवा जूठ बोले तो सबल दोष.

(१४) जानता हुवा पृथ्व्यादिपर बैठ—सोवे तो सबल दोष लगे.

(१६) स्नाघ पृथ्व्यादि पर बैठ, सोवे, सज्झाय करे तो सबल दोष.

(१७) त्रस, स्थावर, तथा पांच वर्णकी नील, हरी अंकुरा यावत् कलोडीयें जीवोंके झालोंपर बैठ, सोवे तो सबल दोष लगे.

(१८) जानता हुवा कची वनस्पति, मूलादिको भोगनेसे सबल दोष.

(१९) एक वरसमें दश नदीके लेप लगानेसे सबल दोष.

+ लेप—देखो कल्पसूत्रमें.

अन्राजोंसे अज्ञान विचारा भागता फीर रहा है। तो आप क्यों इधर उधर फीरके इन्ही कुमति द्वारा आपका अपमान कराते हैं। हे बन्धु ! मेरी तो आपसे नम्रतापूर्वक अर्ज है कि आप किसीके फन्दमें न पडके आप अपना स्वकार्य ही साधन करो। मै एसा भी सुनाति हुं कि आप कभी कभी कुमतिके बच्चोंको गुप्तपणे अपने निजावासमें स्थान देते हो अर्थात् उपशमभाव जो कि विपाकों तो ज्ञान ही है किन्तु प्रदेशों अज्ञान भी रहता है उन्होंको चयोपशमीक ज्ञान कहते हैं तो आप जैसे निःस्पृहीयोंको यह मायावृत्ति क्यों होना चाहिये। हे वीर ! आप सर्वथा प्रकारे अपना ज्ञान सुन्दर बनाओं अर्थात् चायकभाव आठवां गुणस्थानसे चपकश्रेणी तक आ पहुंचो और हम और हमारे प्रीतमजी निवृत्तिपुरमें जानेवाले है वास्ते आप भी साथमें चलीये और हमको रस्ता ठीक ठीक बतलाइये। बस ! यह सुमतिका अमृतमय वचन श्रवण करते ही ज्ञानने अपने मन्दिरके अन्दर जो कुच्छ प्रदेशों अज्ञानदलके थे उन्हीको सुमतिके सपाटेमें ही बिलकुल नष्ट कर चैतन्य और सुमतिके साथ आठवें गुणस्थान चपकश्रेणी चढके नववे गुणस्थानमे दशवां और दशवांसे सीधा ही बारहवे गुणस्थानपर चले गये। वहांपर ज्ञानावर्णिय. दर्शनावर्णिय और अन्तराय इन्ही तीनों योद्धोंको एक ही चोटमें चय कर तेरवे गुणस्थान पहुंचा दीये। वहां जा के ज्ञान

(१२) कोइ विदेशी श्रावक आया हुवा है, गुरु महाराजसे वार्तालाप करनेके पेस्तर उस विदेशीसे शिष्य बात करे तो आशातना.

(१३) रात्रि समय गुरु पूछते हैं—भो शिष्यो ! कौन सोते कौन जागते हो ? शिष्य जाग्रत होने परभी नहीं बोले. भावार्थ—शिष्यका इरादा हो कि अबी बोलुंगा तो लघुनीति परठनेको जाना पडेगा. आशातना.

(१४) शिष्य गोचरी लाके प्रथम लघु साधुवोंको बतलावे पीछे गुरुको बतलावे तो आशातना.

(१५) एवं प्रथम लघु मुनियोंके पास गौचरी की आलोचना करे पीछे गुरुके पास आलोचना करे तो आशातना.

(१६) शिष्य गोचरी लाके प्रथम लघु मुनियोंको आमंत्रण करे और पीछे गुरुको आमंत्रण करे तो आशातना.

(१७) गुरुको विगर पूछे अपना इच्छानुसार आहार साधुवोंको भेट देवे, जिसमे भी किसीको सरस आहार और किसीको नीरस आहार देवे तो आशातना.

(१८) शिष्य और गुरु साथमे भोजन करनेको बैठे. इसमे शिष्य अपने मनोज्ञ भोजन कर लेवे तो आशातना.

(१९) गुरुके बोलानेसे शिष्य न बोले तो आशातना.

(२०) गुरुके बोलानेपर शिष्य आसनपर बैठा हुवा उत्तर देवे तो आशातना.

परिपूर्ण है। इसी नगरमें संवत् १६७८ के माघ मासके कृष्ण-पक्षकी तीज सोमवारके रोज अपने मनोवंच्छित फलोंको प्राप्त किया है। अर्थात् इन्ही ककाबत्तीसीको निर्विघ्नपणे समाप्त करी है।

॥ कलस ॥

पार्श्वनाथ वर पाट सोहे। शुभदत्त गीरुवा गणधरो।
हरिदत्तने वली आर्य समुद्र। केशी गणधर हितकरो॥
सयंप्रभने रत्नप्रभसूरी। उपकेशगच्छ अलंकरो।
ज्ञानसुन्दर दास जिनका। सदा शिव संपत्त वरो॥ १॥

अर्थ-श्री त्रेवीशमा तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ प्रभुके पाटपर श्री शुभदत्त नामके गणधर च्यार ज्ञान और चौद पूर्व धारक अनेक गुण समूहसे सुशोभित हूवे थे। उन्हींके पाटपर श्री हरिदत्त नामके आचार्य आगम समुद्रके पारगामि हुवे थे। उन्हींके पाट पर श्रीआर्यसमुद्रसूरि महाराज हूवे थे। इन्होंके शासनमें बुद्धकीर्ति साधुसे बौधधर्म चलाथा। इन्होंके पाटपर श्री केशीश्रमणाचार्य हूवे थे उन्ही महान प्रभाविक आचार्य महाराजने प्रदेशी आदि १२ राजाओंको प्रतिबोध दे के जैनधर्ममें स्थापन किये थे। उन्ही के पाटपर श्री सयंप्रभसूरि हूवे। उन्ही महा ऋषियोंके चरण-कमलोंकी सेवा अनेक देवदेवीयां करती थी जिसमें भी चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती और सिद्धायिका ये मुख्यथी। इन्ही आचार्यश्रीने भीनमाल नगरमें ६०००० घरोंको प्रतिबोध दे के श्री-

(३३) गुरुके आसनको पाव आदि लगनेपर खमासना दे अपना अपराध न खमावे तो शिष्यको आशातना लगती है.

इस तेतीस (३३) आशातना तथा अन्य भी आशातनासे बचना चाहिये. क्योंकि आशातना बोधिबीजका नाश करनेवाली है. गुरुमहाराजका कितना उपकार होता है, इस संसारसमुद्रसे तारनेवाले गुरुमहाराज ही होते है.

॥ इति दशाश्रुतस्कन्ध तीसरा अध्ययनका संक्षिप्त सार ॥

---

(४) चौथा अध्ययन.

आचार्य महाराजकी आठ संप्रदाय होती है. अर्थात् इस आठ संप्रदाय कर संयुक्त हो, वह आचार्यपदको योग्य होते है. वह ही अपनी संप्रदाय (गच्छ) का निर्वाह कर सक्ते है. वह ही शासनकी प्रभावना-उन्नति कर सक्ते है. कारण-जैन शासनकी उन्नति करनेवाले जैनाचार्य ही है. पूर्वमें जो बडे २ विद्वान् आचार्य हो गये, जिन्होंने शासनसेवाके लिये कैसे २ कार्य किये है, जो आजपर्यंत प्रख्यात है. विद्वान् आचार्यों विना शासनोन्नति होनी असंभव है. इसलिये आचार्योंमें कौन २ सी योगता होनी चाहिये और शास्त्रकार क्या फरमाते है, वही यहांपर योग्यता लिखी जाती है. इन योग्यताओंके होनेही से शास्त्रकारोंने आचार्यपदके योग्य कहा है. यथा (१) आचार संपदा, (२) सूत्र संपदा, (३) शरीर

अथ श्री

व्याख्याविलास ।

भाग २ जो.

संघोऽयं गुणरत्नरोहणगिरिः संघः सतां मंडनं ।
संघोऽयं प्रबल प्रताप तरणिः संघो महा मंगलम् ।।
संघोऽभीप्सितदानकल्पविटपी संघो गुरुणां गुरुः ।
संघः सर्वजमाधिराजमहितः संघश्चिरं नन्दतात् ।।१।।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्न गुप्तं धनं ।
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।।
विद्या बन्धुजनो विदेश गमने विद्या परं दैवतं ।
विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं विद्याविहिनः पशुः ।।२।।

विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्यक्षये चाश्रयो ।
धेनुः कामदुघा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयं च सा ।।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं ।
तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरू ।। ३ ।।

(३) शरीर संपदाके चार भेद. यथा–

(१) प्रमाणोपेत (उंचा पूरा) शरीर हो. (२) दृढ सं-हननवाला हो. (३) अलज्कत शरीर हो, परिपूर्ण इंद्रियांयुक्त हो. (४) हस्तादि अंगोपांग सौम्य शोभनीक हो, और जिनका दर्शन दूसरोंको प्रियकारी हो. हस्त, पादादिमें अच्छी रेखा वा उचित स्थानपर तील, मसा लसण विगेरे हो.

(४) वचन संपदाके चार भेद. यथा–

(१) आदेय वचन–जो वचन आचार्य निकाले, वह निष्फल न जाय. सर्वलोक मान्य करे. इसलिये पहिलेहीसे विचार पूर्वक बोले. (२) मधुर वचन, कोमळ, सुस्वर, गंभीर और श्रोतारंजन वचन बोले. (३) अनिश्रित–राग, द्वेषसे रहित द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव देखकर बोले. (४) स्पष्ट वचन–सब लोक समझ सकै वैसा वचन बोले परन्तु अप्रतीतकारी वचन न बोले.

(५) वाचना संपदाके चार भेद. यथा–

(१) प्रमाणिक शिष्यको वाचना देनेकी आज्ञा दे [वाचना उपाध्याय देते हैं] यथायोग. (२) पहिले दी हुइ वाचना अच्छी तरहसे प्रणमावे. उपराउपरी वाचना न दे. क्योंकि ज्यादा देनेसे धारणा अच्छी तरह नहीं हो सक्ती. (३) वाचना लेनेवाले शिष्यका उत्साह वढावे, और वाचना

काकचेष्टा वकध्यानं, श्वाननिद्रा तथैव च ॥
स्वल्पाहारः स्त्रियास्त्यागी, विद्यार्थी पञ्चलक्षणः ॥१४॥

पठतो नास्ति मूर्खत्वं, जपतो नास्ति पातकम् ॥
मौनिनः कलहो नास्ति, न भयं चास्ति जाग्रतः ॥१५॥

सुश्रूषा श्रवणं चैव, ग्रहणं धारणं तथा ॥
ऊहापोहोऽर्थविज्ञानं, तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥ १६ ॥

विद्या विनयतोग्राह्या, पुष्कलेन धनेन वा ॥
अथवा विद्यया विद्या, चतुर्थो नैव विद्यते ॥ १७ ॥

सुखार्थी त्यजते विद्यां, विद्यार्थी त्यजते सुखम् ॥
सुखार्थिनः कुतोविद्या, सुखं विद्यार्थिनः कुतः॥ १८ ॥

आलस्येन हता विद्या, आलापेन कुलस्त्रियः ॥
अल्पवीजं हतं क्षेत्रं, हतं सैन्यमनायकम् ॥ १९ ॥

आरोग्यबुद्धिविनयोद्यमशास्त्ररागाः ।
पञ्चान्तराः पठनसिद्धिकरा भवन्ति ॥
आचार्यपुस्तकनिवाससुसंगभिक्षा ।
वाह्यास्तु पञ्चपठनं परिवर्धयन्ति ॥ २० ॥

न च राजभयं न च चौरभयं, इह लोकसुखं परलोकहितम् ॥
वर कीर्तिकरं नरदेवनतं, श्रमणत्वमिदं रमणीयतरम् ॥ २१ ॥

येषां न विद्या न तपो न दानं, न चापि शीलं न गुणोऽपि धर्मः ॥
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता, मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥२२॥

(१) पहिलें अपनी शक्तिका बिचार करे, और देखे कि मैं इस वादीका पराजय कर सकता हुं या नहीं ? मुझमें कितना ज्ञान है और वादीमें कितना है ? इसका बिचार करे. (२) यह क्षेत्र किस पक्षका है. नगरका राजा व प्रजा सुशील है या दुःशील है. और जैनधर्मका रागी है वा द्वेषी है ? इन सब बातोंका बिचार करे. (३) स्व और परका विचार करे. इस विषयमें शास्त्रार्थ करता हुं परन्तु इसका फल (नतीजा) पीछे क्या होगा ? इस क्षेत्रमें स्वपक्षके पुरुष कम है, और परपक्षवाले ज्यादे है, वे भी जैनपर अच्छा भाव रखते है, या नहीं ? अगर राजा और प्रजा दुर्लभबोधि होगा तो शास्त्रार्थ करनेसे जैनोंका इस क्षेत्रमें आना जाना कठिन हो जायगा. ऐसी दशामें तीर्थादिकी रक्षा कौन करेगा ? इत्यादि बातोंका विचार करे. (४) वादी किस विषयमें शास्त्रार्थ करना चाहता है. और उस विषयका ज्ञान अपनेमें कितना है ? इसको विचार कर शास्त्रार्थ करे. ऐसे विचार पूर्वक शास्त्रार्थ कर वादीका पराजय करना.

(८) संग्रह संपदाके चार भेद. यथा—

(१) क्षेत्र संग्रह—गच्छके साधु ग्लान, वृद्ध, रोगी आदिके लीये क्षेत्रका संग्रह याने अमुक साधु उस क्षेत्रमें रहेगा, तो वह अपनी संयम यात्राको अच्छी तरहसे निर्वेहा सकेगा और श्रोतागणकोभी लाभ मिलेगा. (२) शीतोष्ण या वर्षा-

यस्मिन् गृहे सदा नार्या, मूलकः पच्यते जनैः ॥
स्मशान तुल्यं तद्वेश्म, पितृभिः परिवर्जितम् ॥ ३१ ॥

विद्यावृद्धास्तपो वृद्धा, ये च वृद्धा वहुश्रुताः ॥
सर्वे ते धनवृद्धस्य, द्वारि तिष्ठन्ति किङ्कराः ॥ ३२ ॥

न ज्ञानतुल्यः किल कल्पवृक्षो, न ज्ञानतुल्यः किल कामधेनुः ॥
न ज्ञानतुल्यः किल कामकुम्भो, ज्ञानेन चिंतामणिरप्यतुल्यः ॥३३॥

निद्रा मूलमनर्थानां, निद्रा श्रेयो विघातिनी ॥
निद्रा प्रमादजननी, निद्रा संसारवर्द्धिनी ॥ ३४ ॥

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च ॥
आहारे च विहारे च, त्यक्तलज्जः सुखी भवेत् ॥३५॥

यदि वहति त्रिदंण्डं नग्नमुण्डं जटां वा ।
यदि वसति गुहायां वृक्षमूले शिलायां ॥
यदि पठति पुराणं वेदसिद्धान्ततत्त्वं ।
यदि हृदयमशुद्धं सर्वमेतन्न किञ्चित् ॥ ३६ ॥

अपरीक्षितं न कर्तव्यं, कर्तव्यं सुपरीक्षितम् ॥
पश्चाद्भवति सन्तापो, ब्राह्मणी नकुलं यथा ॥ ३७ ॥

हंसः श्वेतो वकः श्वेतो, को भेदो वक हंसयोः ॥
नीरक्षीरविभागे तु, हंसो हंसो वको वकः ॥ ३८ ॥

नविनोमधुमासेन, अन्तरं पिककाकयोः ॥
वसन्तश्च पुनः प्राप्ते, काकः काकः पिकः पिकः ॥३९॥

(४) योग्यता प्राप्त होनेसे अकेला पडिमा धारण करे, करवावे, और उत्तेजन दे. क्यों कि जो वस्तुओंकी प्राप्ति होती है, वह अकेलेमें ध्यान, मौनादि उग्र तपसे ही होती है.

(२) सूत्र विनयके ४ भेद.

(१) सूत्र या सूत्रकी वाचना देनेवालोंका बहु मानपूर्वक विनय करे, क्यों कि विनय ही से शास्त्रोंका रहस्य शिष्यको प्राप्त हो सकता है. (२) अर्थ और अर्थदाताका विनय करे. (३) सूत्रार्थ या सूत्रार्थको देनेवालोंका विनय करे. (४) जिस सूत्र अर्थकी वाचना प्रारंभ करी हो, उसको आदि-अंत तक संपूर्ण करे.

(३) विक्षेपणा विनयका ४ भेद.

(१) उपदेश द्वारा मिथ्यात्वीके मिथ्यात्वको छुडावे. (२) सम्यक्त्वी जीवको श्रावक व्रत या संसारसे मुक्त कर दीक्षा दे. (३) धर्म या चारित्रसे गिरतेको मधुर वचनोंसे स्थिर करे. (४) चारित्र पालनेवालोंको एषणादि दोषसे बचा कर शुद्ध करे.

(४) दोष निग्घायणा विनयके ४ भेद.

(१) क्रोध करनेवालेको मधुर वचनसे उपशांत करे. (२) विषयभोगकी लालसावालेको हितोपदेश करके संयमगुण और वैषयिक दोष बता कर शांत करे. (३) अनशन किया

अनारंभो मनुष्याणां, प्रथमं बुद्धिं लक्षणम् ॥
आरब्धस्यान्तगमनं, द्वितीयं बुद्धिलक्षणम् ॥ ५० ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां, यस्यैकोऽपि न विद्यते ॥
अजागलस्तनस्यैव, तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ ५१ ॥

एकं दृष्ट्वा शतं दृष्ट्वा, दृष्ट्वा पञ्चशतान्यपि ॥
अतिलोभो न कर्तव्य, श्चक्रं भ्रमति मस्तके ॥ ५२ ॥

असङ्गसङ्गदोषेण सत्याश्च मतिविभ्रमः ।
एकरात्रप्रसङ्गेन, काष्ठघण्टाविडम्बना ॥ ५३ ॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ॥
अप्रियस्य च पथ्यस्य परिणामः सुखावहः ॥ ५४ ॥

अल्पतयोश्चलत्कुम्भो ह्यल्पदुग्धाश्च धेनवः ॥
अल्पविद्यो महागर्वी कुरूपो बहु चोष्टितः ॥ ५५ ॥

उद्योगः कलहः कण्डूर्द्यूतं मद्यं परास्त्रियः ॥
आहारो मैथुनं निद्रा, सेवनात्तु त्रिवर्धते ॥ ५६ ॥

आचारोभावोधर्मो नृणां श्रेयस्करो महान् ॥
इहलोके पराकीर्त्ति, परत्र परमं सुखम् ॥ ५७ ॥

मातृवत्परदारांश्च, परद्रव्याणि लोष्टवत् ॥
आत्मवत्सर्वभूतानि, यः पश्यति सः पश्यति ॥ ५८ ॥

आहारनिद्राभय मैथुनानि, सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम् ॥
एकोविवेकोह्यधिकोमनुष्ये, तेनैव हीनाः पशुभिः समानाः ॥५९॥

(४) गुरुमहाराज या अन्य साधुवोंके कार्यमें नम्रता-पूर्वक प्रवर्ते.

(३) वण्ण संजलणाता विनयके ४ भेद.

(१) आचार्यादिका छता गुण दीपावे. (२) आचार्यादिका अवगुण बोलनेवालेको शिक्षा करे (वारे) याने पहिले मधुर वचनसे समझावे और न माननेपर कठोर वचनसे तिरस्कार करे, परन्तु आचार्यादिका अवगुण न सुने. (३) आचार्यादिके गुण बोलनेवालेको योग्य उत्तेजन दे या साधुको सूत्रार्थकी वाचना दे. (४) आचार्यके पास रहा हुवा विनीत शिष्य हमेशां चढते परिणामसे संयम पाले.

(४) भारपच्चरुहणाता विनयके ४ भेद.

(१) संयम भार लीया हुवा स्थितोस्थित पहुंचावे (जावजीव संयममें रमणता करे), और संयमवंतकी सार-संभाल करे. (२) शिष्यको आचार-विचारमें प्रवर्तावे, अकार्य करतेको वारे और कहे-भो शिष्य ! अनंत सुखका देनेवाला यह चारित्र तेरेको मिला है, इसकी चिन्तामणि रत्नके समान यतना कर, प्रमाद करनेसे यह अवसर निकल जायगा-इत्यादिक मधुर वचनोंसे समझावे. (३) स्वधर्मी, ग्लान, रोगी, वृद्धकी वैयावच्च करनी. (४) संघ या साधर्मीकमे क्लेश न करे, न करावे, कदाचित् क्लेश हो गया हो तो मध्यस्थ (कोइका पक्ष न करते) होकर क्लेशको उपशांत करे. इति.

गत शोको न कर्तव्यो, भविष्य नैव चिन्तयेत् ॥
वर्तमानेषु कार्येषु वर्तयन्ति विचक्षणाः ॥ ७० ॥

लक्ष्मीर्लक्षणहीनेषु, कुलहीने सरस्वती ॥
कुपात्रे रमते नारी, गिरौ वर्षति माधवः ॥ ७१ ॥

मात्रा समं नास्ति शरीर पोषणं ।
विद्या समं नास्ति शरीर भूषणम् ॥
भार्या समं नास्ति शरीर तोषणं ।
चिन्ता समं नास्ति शरीर शोषणम् ॥ ७२ ॥

अर्थातुराणां न गुरुर्नबन्धुः, कामातुराणां न भयं न लज्जा ॥
क्षुधातुराणां न रुचिर्न पक्वं, चिन्तातुराणां न सुख न निद्रा ॥७३॥

ज्वरादौ लङ्घनं प्रोक्तं, ज्वरामध्ये तु पाचनम् ॥
ज्वरान्ते भेषजंदद्यात्सर्वज्वर विनाशकम् ॥ ७४ ॥

जामाता कृष्णसर्पश्च, पावको दुर्जनस्तथा ॥
विश्वासो नैव कर्तव्यः, पञ्चमो भागिनीसुतः ॥ ७५ ॥

भारतं पञ्चमो वेदः, सुपुत्रः सप्तमो रसः ॥
दाता पञ्चदशं रत्नं, जामाता दशमो ग्रहः ॥ ७६ ॥

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति, भार्या च गत यौवनम् ॥
शूरं विजितसंग्रामं, पारंगतं तपस्वीनम ॥७७॥

अमृतं दुर्लभं नृणां, देवानामुदकं तथा ॥
पितॄणां दुर्लभः पुत्रः, तक्रं शक्रस्य दुर्लभम् ॥ ७८ ॥

मिति तीन गुप्ति यावत् ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले आत्मार्थी, स्थिर आत्मा, आत्माका हित, आत्मयोगी, आत्म पराक्रम, स्वपक्षके पोषक, तथा पाक्षिक पौषधकारक, सुसमाधिवंत, शुक्लध्यान, धर्मध्यानके ध्याता, उन्होंके लिये जो दश चित्त समाधिके स्थान, पेस्तर प्राप्त नहीं हुवे ऐसे स्थान दश हैं, उसीको श्रवण करो.

(१) धर्म–केवली, सर्वज्ञ, अरिहंत, तीर्थकर, प्रणीत, नयानिक्षेप प्रमाण, उत्सर्गापवाद, स्याद्वादमय धर्म, जो नवतत्त्व, षट्द्रव्य आत्मा और कर्म आदिका स्वरुप चिन्तवनरुप जो धर्म, आगे (पूर्व) नहीं प्राप्त हुवाको इस समय प्राप्त होनेसे वह जीव ज्ञानात्मा करके है. स्व समय, परसमयका जानकार होता है. जिससे चित्तसमाधि होती है. ऐसा पवित्र धर्मकी प्राप्ति होनेके कारण–सरल स्वभाव, निर्मल चित्तवृत्ति, सदा समाधि, दुर्ध्यान दूर कर सुध्यान करना, देव, गुरु के वचनोंपर श्रद्धा, शत्रु मित्रपर समभाव, पुद्गलोंमे अरुचि. धर्मका अर्थी, परिसह तथा उपसर्गसे अक्षोभित, इत्यादि होनेसे इस लोकमें चित्तसमाधि और परलोकमें मोक्ष सुखोंको प्राप्त करता है. प्रथम समाधिध्यान.

(२) संज्ञीजीवोंको उत्पन्न हो, उसे संज्ञीज्ञान अर्थात् जातिसरण ज्ञान, जो मतिज्ञानका एक विभाग है. ऐसा ज्ञान पूर्व न उत्पन्न हुवा, वह उत्पन्न होनेसे चित्तसमाधि होती है. कारण उस ज्ञानके जीरवे उत्कृष्ट नौसों ९००) भव संज्ञीपंचेंद्रियका

अश्वप्लुतं माधवगर्जितं च स्त्रीणां चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम् ॥
अवर्षणं चाप्यतिवर्षणं च देवोन जानाति कुतो मनुष्यः ॥८८॥

क्षणं चित्त क्षणं वित्तं क्षणं जीवति मानवः ॥
यमस्य करुणा नास्ति धर्मस्य त्वरितागतिः ॥ ८९ ॥

क्षान्ति तुल्यं तपो नास्ति संतोषान्न सुखं परम् ॥
नास्ति तृष्णा समो व्याधि र्न च धर्मो दया।परः ॥ ९० ॥

न च विद्या समो बन्धुर्न च व्याधि समो रिपुः ॥
न चापत्य समः स्नेही न च धर्मो दयापरः ॥ ९१ ॥

पुनर्वित्तं पुनर्मित्तं पुनर्भार्या पुनर्मही ॥
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः ॥ ९२ ॥

यत्र विद्यागमो नास्ति तत्र नास्ति धनागमः ॥
यत्र चात्मा सुखं नास्ति न तत्र दिवसं वसेत् ॥ ९३ ॥

न देवाय न धर्माय न बन्धुभ्यो न चार्थिने ॥
दुर्जने नार्जितं द्रव्यं भुज्यते राजतस्करैः ॥ ९४ ॥

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः ॥
चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी ॥ ९५ ॥

पुस्तक प्रत्ययाधीतं, नाधीतं गुरु संनिधौ ॥
न शोभते सभा मध्ये, जारगर्भा इव स्त्रियः ॥ ९६ ॥

पिण्डे पिण्डे मतिर्भिन्ना, तुण्डे तुण्डे सरस्वती ॥
देशे देशे विभाषास्यान्नानारत्ना वसुन्धरा ॥ ९७ ॥

(५) अवधिज्ञान—पूर्वे उत्पन्न नहीं हुवा ऐसा उत्पन्न होनेसे जघन्य अंगुलके असंख्याते भागे उत्कृष्ट संपूर्ण लोकको जाने, जिससे चित्तसमाधि होती है. अवधिज्ञान किसको प्राप्त होता है ? जो तपस्वी मुनि सर्व प्रकारके कामविकार, विषय-कषायसे विरक्त हुवा हो; देव, मनुष्य, तिर्यंचादिका उपसर्गोंको सम्यक् प्रकारसे सहन करे, ऐसे मुनियोंको अवधिज्ञान होनेसे चित्तसमाधि होती है.

(६) अवधिदर्शन—पूर्वे उत्पन्न न हुवा ऐसा अवधिदर्शन उत्पन्न होनेसे जघन्य अंगुलके असंख्याते भागे और उत्कृष्ट लोकके रुपीद्रव्योंको देखे. अवधिदर्शनकी प्राप्ति किसको होती है ? जो पूर्व गुणोंवाले, शांत स्वभावी, शुभ लेश्याके परिणामवाले मुनि उर्ध्वलोक, अधोलोक और तिच्छीलोकको अवधिज्ञान द्वारा रुपीपदार्थोंके देखनेसे चित्तमें समाधि उत्पन्न होती है.

(७) मनःपर्यवज्ञान—पूर्वे प्राप्त नहीं हुवा एसा अपूर्व मनःप्रर्यवज्ञान उत्पन्न होनेसे अढाइद्वीपके संज्ञीपर्याप्ता जीवोंका मनोभावको देखते हुवे चित्तसमाधिको प्राप्त होता है. मनःपर्यवज्ञान किसको उत्पन्न होता है ? सुसमाधिवन्त, शुक्लेश्यावन्त, जिनवचनमें निःशंक, अभ्यन्तर और बाह्य परिग्रहका सर्वथा त्यागी. सर्व संगरहित, गुणोंका रागी इत्यादि गुण संयुक्त हो, उस अप्रमत्त मुनिको मनःपर्यवज्ञान उत्पन्न होता है.

(८) केवलज्ञान—पूर्वे नहीं हुवा वह उत्पन्न होनेसे

पुस्तकं वनिता वित्तं, परहस्तं गतंगतम् ॥
यदि चेत्पुनरायाति, नष्टं भ्रष्टं च खण्डितम् ॥ १०९ ॥
पुस्तकेषु च या विद्या, परहस्तेषु यद्धनम् ॥
संग्रामे च गृहसैन्यं, त्रयं पुंसां विडम्बनम् ॥ ११० ॥
पात्रे त्यागी गुणे रागी, संविभागी च बन्धुषु ॥
शास्त्रे बोद्धा रणे योद्धा, पुरुषाः पञ्चलक्षणाः ॥१११॥
पूर्वदत्तेषु या विद्या, पूर्व दत्तेषु यद्धनम् ॥
पूर्वदत्तेषु या भार्या, अग्रे धावति धावति ॥ ११२ ॥
दाने तपसि शौर्ये वा, विज्ञाने विनये नये ॥
विस्मयो नहि कर्तव्यो, बहुरत्ना वसुन्धराः ॥ ११३ ॥
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥
ऋणकर्ता पिता शत्रुर्माता च व्यभिचारिणी ॥ ११४ ॥
विपत्तौ किं विषादेन सपत्तौ हर्षणेन किम् ॥
भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशीगतिः ॥ ११५ ॥
खण्डे खण्डे च पाण्डित्यं क्रयकृतं च मैथुनम् ॥
भोजनं च पराधीनं त्रयं पुंसां विडम्बनम् ॥ ११६ ॥
दिनान्ते पिबेद्दुग्धं निशान्ते च पिबेत्पयः ॥
भोजनान्ते पिबेत्तक्रं कि वैद्यस्य प्रयोजनम् ॥ ११७ ॥
शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे ॥
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनं न वने वने ॥ ११८ ॥

ाम वह तत्काल गिर पडता है, इसी माफिक मोहनीय कर्मका शिरच्छेद करनेसे सर्व कर्मोका नाश हो जाता है (२) सेना-पति भाग जानेसे सेना स्वयंही कमजोर होकर भग जाती है. इसी माफिक मोहनीय कर्मरुप सेनापति चय होनेसे शेप कर्मा-रुपी सैन्य स्वयंही भाग जाता है (चय हो जाता है.) (३) धूम रहित अग्नि इन्धनके अभावसे स्वयं चय होता है इसी माफिक मोहनीय कर्मरुप अग्निको राग-द्वेपरुप इन्धन न मिल-नेसे चय होता है. मोहनीयकर्म चय होनेपर शेप कर्मचय होता है. (४) जैसे सुके हुवे वृचके मूल जल सिंचन करनेसे कभी नव-पल्लवित नहीं होते हैं इसी माफिक मोहनीयकर्म सूक (चय) जानेपर दूसरे कर्मोका कभी अकुर उत्पन्न नहीं हो सक्ता है. (५) जैसे बीजको अग्निसे दग्ध कर दीया हो, तो फिर अं-कुर उत्पन्न नहीं हो सक्ता है. इसी माफिक कर्मोका बीज (मोह-नीय) दग्ध करनेसे पुनः भवरुप अंकुर उत्पन्न नहीं होते है.

इस प्रकारसे केवळज्ञानी आयुष्यके अन्तमे औदारिक, तैजस, और कार्मण शरीर तथा वेदनीय, आयु, नामकर्म और गोत्रकर्मको सर्वथा छेदन कर कर्मरज रहित सिद्धस्थानको प्राप्त कर लेते हैं

भगवान् वीरप्रभु आमंत्रण कर कहते है कि—भो आ-युष्मान्! यह चित्त समाधिके कारण बतलाये है. इसको वि शुद्ध भावोंसे आराधन करो, सन्मुख रहो, स्वीकार करो. इ-

उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः ॥
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशयन्ति मुखे मृगाः ॥१२६ ॥

दयाम्भसा कृतस्नानः सन्तोषशुभवस्त्रभृत् ।
विवेकतिलकभ्राजी भावनापावनाशयः ॥
भक्तिश्रद्धानघुसृणोमिश्रपाटौ रजद्रवैः ।
नव ब्रह्माङ्कतो देवं शुद्धमात्मानमर्चय ॥ १३० ॥

निर्ममो निरहङ्कारो निस्सङ्गो निःपरिग्रहः ॥
रागद्वेषविनिर्मुक्तस्तं देवं ब्राह्मणो विदुः ॥ १३१ ॥

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेषः कपिलादिषु ॥
युक्तिमद्वचनं यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥ १३२ ॥

मनोविशुद्धपुरुषस्य तीर्थं, वाक्संयमश्चेन्द्रियनिग्रहश्च ॥
एतानि तीर्थानि शरीरजानि, मोक्षस्य मार्गं च निदर्शयन्ति ॥१३३॥

मरुस्थलीकल्पतरूपमानं, मोहान्धकारोच्चयनित्यभानुम् ॥
संसारवारांनिजयानपात्रं, तं वीक्ष्यजातः प्रमदैकपात्रम् ॥१३४॥

सत्यंब्रह्म तपोब्रह्म, ब्रह्मश्चेन्द्रियनिग्रहः ॥
सर्वभूतदयाब्रह्म, एतद् ब्राह्मण लक्षणम् ॥ १३५ ॥

जितेन्द्रिय सर्वहितो, धर्मकर्म परायणः ॥
यत्रं तिष्टन्ति तत्रैव, सर्वे तीर्थानि देवताः ॥ १३६ ॥

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते, पितृवंशो निरर्थकः ॥
वासुदेवं नमस्यन्ति, वसुदेवं न ते जनाः ॥ १३७ ॥

नहीं है, यावत् सिद्ध भी नहीं है. अक्रियावादीयोंकी ऐसी प्रज्ञा-दृष्टि प्ररुपणा है. ऐसा ही उन्होंका छंदा है, ऐसा ही उन्होंका राग है, और ऐसा ही अभीष्ट है, ऐसे पाप-पुण्यकी नास्ति करते हुवे वह नास्तिकलोक महारंभ, महापरिग्रहकी अन्दर मूर्च्छित है. इसीसे वह लोक अधर्मी, अधर्मानुचर, अधर्मको सेवन करनेवाले, अधर्मको ही इष्ट जाननेवाले, अधर्म बोलनेवाले, अधर्म पालनेवाले, अधर्मका ही जिन्होंका आचार है, अधर्मका प्रचार करनेवाले, रातदिन अधर्मका ही चिंतन करनेवाले, सदा अधर्मकी अन्दर रमणता करते है.

नास्तिक कहते है-इस अमुक जीवोंको मारो, खड्गादिसे छेदो, भालादिसे भेदो, प्राणोंका अंत करो, ऐसा अकृत्य कार्य करते हुवे के हाथ सदैव लोही (रौद्र) से 'लिप्त' रहते है.' वह स्वभावसे ही प्रचंड क्रोधवाले, रौद्र, क्षुद्र पर दुःख देनेमें तथा अकृत्य कार्य करनेमें साहसिक, परजीवोंको पाशमे डाल ठगनेवाले, गूढ माया करनेवाले, इत्यादि अनेक कुप्रयोगमें प्रवृत्ति करनेवाले, जिन्होंका दुःशील, दुराचार, दुर्नयके स्थापक, दुर्व्रतपालक, दूसरोंका दुःख देखके आप आनन्द माननेवाले, आचार, गुप्ति, दया, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास रहित है. असाधु, मलिनवृत्ति, पापाचारी, प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति अरति, मायामृषावाद और मिथ्यात्वशल्य-इस अठारा पापोंसे

भक्तो मातापितृणां स्वजनपरजनानन्ददायी प्रशान्तः ।
श्रद्धालुः शुद्धबुद्धिर्गतमदकलहः शीलवान् दानवर्षी ॥
अक्षोभ्यः सिद्धगामी परगुणविभवोत्कर्ष हृष्टः कृपालुः ॥
संघैश्वर्याधिकारी भवति किलनरो दैवतं मूर्तमेव ॥ १४७ ॥

पाषाणेषु यथा हेमं, दुग्धमध्ये यथाघृतम् ॥
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवं ॥ १४८ ॥

न देवपूजा नच पात्रपूजा, नश्राद्ध धर्मश्च न साधु धर्मः ॥
लब्ध्वापि मानुष्यमिदं समस्तं, कृतं मयारण्य विलापतुल्यम् ॥१४९॥

सर्व मंगल मांगल्यं सर्व कल्याण कारणम् ॥
प्रधान सर्व धर्माणां जैनोधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥ १५० ॥

॥ इति शम् ॥

—:o:—

विना अपराध मार डालते है. निध्वंस परिणामी, किसी प्रकारकी घृणा रहित ऐसे अनार्य नास्तिक होते है.

ऐसे अक्रियावादीयोंके बाहिरकी परिषद जो दास-दासी, प्रेषक, दूत, भट्ट, सुभट, भागीदार, कामदार, नोकर, चाकर, मेता, पुरुष, कृषीकार-इत्यादि जो लघु अपराध कीया हो, तो उसको बडा भारी दंड देते है. जैसे इसको दंडो, मुंडो, तर्जना, ताडना करो, मारो, पीटो मजबूत बन्धन करो. इसको खाडेमें भाखसीमें डाल दो, इसके शरीरकी हडीयों तोड दो-एवं हाथ, पांव, नाक, कान, ओष्ठ, दान्त-आदि अंगोपांगको छेदन करो, एवं इसका चमडा निकालो, हृदयको भेदो, आंख, दान्त, जीभको छेदन करो, शूली दो, तलवारसे खंड खंड करो, इसको अग्निमें जला दो, इनको सिंहकी पूछमें बांधो, हस्तीके पांव नीचे डालो, इत्यादि लघु अपराध करनेपर अपराधीको अनेक प्रकारके कुमोतसे मारनेका दंड देते है. ऐसी अनार्य नास्तिकोंकी निर्दय वृत्ति है.

आभ्यन्तर परिषद् जैसे माता, पिता, बान्धव, भगीनी, भार्या, पुत्री, पुत्रवधू-इत्यादि. इन्होंमे कभी किंचिन्मात्र अपराध हो जाय, तो आप स्वयं भारी दंड देते है. जैसे शीतकालमें शीतल पाणी तथा उष्णकालमें उष्ण पाणी इसके शरीरपर डालो, अग्निकी अन्दर शरीर तपावों, रसीकर, वेंत कर, नाडीकर, चाबक कर, छडीकर, लताकर, शरीरके पसवाडे प्रहार करो, चामडीको उखेडो, हडीकर, लकडीकर, मुष्टिकर,

सुव्वण्ण रूप्पस्स उ पव्वया भवे ।
सियाहु केलास समा असंख्खाय ॥
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि ।
इच्छाओ आगास समा अणन्तिया ॥ ६ ॥

सल्लंकामा विसंकामा, कामा आसी विसोवमा ॥
कामेय पत्थेमाणा, अकामा जन्ति दोग्गइं ॥ १० ॥
अहो ते अज्जवंसाहुं, अहो ते साहु मद्दवं ॥
अहो ते उत्तमा खन्ति, अहो ते मुत्ति उत्तमा ॥ ११ ॥
दुमपत्तए पंडुरे जहा, निवडइ रायगणाण अच्चाए ॥
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम म पमायए॥१२॥
कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिठइ लवमाणए ॥
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम म पमायए ॥१३॥
एवं भवसंसारे संसरइ, सुहासुहेहिं कम्मेहिं ॥
जीवो पमाय बहुलो, समयं गोयम म पमायए ॥ १४ ॥
नहु जिणे जिणे अज्ज दिस्सइ, बहुमए दिस्सइ मग्गदेसिए ॥
संपइ नेयाउए पहे, समयं गोयम म पमायए ॥ १५ ॥
सव्वं विलंवियं गीयं, सव्वनटं विडंबणा ॥
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥ १६ ॥
अह पंचहिं ठाणेहिं, जेहिं सिख्खा न लब्भई ॥
थंभामोहा पमाएणं, रोगेण आलसेण य ॥ १७ ॥
चेच्चा दुपयंच चउप्पयं च, खेत्तं गिहं धण धन्नं च सव्वं ॥
सकम्म बीओ अवसो पयाइ, परं भवं सुंदर पावगं वा ॥१८॥

काल कर घोर अंधकार व्याप्त धरणीतले नरकगतिको प्राप्त होता है.

वह नरकावास अन्दरसे वर्तुल (गोलाकार) बाहरमें चोरस है. जमीन छुरी-अस्तरे जैसी तीक्ष्ण है. सदैव महा अन्धकार व्याप्त, ज्योतिषीयोंकी प्रभा रहित और रौद्र, मांस, चरबी, मेद, पीपपडलसे व्याप्त है. श्वान, सर्प, मनुष्यादिक मृत कलेवरकी दुर्गन्धसे भी अधिक दुर्गन्ध दशों दिशामें व्याप्त है. स्पर्श बडा ही कठिन है. सहन करना बडा ही मुश्कील है. अशुभ नरक, अशुभ नरकवाला वहांपर नारकीके नैरिय किंचित् भी निद्रा-प्रचला करना, सुना, रतिवेदनेका तो स्वप्न भी कहांसे होवे ? सदैवके लिये विस्तरण प्रकारकी उज्वल, प्रकृष्ट, कर्कश, कटुक, रौद्र, तीव्र, दुःख सहन कर सके ऐसी नारककी अन्दर नैरिया पूर्वकृत कर्मोको भोगवते हुवे विचरते है.

जैसे दृष्टान्त—पर्वतका उन्नत शिखरपरसे मूल छेदा हुवा वृक्ष अपने गुरुत्वपनेसे नीचे स्थान खाडे, खाड़, विषम, दुर्गम स्थानपर पडते है, इसी माफिक अक्रियावादी अपने किये हुवे पापकर्मरूप शस्त्रसे पुन्यरूप वृक्षमूलको छेदन कर, अपने कर्मगुरुत्व कर स्वयं ही नरकादि गतिमें गिरते है. फिर अनेक जाति-योनिमें परिभ्रमण करता हुवा एक गर्भसे दूसरे गर्भमें संक्रमण करता हुवा दक्षिणदिशागामी नारकी कृष्णपक्षी भविष्यकालमें भी दुर्लभबोधि होगा. इति अक्रियावादी.

मोहंगयस्स सन्तस्स, जाइसरणं समुपन्न ॥ २६ ॥
जम्मं दुक्खं जरा दुक्ख, रोगाणि मरणाणि य ॥
अहो दुक्खो हु संसारो, जस्स कीसन्ति जंतवो ॥ ३० ॥
खेतं वत्थु हिरएणं च, पुत्तं दार च बन्धवा ॥
चइत्ताण इमं देहं, गन्तव्वमवसस्स मे ॥ ३१ ॥
जहा किंपाक फलाण, परिणामो न सुंदरो ॥
एवं भुत्ताणभोगाणं, परिणामो न सुंदरो ॥ ३२ ॥
जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहु ॥
सारभंडाणि नीहणेइ, असारं अवइज्झइ ॥ ३३ ॥
वालुयाकवलो चेव, निरस्साए ओ संजमो ॥
असीधारागमणं चेव, दुक्करं चरउ तवो ॥ ३४ ॥
सरीर माणसा चेव, वेयणाओ अणन्तसो ॥
मए सोढाओ भीमाओ, असइ दुक्खभयाणि य ॥३५॥
तत्ताहिं तंव लोहाइं, तउयाइ सीसपाणिय ॥
पाइओ कलकलन्ताइं, आरसन्तो सुभेरवं ॥ ३६ ॥
जारिसा माणुसे लोए, ताता दीसन्ति वेयणा ॥
एत्तो अणन्तगुणिया, नरएसु दुक्ख वेयणा ॥ ३७ ॥
जहा मियस्स आतंके, महारएणंमि जयइ ॥
अचन्तं रुक्खमूलंमि, को णं ताहे तिगिच्छई ॥ ३८ ॥
लाभालाभे सुहे दुहे, जीविए मरणे तहा ॥
समो निंदा पसंसेसु, तहा माणावमाणओ ॥ ३६ ॥

रुचिवान् बने, तीर्थंकर भगवानने फरमाये हुवे पवित्र धर्ममें दृढ श्रद्धा रखे. जीवादि पदार्थका स्वरुपको निर्णयपूर्वक समझे. हेय, ज्ञेय और उपादेयका जानकार बने. यह प्रथम सम्यक्त्व प्रतिमा. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवोंको होती है. सम्यक्त्वकी अन्दर देवादि भी क्षोभ नहीं कर सके. निरतिचार सम्यक्त्वका आराधन करे. परन्तु नवकारसी आदि व्रत प्रत्याख्यान जो जानता हुवा भी मोहनीय कर्मके उदयसे प्रत्याख्यान करनेको असमर्थ है. इति प्रथम सम्यक्त्व प्रतिमा.

(२) दूसरी व्रत प्रतिमा—जो पूर्वोक्त धर्मकी रुचिवाला होते है, और शील–आचार, व्रत–नवकारसी आदि दश प्रत्याख्यान, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषध (अवैपारादि), ज्ञानादि गुणोंसे आत्माको पुष्ट बनानेको उपवास कर सकते परन्तु प्रत्याख्यानी मोहनीय कर्मोदयसे सामायिक और दिशावगासिक करनेको असमर्थ है. इति दूसरी प्रतिमा.

(३) सामायिक प्रतिमा—पूर्वोक्त सम्यक्त्वरुचि व्रत, प्रत्याख्यान, सामायिक, दिशावगासिक सम्यक् प्रकारसे पालन कर सके., परन्तु अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या, (कल्याणक तिथि) प्रतिपूर्ण पौषध करनेमें असमर्थ है इति तीसरी सामायिक प्रतिमा.

(४) चोथी पौषध प्रतिमा—पूर्वोक्त धर्मरुचिसे यावत् प्रतिपूर्ण पौषध कर सके, परन्तु एक रात्रिकी जो प्रतिमा (एक

से नाहइ मच्चु मुह तु पत्ते ॥
पच्छणु तावेण दया त्रिहुणा ॥ ४८ ॥
तं पासीउणं सवेगं, समुद्दपालो इणमव्व वि ॥
अहो असुभ कम्मणं, निज्जाणं पावगं इमं ॥ ४९ ॥
अहा सा रायवर कन्ना, सुसीला चारु पेहणी ॥
सव्व लक्खण संपन्ना, विज्जु सोय मणिप्पभा ॥५०॥
कस्स अट्ठा इमे पाणा, एते सव्व सुहोसिणो ॥
वाडेहिं पञ्जरेहिं च, संन्निरुद्धा य अच्छहिं ॥ ५१ ॥
अह सारही तओ भणइ, ए ए भद्दाओ पाणिणो ॥
तुज्झं विवाह कज्जंमि, भोयावेओ बहुं जेणं ॥ ५२ ॥
जह मज्झ कारणा, एए हम्मन्तिसु बहु जिया ॥
त मे एयंतु निस्सेसं, परलोगे भविस्सइ ॥ ५३ ॥
सो कुंडलाण जुयलं, सुत्तगंच महाजसो ॥
आभरणाणि य सव्वाणि, सारहिस्स पणामए ॥५४॥
केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे ॥
उभओ निसण्णा सोहन्ति, चन्द सूर समप्पभा ॥ ५५ ॥
पुरिमा उज्जुजड्डुओ, वंकजडाओ पच्छिमा ॥
मज्झिमा उज्जुपन्नाओ, तेण धम्मे दुहा कए ॥ ५६ ॥
पुरिमाणं दुव्विसोज्झोओ, चरिमाणं दुरणु पालोओ ॥
कप्पो मज्झिमगाणतु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥ ५७ ॥
एगप्पा अजिए सत्तु, कसाया इन्दियाणि य ॥
ते जिणित्ता जहानायं, विरहामि अहं मुणी ॥ ५८ ॥

नहीं आवे. अर्थात् त्याग करे. यावत् नव मास करे. इति नौवी आरंभ प्रतिमा.

(१०) असारंभ प्रतिमा—पूर्वोक्त सर्व नियम पाले और प्रतिमाधारीके निमित्त अगर कोइ आरंभ कर अशनादि देवे, तोभी उसको लेना नही कल्पे. विशेष इतना है कि इस प्रतिमाका आराधन करनेवाले श्रावक क्षुरमुंडन-शिरमुंडन कराके हजामत करावे, परन्तु शिरपर एक शिखा (चोटी) रखावे ताके साधु श्रावककी पहिचान रहे. अगर कोइ करम्बवाला आके पूछे उस पर प्रतिमाधारीको दो भाषा बोलनी कल्पे. अगर जानता हो तो कहेकि मैं जानता हुं और न जानता हो तो कहे कि मैं नहीं जानुं. ज्यादा बोलना नहीं कल्पे. यावत् दश मास धरे. इति दशवी प्रतिमा.

(११) श्रमणभूत प्रतिमा—पूर्वोक्त सर्व क्रिया साधन करे क्षुरमंडन करे. स्वशक्ति शिरलोचन करे. साधुके माफिक वस्त्र, पात्र रखे, आचार विचार साधुकी माफिक पालन करते हुवे चलता हुवा इर्यासमिति संयुक्त च्यार हस्त प्रमाण जमीन देखके चले अगर चलते हुए राहस्ते त्रस प्राणी देखें तो यत्न करे. जीव हो तो अपने पावोंको उंचा नीचा तिरछा रखता हुवा अन्य मार्गमें प्राक्रम करे. भिक्षा के लिये अपना पेजबन्ध मुक्त न होनेसे अपने न्यातके घरोंकी भिक्षा करनी कल्पे. इसमें भी जिस घरपे जलहे, पूर्वे चावल तयार हो और दाल तयार पीछेसे होती रहे, तो चावल लेना कल्पे, दाल

पढमं पोरसी सज्झायं, बीयंझाणं झियायई ॥
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीय सज्झायं ॥७०॥
पढमं पोरसी सज्झायं, बीयंझाणं झायायइ ॥
तइयए निद्दा मोक्खंतु, पुण चउत्थीय सज्झायं ॥ ७१ ॥
पुढवी आउकाए, तेउ वाऊ वणस्सइ तस्साणं ॥
पडिलेहणा पमत्ते, छन्नंपि विरहाओ होइ ॥ ७२ ॥
वेयणा वेयावच्चे, इरियाट्ठाए संजमट्ठाए ॥
तह पाण वत्तियाए, छट्ठं पुण धम्म चिंताए ॥ ७३ ॥
आयङ्के उवसग्गे, तितिक्खया बंभचेर गुत्तीसु ॥
पाणिदया तव हेउ, सरीर वोछणट्ठाए ॥ ७४ ॥
जारिसा मम सीसाओ, तारिसा गलि गद्दहा ॥
गलिगद्दहे जहित्ताणं, दढं पगिएहई तवं ॥ ७५ ॥
नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ॥
एय मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छन्ति सोग्गइं ॥ ७६ ॥
धम्मो अधम्मो आगासं, कालो पुग्गल जन्तवो ॥
एस लोगो त्ति पन्नत्तो, जिणेहिं वर देसियं ॥ ७७ ॥
गइ लक्खणो धम्मो, अधम्मो ठाण लक्खणो ॥
भायणं सव्व दव्वाणं, नहं ओग्गहा लक्खणं ॥ ७८ ॥
वत्तणा लक्खणो कालो, जीवो उवओग लक्खणो ॥
नाणेणं दंसणेणं च, सुहेण वा दुहेण य ॥ ७९ ॥
जीवाजीवय बन्धो य, पुएणं पावासवो तहा ॥
संवरो निजरो मोक्खो, सन्तए तहियानव ॥ ८० ॥

(७) सातवां भिक्षुप्रतिमा नामका अध्ययन.

(१) प्रथम एक मासकी भिक्षु प्रतिमा. (२) दो मासकी भिक्षु प्रतिमा. (३) तीन मासकी भिक्षु प्रतिमा. (४) च्यार मासकी भिक्षु प्रतिमा. (५) पांच मासकी भिक्षु प्रतिमा. (६) छे मासकी भिक्षु प्रतिमा. (७) सात मासकी भिक्षु प्रतिमा. (८) प्रथम सात अहोरात्रिकी आठवी भिक्षु प्रतिमा. (९) दूसरी सात अहोरात्रिकी नौवी भिक्षु प्रतिमा. (१०) तीसरी सात अहोरातकी दशवी भिक्षु प्रतिमा. (११) अहोरातकी इग्यारवी भिक्षु प्रतिमा. (१२) एक रात्रिकी बारहवी भिक्षु प्रतिमा.

(१) एक मासकी प्रतिमा स्वीकार करनेवाले मुनिको एक मास तक अपने शरीरकी चिंता (संरक्षण) करना नहीं कल्पै. जो कोइ देव, मनुष्य, तिर्यंच, संबन्धी परीषह उत्पन्न हो, उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करना चाहिये.

(२) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिको प्रतिदिन एक दात भोजनकी, एक दात आहारकी लेना कल्पै. वह भी अज्ञात कुलसे शुद्ध निर्दोष लेना, आहार ऐसा लेना कि जिसको बहुतसे दुपद, चतुष्पद, श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण, मंगा भी नहीं इच्छता हो, वह भी एकला भोजन करता हो वहांसे लेना कल्पै. परन्तु दोय, तीन, च्यार, पांच या बहुतसे भोजन करते हो, वहांसे लेना नहीं

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो ।
मोहो हयं जस्स न होइ तराहा ॥
तराहा हया जस्स न होइ लोहो ।
लोहो हओ जस्स न किंचणाई ॥ ८६ ॥

पञ्चासवप्पवत्तो तिहिं अगुत्तो छसुं अविरओय ।
तिव्वारंभ परिणामो खुद्दो साहसिओ नरो ॥ ६० ॥
निद्धन्धसपरिणामो, निस्संसो अजिइन्दिओ ।
एय जोग समाउत्तो, किएह लेसं तु परिणामो ॥ ६१ ॥
ईसा अमरिसा अतवो, अविज्जमाय अहीरिया ।
गिद्धी पओसे य सढे पमत्ते, रस लोलुए सायगवेसए ॥६२॥
आरंभओ अविरओ, खुद्दो साहसिओ नरो ।
एय जोग समाउत्तो, निललेसं तु परिणामो ॥ ६३ ॥
वंके वंक समायरे, नियडिल्ल अणुज्जुए ।
पलिउंचगओ वहिए, मिच्छादिट्ठी अणारिए ॥ ६४ ॥
उप्फासग दुट्ठवाइ य, तेण य वि य मच्छरी ।
एय जोग समाउत्तो, काऊलेसं तु परिणामो ॥ ६५ ॥
नीयावत्ती अचवले, अमाइ अकुतुहले ।
विणीय विणए दन्ते, जोगवं उवहाणवं ॥ ६६ ॥
पिय धम्मे दढ धम्मे, वज्जभीरू हिएसए ।
एय जोग समाउत्ते, तेउ लेसंतु परिणामो ॥ ६७॥
पयणु कोहमाणाय, माया लोभ य पयणुए ।

जहांपर लोग जान जावे कि यह प्रतिमाधारी मुनि है, तो वहां एक रात्रिसे अधिक नहीं ठहर सके, अगर न जाने तो दोय रात्रि ठहर सके. इसीसे अधिक जितने दिन ठहरे उतना ही छेद या तपका प्रायश्चित होते है. यहांपर ग्रामादि अपेक्षा है, न कि जंगलकी.

(६) मासिक प्रतिमा स्वीकार कीये हुवे मुनिकों च्यार प्रकारकी भाषा बोलनी कल्पै. (१) याचनी—अशनादिककी याचना करना. (२) पृच्छना—प्रश्नादि तथा मार्गका पूछना. (३) अणवणि—गुर्वादिकी आज्ञा तथा मकानादिकी आज्ञाका लेना. (४) पूछा हुवा प्रश्नादिका उत्तर देना.

(७) मासिक प्रतिमा स्वीकार कीये हुवे मुनिको तीन उपासरोंकी प्रतिलेखना करना कल्पै. (१) आराम—बगीचोंके बंगलादिके नीचे. (२) मंडप—छत्री आदि विकट स्थानोंमें. (३) वृक्षके नीचे.

(८) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिकों उक्त तीनों उपासरोंकी आज्ञा लेना कल्पै.

(९) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिकों उक्त तीनों उपासरोंमें निवास करना कल्पै.

(१०) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिकों तीन संथारा (बिछाना) कि प्रतिलेखना करना कल्पै (१)

सत्थगहणं विसभक्खणं च, जलणं च जलपवेसो य ॥
अणायार भंडसेवी, जम्मण मरणाणि बद्धन्ति । १०९॥
धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ॥
देवा वि तं नमंसन्ति, जस्स धम्मे सयामणो ॥११०॥
वत्थगन्धमलंकारं, इत्थिओ सयणाणि य ॥
अच्छंदा जे न भुंजन्ति, न से चाइ त्ति वुच्चइ ॥ १११ ॥
जेय कन्ते पिय भोए, लद्धे विप्पिट्ठिकुव्वइ ॥
साहीणे चयई भोए, सेहु चाइ त्ति वुच्चइ ॥ ११२ ॥
आया वयंति गिम्हेसु, हेमंतेसु अवाउड ॥
वासासु पडिसलीणा, संजयसु समाहिया ॥ ११३ ॥
जयं चरे जयं चिट्ठे, जयं मासे जयं सए ॥
जयं भुंजंतो भासन्तो, पावकम्मं न बन्धइ ॥ ११४ ॥
पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्व संजया ॥
अन्नाणी किं काही, किंवा नाही सेय पावगं ॥११५॥
सोच्चा जणइ कल्लाणं, सोच्चा जणइ पावगं ॥
उभयंपि जणइ सोच्चा, जं सयं तं समायरे ॥११६॥
उग्गमं सय पुच्छेज्जा, कस्सट्ठा केणवा कडं ॥
सोच्चा निसंकियं सुद्धं, पडिग्गाहिज्जा संजए ॥११७॥
अहो जिणेहिं असावज्जा, वित्ती साहुण देसिया ॥
मोक्ख साहुण हेउस्स, साहु देहस्स धारणा ॥११८।
दुल्लहाओ मुहा दाइ, मुहा जीवी विदुल्लहा ॥
मुहा दाइ मुहा जीवी, दोवी गच्छन्ति सुगइं ॥११९॥

नुकशान होता है. वास्ते उस गृहस्थके लिये आप जल्दी नीकल जावे.

(१३) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिके पगमें कांटा, खीला, कांकर, फंस भांग जावे तो, उसे नीकालना नहीं कल्पे. परिषहको सहन करता हुवा इर्या देखता चले.

(१४) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिकी आंखमें कोइ जीव, रज, फुस, कचरा पड जावे तो उस मुनिको निकालना नहीं कल्पै. परीषहको सहन करता हुवा विहार करे.

(१५) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनि चलते हुवे जहांपर सूर्य अस्त हो, वहांपरही ठहर जाना चाहिये. चाहे वह स्थल हो, जल हो, खाड, खाइ, पहाड, पर्वत, विषमभूमि क्यों न हो, वह रात्रि तो वहांही ठहरना, सूर्यास्त होनेपर एक पांवभी नहीं चलना. जब सूर्य उदय हो, उस समय जिस दिशामें जानेकी इच्छा हो, वहांपरभी जा सकते है.

(१६) मासिक प्रतिमा स्वीकार किये हुवे मुनिको जहां पासमें पृथ्व्यादि हो, वहां ठहरके निद्रा या विशेष निद्रा करना नहीं कल्पै. कारण-सुते हुवाका हस्तादिका स्पर्श उस पृथ्व्यादिसे होगा तो जीवोंकी विराधना होगी, वास्ते दूसरा निर्दोष स्थानको देख रहै, वहांपर आनाजाना सुख पूर्वक हो सक्ता है. मुनिको लघुनीत, वडीनीतकी बाधाकोभी रोकना नहीं कल्पै. कारण—यह रोगवृद्धिका कारण है. इस वास्ते पेस्तर

भगवान गौतमस्वामी कण्ठ विनिर्गत मुक्ताफलमाला ।

(गौतमकुलक)

लुद्धानरा अथ्थपरा हवंति, मूढानरा कामपरा हवंति ।
बुद्धानरा खंतिपरा हवंति, मिस्सानरातिन्निवि आयरंति ॥१॥
ते पंडिया जे विरया विरोहे, ते साहुणो जे समयं चरंति ।
ते सत्तिणो जे न चलंति धम्मं, ते बंधवा जे वसणे हवंति ॥२॥
कोहाभिभूया न सुहं लहंति, माणासिणो सोय पराहवंति ।
मायाविणी हुंति परस्सपेसा, लुद्धामहिच्छा नरयं उविंति ॥३॥
कोहो विसं किं अमयं अहिंसा, माणो अरि किं हिय मप्पमाओ ।
माया भयं किं सरणं तु सच्चं, लोहो दुहो किं सुहमाहतुट्ठि ॥४॥
बुद्धि अचंडं भयए विणीयं, कुद्धं कुसीलं भयए अकीत्ति ।
संभिन्नचित्तं भयए अलच्छी, सच्चेठियं सं भयए सिरीय ॥५॥
चयंति मित्ताणि नरं कयग्धं, चयंति पावाइं मुणि जयंतं ।
चयंति सुक्काणि सराणि हंसा, चयंति बुद्धि कुवियं मणुस्सं ॥६॥
अरोइ अत्थं कहीए विलावो, असं पहारे कहीए विलावो ।
विक्खित्त चित्ते कहीए विलावो, बहु कुसीसे कहीए विलावो ॥७॥
दुट्ठाहिवा दंड परा हवंति, विज्जाहरा मंत परा हवंति ।
मुक्खानरा कोव परा हवंति, सुसाहुणो तत्त परा हवंति ॥८॥

(२०) मासिक प्रतिमा स्वीकार कीये हुवे मुनिको धूपसे छायामें आना और छायासे धूपमें जाना नहीं कल्पै. धूप, शीतके परीषहको सम्यक्प्रकारसे सहन करनाही कल्पै.

निश्चय कर यह मासिक भिक्षु प्रतिमा प्रतिपन्न अनगारको जैसे अन्य सूत्रोंमे मासिक प्रतिमाका अधिकार मुनियोंके लीये बतलाया है, जैसे इसका कल्प है, जैसे इसका मार्ग है, वैसेही यथावत् सम्यक् प्रकारसे परीषहोंको कायाकर स्पर्श करता हुवा, पालता हुवा, अतिचारोंको शोधता हुवा, पार पहुंचाता हुवा, कीर्त्ति करता हुवा जिनाज्ञाको प्रतिपालन करता हुवा मासिक प्रतिमाको आराधन करे इति.

(२) दो मासिक भिक्षु प्रतिमा स्वीकार करनेवाले मुनि दोय मास तक अपनी काया (शरीर) की सार संभालको छोड देते है. जो कोइ देव, मनुष्य, तिर्यंच संबन्धी परीषह उत्पन्न होते है, उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करे, शेष अधिकार मासिक भिक्षु प्रतिमावत् समझना, परन्तु यहां दोय दात आहारकी, दोय दात पाणीकी समझना. इति । २ ।

(३) एवं तीन मासिक भिक्षु प्रतिमा. परन्तु भोजन, पाणीकी तीन तीन दात समझना. (४) एवं च्यार मासिक भिक्षु प्रतिमा परंतु भोजन पाणिकी च्यार च्यार दात समझना. (५) एवं पांच मासिक भिक्षु प्रतिमा. परन्तु पांच पांच दात समझना. (६) छे मासिक. दात छे छे. (७)

असासयं जीवीय महुलोए, धम्मचरे साहु जिणोवईट्ठं ।
धम्मोयताणं सरणं गइय, धम्मं निसेवित्तु सुहं लहंति ॥२०॥

सयल कल्लाण निलयं, नमिऊण तित्थनाहा पयकमलं ॥
परगुण गहण सरूवं, भणामि सोहग्गसिरि जणयं ॥ १ ॥
उत्तम गुणाणुराओ निवसइ हिययंमि जस्स पुरिसस्स ॥
आतित्थयार पयाओ न दुल्लहा तस्स रिद्धीओ ॥२॥
जइवि चरसि तव विउलं, पडसि सुयं करिसि विविह कट्ठाइं ॥
न धरसि गुणाणुरायं, परेसु ता निप्फलं सयलं ॥ ३ ॥
जो परदोसे गिण्हइ, संतासंतेवि दुट्ठ भावेणं ॥
सो अप्पाणं बन्धइ, पावेणं निरत्थएणावि ॥ ४ ॥
सो देसो तं नगरं, तं गामो सो अ आसमो धन्नो ॥
जत्थ पहु तुम्ह पाया, विहरंति सयावि सुपसन्ना ॥ ५ ॥
जा रिद्धि अमरगणा, भुंजंता पियतमाइ संजुत्ता ॥
सापुण कित्तियामित्ता, दिट्ठे तुम्ह सुगुरु मुह कमले ॥ ६ ॥
अट्ठमि चउद्दसीसु, सव्वाए वि चेइयाइं वंदिज्जा ॥
सव्वेवि तहा मुणिणो, सेसदिणे चेइअं एक ॥ ७ ॥
जिणचलणकमल सेवा, सुगुरु पाय पज्जुवासणं चेव ॥
सज्झायवायवडतं, लब्भंति पभूय पुण्णेहिं ॥ ८ ॥
दाणं सोहग्ग करं, दाणं आरुग्ग कारणं परमं ॥
दाणं भोग निहाणं, दाणं ठाणं गुणगणाणं ॥ ६ ॥

यावत् रात्रिमें आसन (१) गोदोहासन, जैसे पांवोंपर बेठके गायको दोते है. (२) वीरासन, जैसे खुरसीपर बेठनेके बाद खुरसी निकाल ली जावे. (३) आम्रखुज, जैसे अधोशिर और पांव उपर यह तीन आसन करे. शेपाधिकार पूर्वकी माफिक. यावत् आराधक होता हैं.

(११) अहोरात्र नामकी इग्यारवी भिक्षु प्रतिमा. छठ्ठ तप कर ग्रामादिके बाहार जाके ध्यान करे. कुछ शरीरको नमाता हुवा दोनों पांवोके आगे आठ अंगुल, पीछे सात अंगुल अन्तर रख ध्यानारुढ हो. वहांपर उपसर्गादि हो उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करे यावत् पूर्वकी माफिक आराधक होता है.

(१२) एक रात्रि नामकी बारहवी भिक्षु प्रतिमा—अट्ठम तप कर ग्रामादिके बाहार श्मशानमें जाके शरीर ममत्व त्याग कर पूर्वकी माफिक पांवोंको और दोनों हाथोंको निराधार, एक पुद्गलोपर दृष्टि स्थापनकर आंखोंको नहीं टमकारता हुवा ध्यान करे. उस समय देव, मनुष्य, तिर्यंच संबन्धी उपसर्ग हो उसे अगर सम्यक् प्रकारसे सहन न करे, तो तीन स्थानपर अहित, असुख, अकल्याण, अमोक्ष, अननुगामित होते है. वह तीन स्थान-(१)उन्माद (वेभानी), (२) दीर्घ कालका रोगका होना, (३) केवली प्ररुपित धर्मसे भ्रष्ट होता है. अगर एक रात्रिकी भिक्षु प्रतिमाको सम्यक् प्रकारसे आराधन करे, उपसर्गोसे चोभित न हो, तो तीन स्थान—हित,

अथश्री

व्याख्याविलास-भाग ४ था.

(भाषाविभाग)

(१)

शासनपति अरिहंत, कर्मोंको कियो अन्त ।
सूरि पाठक अनगार, नमो तपचारको ॥
स्थविरगण कुल संघ, क्रियावन्त शुद्ध लिंग ।
जंघा विद्याचारण मुनि, जिनकल्प धारको ॥
जिन बिम्ब जिन ज्ञान, तप शील भाव दान ।
आत्म समाधि ध्यान, नमो सुखकारको ॥
शासनको नमस्कार, करत हजारवार ।
ज्ञानसेती प्रीत धार, तीरो संसारको ॥

(२)

जीवदया जगसार, धर्मरूची अनगार ।
मेतारज मुनि सार, पाया भवपारको ॥
मेघरथराय जांन, पारेवाको राख्यो प्रान ।
शान्तिनाथ भगवान, तार्यो संसारको ॥

भगवान् वीरप्रभुके पांच हस्तोत्तर नक्षत्र (उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र था) (१) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें दशवा देवलोकसे चवके देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें अवतार धारण किया. (२) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें भगवानका संहरण हुवा, अर्थात् देवानंदाकी कुखसे हरिणगमेषी देवताने त्रिशलादे राणीकी कुखमें संहरण कीया. (३) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें भगवानका जन्म हुवा (४) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें भगवानने दीक्षा धारण करी. (५) हस्तोत्तरा नक्षत्रमें भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न हुवा. यह पांच कार्य भगवानके हस्तोत्तरा नक्षत्रमें हुवा है. और स्वांति नक्षत्रमे भगवान् वीर प्रभु मोक्ष पधारेथे. शेषाधिकार पर्युषणाकल्प अर्थात् कल्पसूत्रमें लिखा है. श्रीभद्रबाहुस्वामी यह दशाश्रुत स्कन्ध रचा है. जिसका आठवा अध्ययनरुप कल्पसूत्र है. उसके अर्थरुप भगवान वीरप्रभु बहुतसे साधु, साध्वीयों, श्रावक, श्राविका, देव, देवीयोंके मध्यमे बिराजमान हो फरमाया है. उपदेश किया है. विशेष प्रकारसे प्ररुपणा करते हुवे बारबार उपदेश किया है.

इति आठवा अध्ययन.

---

[९] नौवा अध्ययन.

महा मोहनीय कर्म बन्धके ३० स्थान है.

चंपानगरी, पूर्णभद्रोद्यान, कोणिकराजा, जिसकी धारिणी राणी, उस नगरीके उद्यानमें भगवान् वीरप्रभुका आग-

लज्जा विनो विनय विचार रह सके नहीं ।
लज्जा विनो मोटाइको खोटो अभिमान है ॥
लज्जा विनो नाम ठाम लोकमें न रहे भार ।
लज्जा विनो जहां जावो तहां अपमान है ॥
केशव कहत साची लज्जा यह मोटी बात ।
एक लज्जा विनो नर पशुके समान है ॥

(७)

चिंता विनो कामकाज सत्यहु न माने कोय ।
चिंता विनो लेखपत्र पीपल केरा पान है ॥
चिंता विनो आरंभ अधूरा रहत है सब ।
चिंता विनो कीसका मान अपमान है ॥
चिंता विनो सुख दुःख शरीरको न जाने आप ।
चिंता विनो धुलधाणी तप जप ध्यान है ॥
केशवदास चिंता विनो चतुराई केसी भाई ।
एक चिंता विनो तन लकडा समान है ॥

(८)

हाथमें धरे तो वीटी पुणच्छीसे विशेष शोभा ।
कानमें धरे तो अमूल्य कुंडलके आकार है ॥
मुखमें धरे तो मुख वाससे सुवास होवे ।
कंठमें धरे तो मानो हीरों केरो हार है ॥
मस्तकपे धरे तो मुगटसे भी सुंदर शोभे ।
घरमें धरे तो अच्छो घरको श्रृंगार है ॥

(८) अपने किया हुवा अपराध, अनाचार, दूसरेके शिरपर लगादेनेसे—(९) आप जानते है कि यह बात जूटी है तो भी परिषद्की अन्दर बैठके मिथ भाषा बोलके क्लेशकी वृद्धि करनेसे—(१०) राजा अपनी मुखत्यारी प्रधानको तथा शेठ मुनिमको मुखत्यारी देदी हो, वह प्रधान, तथा मुनिम उस राजा तथा शेठकी दोलत-धन तथा स्त्री आदिको अपने स्वाधीन करके राजा तथा शेठका विश्वासघात कर निराधार बना उन्हका तिरस्कार करे, उसके कामभोगोंमें अन्तराय करे, उसको प्रतिकूल दुःख देवे, रुदन करावे, इत्यादि. तो महामोहनीय कर्म उपार्जन करे. (११) जो कोइ बाल ब्रह्मचारी न होनेपरभी लोगोंमे बालब्रह्मचारी कहाता हुवा स्त्रीभोगोंमे मूर्च्छित बन स्त्रीसंग करे, तो महा मोहनीय कर्म उपार्जन करे. (१२) जो कोइ ब्रह्मचारी नहीं होनेपरभी ब्रह्मचारी नाम धराता हुवा स्त्रीयोंके कामभोगमें आसक्त, जैसे गायोंके टोलेमें गर्दभकी माफिक ब्रह्मचारीओंकी अन्दर साधुके रुपको लज्जित-शरमिंदा करनेवाला अपना आत्माका अहित करनेवाला, बाल, अज्ञानी, मायासंयुक्त, मृषावाद सेवन करता हुवा, कामभोगकी अभिलाषा रखता हुवा महा मोहनीय कर्म उपार्जन करे. (१३) जो कोइ राजा, शेठ तथा गुर्वादिकी प्रशंसासे लोगोंमे मानने पूजने योग्य बना है, फिर उसी राजा, शेठ तथा गुर्वादिकके गुण, यश कीर्तिको नाश करनेका उपाय करे, अर्थात् उन्होंसे प्रतिकूल वर्ताव करे, तो महा मोहनीय कर्म उपार्जन करे. (१४)

(११)

दाने संपत्त होय, दान लच्छी घर आवे ।
दाने होय उद्धार, दानसे आदर पावे ॥
दाने निर्मल चित्त, दान घर जाचक आवे ।
दाने सुर अवतार, दानसे शिवपद पावे ॥
धन धरा संग न चले, चले जो दीनो दान ।
परभवमें दीनो मीले, समजावे गुरुज्ञान ॥

(१२)

शील सुधारस पान कर, उतरे मोहकी छाक ।
यंत्र मंत्र सिद्ध हुवे, रहे काच्छका पाक ॥
रहे काच्छका पाक महीलाको माता जाणे ।
वचनसिद्धि होइ जाय आतमा आप पेच्छाने ॥
भवभ्रमण भटक्यो घणो लगी पीपासा ज्ञान ।
सुन्दर सदा सुख शीलसे करो सुधारस पान ॥

(१३)

ज्ञान साथे तप कर, चमा हुको संग धर ।
कर्मोंको प्रज्वाल कर, टालो मिथ्या अंधकारको ॥
इन्द्रभूति गणधार, धन्ना नामे अनगार ।
तप कियो खडग धार, जीत्या मोहरायको ॥
श्रेणिक नृपकी नार, काली आदि तप धार ।
प्रदेशीको कीयो पार, सुदत्त अनगारको ॥

सना करे, वह बाल अज्ञानी महा मोहनीय—(२२) जो आचार्योपाध्यायके पास ज्ञान, ध्यान कर आप अभिमान, गर्वका मारा उसी उपकारी महा पुरुषोंकी सेवा भक्ति, विनय, वैयावच्च, यश कीर्ति न करे तो महा मोहनीय. (२३) जो कोइ अबहुश्रुत होनेपरभी अपनी तारीफ बढाने कारण लोगोंसे कहेकि-मैं बहुश्रुत अर्थात् सर्व शास्त्रोंका पारगामी हुं, ऐसा असद्वाद वदे तो महा मोहनीय. (२४) जो कोइ तपस्वी होनेका दावा रखे, अर्थात् अपना कृश शरीर होनेमे दुनीयांको कहे कि मैं तपस्वी हुं-तो महा मोह. (२५) जो कोइ साधु शरीरादिसे सुदृढ संहननवाला होनेपरभी अभिमानके मारे विचारेकि— मैं ज्ञानी हुं, बहुश्रुत हूं, तो ग्लानादिकी वैयावच्च क्यों करुं ! इसनेभी मेरी वैयावच्च नहीं करीथी, अथवा ग्लान, तपस्वी, वृद्धादिकी वैयावच्च करनेका कबूल कर फिर वैयावच्च न करे तो महा मोहनीय कर्म उपार्जन करे. (२६) जो कोइ चतुर्विध संघमें क्लेशवृद्धि करना, छेद, भेद डलाना, फुट पाड देना-ऐसा उपदेश दे कथा करे करावे तो महा मोहनीय—(२७) जो कोइ अधर्मकी प्ररुपणा करे तथा यंत्र, मंत्र, तंत्र, वशीकरण प्रयुंजे ऐसे अधर्मवर्धक कार्य करे, तो महामोहनीय. (२८) जो कोइ इस लोक-मनुष्य संबन्धी परलोक-देवता संबन्धी, कामभोगसे अतृप्त अर्थात् सदैव कामभोगकी अभिलाषा रख, जहां मरणावस्था आगइ हो, वहांतकभी कामाभिलाष रखे, तो महा मोहनीय. (२९) जो कोइ देवता महाऋद्धि, ज्योति, कान्ति, महाबल, महायशका धणी देव है, उसका अवर्णवाद बोले,

(१६)

मानसे मान जाय मानसे तान जाय मानसे ज्ञान जाय कंठको।
मानसे मन जाय मानसे तन जाय मानसे धन जाय गांठको॥
मानसे पशु थाय मानसे नरक जाय मानसे रावणने दुःख पायो खानको।
मानको नीवार वार ज्ञानसेति प्रित धार सुन्दरको कर पार,
पद लहो ध्यानको॥

(१७)

माया विनसे ज्ञान माया अज्ञान बढावे।
माया गमावे मान माया प्रतित उठावे॥
माया लावे मिथ्यात पशुकी योनि पावे।
माया नरक निगोद चौरासी वाट बतावे॥
कपट कुटीलता दंभ तज भज श्रीजिनके पाय।
ज्ञान सुधारस पान कर हृदय साफ हो जाय॥

(१८)

तृष्णा आग अपार तृष्णा जग भिख मंगावे।
तृष्णा अत्याचार तृष्णा सब ज्ञान भुलावे॥
तृष्णा करे फजीत तृष्णा लै केद करावे।
तृष्णा कटावे शिप तृष्णा नर नरक दीखावे॥
मातपिता अरु सज्जनों तृष्णा गीने न एक।
ज्ञान सदा समता धरो प्रगटे गुन अनेक॥

(१९)

पैसा जगमें पाप पैसा नर मूल्य करावे।

(१०) दशवां अध्ययन.

नौ निदानाधिकार.

राजगृह नगर, गुणशीलोद्यान, श्रेणिक राजा, चेलणा राणी, इस सबका वर्णन जैसा उववाइजी सूत्रके माफिक समझना.

एक समय राजा श्रेणिक स्नान मज्जन कर, शरीरको चन्दनादिकका लेपन किया, कंठकी अन्दर अच्छे सुगन्धिदार पुष्पोंकी मालाको धारण कर सुवर्ण आदिसे मंडित, मणि आदि रत्नोंसे जडित भूषणोंको धारण किये, हाथोंकी अंगुलियोंमें मुद्रिका पहनी, कम्मरकी अन्दर कंदोरा धारण किया है, मुगटसे मस्तक सुशोभनीक बना है, इत्यादि अच्छे वस्त्र-भूषणोंसे शरीरको कल्पवृक्षकी माफिक अलंकृत कर, शिरपर कोरंटवृक्षकी माला संयुक्त छत्र धरावता हुवा, जैसे ग्रहगण, नक्षत्र, तारोंके सुपरिवारसे चन्द्र आकाशमें शोभायमान होता है. इसी माफिक भूमिके भूषणरुप श्रेणिक नरेन्द्र, जिसका दर्शन लोगोंको परमप्रिय है. वह एक समय बाहारकी आस्थानशालाकी अन्दर आ कर राजयोग्य सिंहासनपर बैठके अपने अनुचरोंको बुलवायके ऐसा आदेश करता हुवा— तुम इस राजगृह नगरकी बाहार आराममें जावो, जहां स्त्री-पुरुष क्रीडा करते हो, उद्यान जहां नानाप्रकारके वृक्ष, पुष्प, पत्रादि होते है. कुंभकारादिकी शाला, यक्षादिके देवालय,

बिन पैसा धोबी मील्यो निंदक धोवे मल ।
ज्ञानी आश्चर्य न करे सब कर्मोंका खेल ॥

(२२)

गुनग्राही बनीये सदा लागत नही कछु मोल ।
अवगुन जोवे आपका पामे गुन अनतोल ॥
पामे गुन अनतोल जगतमें लोक सरावे ।
परभव सुर अवतार आखर वह शिवपद पावे ॥
कहत कवी करजोड ज्ञानकी वातो सुनीये ।
लागत नही कच्छु मोल गुनके ग्राहक बनीये ॥

(२३-२४)

विदेशको हुवे तैयार, हाथ जोडी बोले नार ।
आपसे अधिक प्यार, पाछा जल्दी आवजो ॥
सठाकी कमाइ सार, लावजो मोत्यांको हार ।
कंदोरो ने टोटी कडा, सोनाना घडावजो ॥
विच्छीया बाजुबन्ध भेला, बंगडी घडाजो पहेला ।
नाकवाली दान्त चुंक, रतन जडावजो ॥
चन्द्र सूरज बिंदी बोर, पुणच्छी पति टुसी और ।
पनडीयो वाला तीमणीयाको, हीरासे मढावजो ॥
काच टीकी सूरमो सार, आडको ले आजो लार ।
हींगुलकी पुडी च्यार, लाल लेता आवजो ॥
फूल ने किनार कोर, जरी बुटा तारा और ।
ओढनेके काज चीर, रेममी थें लावजो ॥

राजगृह नगरके दो, तीन, च्यार यावत् बहुतसे राहस्ते-पर लोगोंको खबर मिलतेही बडे उत्साहसे भगवान्को वन्दन करनेको गये. वन्दन नमस्कार कर, सेवा भक्ति कर अपना जन्म पवित्र कर रहेथे.

भगवानको पधारे हुवे देखके महत्तर वनपालक भगवान्के पास आया, भगवान्का नाम—गोत्र पूछा और हृदयमें धारण कर वन्दन नमस्कार कीया. बादमें वह सब वनपालक लोक एकत्र मिल आपसमे कहने लगे—अहो ! देवाणुप्रिय ! राजा श्रेणिक जिस भगवानके दर्शनकी अभिलाषा करते थे वह भगवान् आज इस उद्यानमें पधार गये है. तो अपनेको शीघ्रता पूर्वक राजा श्रेणिकसे निवेदन करना चाहिये.

सब लोक एकत्र मिलके राजा श्रेणिकके पास गये. और कहेते हुवे कि—हे स्वामिन् ! जिस भगवानके दर्शनकी आपको प्यास थी अभिलाषा करते थे, वह भगवान् वीरप्रभु आज उद्यानमें पधार गये है. यह सुनकर राजा श्रेणिक बडाही हर्ष संतोषको प्राप्त हुवा सिंहासनसे उठ जिस दिशामे भगवान् विराजमान थे, उसी दिशामें सात आठ कदम जाके नमोत्थुणं देके बोला कि--हे भगवान् ! आप उद्या-नमें विराजमान हो, मैं यहांपर रहा आपको वन्दन करता हूं आप स्वीकार करीये.

बादमें राजा श्रेणिक उस खबर देनेवालोंका बडाही

भोर होनेपर चोर छिपे, अरु मयूर छिपे ऋतु ग्रीष्म आयो ।
ओट करो शत घूंघटकी, पण चंचल नयन छिपे न छिपाये ॥

(२९)

मान घटे मुखसे कछु मांगत, प्रीत घटे नितके घर जायो ।
बुद्धि घटे ज्यूं नीचकी संगत, क्रोध घटे मनको समझायो ॥
नेह घटे चुकतेपर चूके, नीर घटे ऋतु ग्रीष्म आयो ।
वैरी घटे भुज जोर किये, ज्यूं कर्म कटे प्रभुके गुण गायो ॥

(३०)

बालसे आल बूढेसे विरोध, अरु चंचल नारीसे ना हँसीये ।
ओछेकी प्रीत गुलामकी संगत, अजानत नीरमें ना धसिये ॥
बैलको नाथ अश्वको लगाम, मतंगको अंकुशसे कसिये ।
कवि गंग कहै सुन साहा अकबर, क्रूरसे दूर सदा बसिये ॥

(३१)

काज विना न करे कोइ उद्यम, रीस विना रण मांहि न झूंजे ।
शरीर विना न सधे परमारथ, शील विना नर देहि न शोजे ॥
नियम विना न लहे निश्चयपद, प्रेम विना रस रीत बूझे ।
ध्यान विना न स्थंभे मनकी गति, ज्ञान विना शिवपन्थ न सूझे ॥

(३२)

कबहुं मन रंग तरंग चढे, कबहुं मन सोचत है धनकुं ।
कबहुं मन कामनी देख चले, कबहुं मन मृग होय फिरे बनकुं ॥

कर राजा श्रेणिक बडाही हर्षको प्राप्त हुआ आप मज्जन घरमें प्रवेश करके स्नान मज्जन कर पूर्वकी माफिक अच्छे सुन्दर वस्त्रभूषण धारण कर, कल्पवृक्षकी माफिक बनके जहांपर चेलणा राणी थी, वहांपर आया और चेलणा राणीसे कहा कि-हे प्रिया ! आज श्रमणभगवान् वीरप्रभु गुणशीलोद्यानमें पधारे हुवे है. उन्होंका नाम--गोत्र श्रवण करनेका भी महाफल है, तो भगवान्को वन्दन करना, नमस्कार करना और श्रीमुखसे देशना श्रवण करना इसके फलका तो कहेना ही क्या ? वास्ते चलो भगवान्को वन्दन--नमस्कार करे, भगवान् महामंगल है. देवताके चैत्यकी माफिक उपासना करने योग्य है. राणी चेलणा यह वचन सुनके बडा ही हर्षको प्राप्त हुइ. अपने पतिकी आज्ञाको शिरपे चढाके आप मज्जन घरमें प्रवेश किया. वहांपर स्वच्छ सुगन्धि जलसे सविधि स्नान--मज्जन कर शरीरको चन्दनादिसे लेपन कर (कृतबलिकर्म--देवपूजन करी है) शरीरमें भूषण. जैसे पावोंमें नेपुर, कम्मरमें मणिमंडित कंदोरा, हृदयपर हार, कानोंमें चमकते कुंडल, अंगुलीयोंमें मुद्रिका, उत्तम खलकती चुडीयें, मांदलीये--इत्यादि रत्नजडित भूषणोंसे सुशोभित, जिसके कुंडलोंकी प्रभाने वदनकी शोभामे वृद्धि करी है. पेहने है कान्तिकारी रमणीय, बडा ही सुकुमाल जो नाककी हवासे उड जावे, मक्खीके जाल जैसे वस्त्र, और भी सुगन्धि पुष्पोंके बने हुवे तुरे गजरे, सेहरे, मालावों आदि धारण किया है. चर्चित चन्दन कान्तिकारी है दर्शन जिन्होंका, जिसका रुप

बातनसे रोजगार, बातनसे स्नेहाचार।
बातनसे चोर घर, आये फिर जात है ॥
बातनसे भूत प्रेत, बातनसे डाकन श्वेत।
बातनसे सर्प बिच्छू विष उतर जात है ॥
और तो अनेक बात, धरमकी लिजे साथ।
बात कर जाने सो तो बात करामात है ॥

(३६)

काल बैतालकी धाक तिऊँ लोकमें, देव दानव घर रोग लगावे।
इन्द्र नरेन्द्र फणेन्द्र बंकेनर, कालकी फौजको कौन हटावे ॥
शील संतोष अभेद लिये मुनि, सो कालकी फौजको संकडे लावे।
मुक्ति महलमें जाय विराजे, वहां कालका जोर कछु नहिं पावे ॥

(३७)

अल्प सी उमर तांमे जीव सोच वहूत करे।
करणेके अनेक काम कहा कहा कीजीये ॥
आगमका अन्त नहीं प्रकरणका पार नहीं।
वाणी तो वहूत चित्त कहां कहां दीजीये ॥
कंविकी कला अनेक छंदका प्रकाश वहूत।
अलंकार अनेक रस कहा कहा पीजीये ॥
सौ वातांकी एक वात निकटही बताइ जात।
जो जन्म सुधारा चाहे तो एक आतमवश कीजीये ॥

साध्वीयों राजा श्रेणिक और राणी चेलणाको देखके उसी साधु साध्वीयोंके ऐसे अध्यवसाय, मनोगत परिणाम हुवाकि— अहो ! आश्चर्य ! यह श्रेणिक राजा बडा महर्द्धिक, महाऋद्धि, महा ज्योति, महाकान्ति, यावत् महासुखके धणी, जिन्होंने किया है स्नान मज्जन, शरीरको वस्त्र भूषणसे कल्पवृक्ष सदृश बनाया है. और चेलणा राणी यहभी इसी प्रकारसे एक शृंगारका घर है. जिसके राजा श्रेणिक मनुष्य संबन्धी कामभोग भोगवता हुवा विचर रहा है. हमने देवता नहीं देखे है, परन्तु यह प्रत्यक्ष देव देवकी माफिकही देख पडते है. अगर हमारे तप, अनशनादिसंयम व्रतरुप तथा ब्रह्मचर्यके फल हो, तो हमभी भविष्यकालमे राजा श्रेणिककी माफिक मनुष्य संबन्धी भोग भोगवते विचरे अर्थात् हमकोभी श्रेणिक राजा सदृश भोगोंकी प्राप्ति हो । इति साधु–साधुवोंने ऐसा निदान (नियाणा) कीया.

अहो ! आश्चर्य ! यह चेलणा राणी स्नान मज्जन कर यावत् सर्व अंग सुन्दर कर शृंगार किया हुवा, राजा श्रेणिकके साथ मनुष्य संबन्धी भोग भोग रही है. हमने देवतोंको नहीं देखा है, परन्तु यह प्रत्यक्ष देवताकी माफिक भोग भोगवते है. इसलीये अगर हमारे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो हमभी भविष्यमें चेलणा राणीके सदृश मनुष्य संबन्धी सुख भोगवते विचरे. अर्थात् हमकोभी चेलणा राणीके जैसे भोग-

रती बिन मान रती बिन तान, रती बिन मानस लागत फीको।
कवि गंग कहे सुन शाह अकबर, एक रती बिन पाव रतीको॥

(४१)

वह विरला संसार, नेह निर्धनसे जोडे।
वह विरला संसार, ज्ञानसे मोहको छोडे॥
वह विरला संसार, आमद और खर्च संभारे।
वह विरला संसार, हाथ निर्बल पर न डारे॥
वह विरला संसार, देखकर कर अदिट्ठा।
वह विरला संसार, वचनसे बोले मीट्ठा॥
आपो मारे प्रभु भजे, तन मन तजे विकार।
अवगुण उपर गुण करे, वह विरला संसार॥

(४२)

ऊंट कहा जाने भट्टकी बातकुं, कुम्हार कहा जाने भेद जगाको।
गूढ कहा जाने गूढकी बातको, भील कहा जाने पाप लगाको॥
प्रीतकी रीत अतीत कहा जाने, भैंस कहा जाने खेत सगाको।
कवि गंग कहे सुन शाह अकबर, गद्धा कहा जाने नीर गंगाको॥

(४३)

रसना योग अरू भोग, रसना सब रोग बढावे।
रसना करे उद्योग, रसना ले कैद करावे॥
रसना स्वर्ग ले जाय, रसना नर्क दिखावे।
रसना मिलावे यश, रसना जग फजीत करावे॥

इस धर्मकी अन्दर ग्रहण और आसेवन शिक्षाके लीये सावधान साधु, क्षुधा, पिपासा. शीत, उष्ण आदि अनेक परीषह–उपसर्गको सहन करते, महान् सुभट कामदेवका पराजय करते हुवे संयम मार्गमे निर्मल चित्तसे प्रवृत्ति करे, प्रवृत्ति करता हुवा उग्रकुलमें उत्पन्न हुवा उग्रकुलके पुत्र, महामाता अर्थात् उंच जाति की मातावोंसे जिन्होंका जन्म हुवा है. एवं भोगकुलोत्पन्न हुआ पुरुष जो बाहारसे गमन कर नगरमें आते हुवे को तथा नगरसे बाहार जाते हुवे को देखे. जिन्हों के आगे महा दासी दास, नोकर चाकर, पेदलोंके परिवारसे कितनेक छत्र धारण किये है एवं भंडारी, दंडादि, उसके आगे अश्व, असवार, दोनो पास हस्ती, पीछे रथ, और रथधर, इसी माफिक बहुतसे हस्ती, अश्व रथ और पेदलके परिवारसे चलते है. जिसके शिरपर उज्ज्वल छत्र हो रहा है, पासमे रहके श्वेत चामर ढोलते है, जिसको देखनेके लीये नर नारीयों घरसे बाहार आते है, अन्दर जाते है, जिन्होंकी कान्ति–प्रभा शोभनीय है. जिन्होंने किया है स्नान, मज्जन, देवपूजा, यावत् भूषण वस्त्रोंसे अलंकृत हो महा विस्तारवन्त, कोठागार, शालाके सामान्य मकानकी अन्दर यावत् रत्न जडित सिंहासनपर रोशनीकी ज्योतिके प्रकाशमें स्त्रीयोंके वृन्दमे, महान् नाटक, गीत, वाजित्र, तंत्री, ताल, तूटीत, मृदंग, पडहा—इत्यादि प्रधान मनुष्य संबन्धी भोग भोगवता विचरता है. वह एक मनुष्यको बोलाता है, तब च्यार पांच स्त्री पुरुष, आके खडे

(४६)

बार बार कह्यो तोय सावधान क्यों न होय।
ममताकी पोट सिर कायको धरत है॥
मेरा धन मेरा धाम मेरा सुत मेरा ग्राम।
मेरी वाडी मेरा बाग भूल्यो ही फीरत है॥
तुं तो भयो बावरो बिकाय गइ तेरी बुद्ध।
ऐसे अंधकूपमांहि काहेको पडत है॥
सुन्दर कहत काज आवत नाहिं तोकूं लाज।
काजको बिगाड पर काजको करत है॥

(४७)

कारमो कुटुम्ब यह काहेको धरत नेह।
हारत मानव देह फेर कहां पाईये॥
मात तात घरबार बेटा वहू परिवार।
आवे नहीं तेरी लार कैसे मन लाईये॥
तुं तो भयो बावरो बिकाय गइ तेरी बुद्ध।
कौन तेरा जग बीच मुझे ही बताईये॥
मन वच थिर कर ज्ञानसेती प्रेम धर।
मनुष्य रत्न भव काहेको गमाईये॥

(४८)

सरलको शठ कहे वक्ताको भ्रष्ट कहै।
विनयकर तांसे कहे धनके आधीन है॥

कल्प यावत् मरके दक्षिणकी नरकमे जावे. भविष्यके लीयेभी दुर्लभ बोधी होता है.

हे आयुष्यवंत श्रमणो! तथारुपके निदानका यह फल हुवा कि वह जीव केवली प्ररुपित धर्म श्रवण करनेके लीयेभी अयोग्य है. अर्थात् केवली प्ररुपित धर्मका श्रवण करनाही दुष्कर हो जाता है. इति प्रथम निदान.

(२) अहो श्रमणों! मैंने जो धर्म प्ररुपित कीया है, वह यावत् सर्व शारीरिक और मानसिक दुःखोंका अन्त करनेवाला है. इस धर्मकी अन्दर प्रवृत्ति करती हुइ साध्वीयों बहुतसे परीषह-उपसर्गोंको सहन करती हुइ, काम विकारका पराजय करनेमे पराक्रम करती हुइ विचरती है. सर्व अधिकार प्रथम निदानकी माफिक समझना.

एक समय एक स्त्रीको देखे, वह स्त्री कैसी है कि जगतमें वह एकही अद्भुत रुप लावण्य, चतुराइवाली है, मानो एक मातानेही ऐसी पुत्रीको जन्म दीया है. रत्नोंके आभरण समान, तेलकी सीसीकी माफिक उसको गुप्त रीतिसे संरक्षण कीया है, उत्तम जरी खीनखाप आदि वस्त्रकी सिंदुककी माफिक उन्हका संरक्षण कीया है, रत्नोंके करंडकी माफीक परम अमूल्य जिन्हको सर्व दुखोंसे बचाके रक्षण कीया है. वह स्त्री अपने पिताके घरसे निकलती हुइ, पतिके घरमें जाती हुइ, जिसके आगे पीछे बहुतसे दास, दासी, नोकर, चाकर, यावत् एकको

करलोकी खालमें हीग है सुगंध गंध ।
वृषभकी खाल सब जगको सुहावे है ॥
नेकी अरू बदी देखो दोनु संग आवे ।
मयाराम कहे मनुष्यकी खाल कच्छु काम नहीं आवे है ॥

(५१)

हस्ति चंचल होय झपट मैदान दिखावे ।
राजा चंचल होय मुल्कको सरकर आवे ॥
पण्डित चंचल होय सभाका मन रीझावे ।
घोडा चंचल होय सवारको युद्ध जीतावे ॥
यह चारो चंचल भला राजा पंडित गज तुरी ।
वैताल कहे विक्रम सुनो एक चंचल नार बुरी ॥

(५२)

पग विन कटे न पन्थ, बांह विन हटे न दुर्जन ।
तप विन मिले न राज, भाग्य विन मिले न सज्जन ॥
गुरु विन मिले न ज्ञान, द्रव्य विन मिले न आदर ।
पुरुष विन शृंगार, मेघ विन जैसे दादूर ॥
वैताल कहे विक्रम सुनो, बोल बोल बोली फीरे ।
धिग् धिग् मनुष्य अवतार, सो मन मेन्यां अंतकरे ॥

(५३)

नमे तुरी बहु तेज, नमे दाता धन देतो ।
नमे आम्र बहु फल्यो, नमे बद्दल वर्षतो ॥

करना, द्रव्योपार्जन करना, देश देशान्तर जाना, सब लोगों (आश्रितों) का पोषण करना—इत्यादि पुरुष होना अच्छा नहीं है. अगर हमारे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो भविष्यमें हम स्त्रीपनेको प्राप्त करे, वहभी पूर्ववत् रुप, यौवन, लावण्य, चतुराइ, जोकि जगतमें एकही पाइ जाय ऐसी. फिर पुरुषोंके साथ निर्विघ्नतासे भोग भोगवती विचरे. । इति साधु । यह निदान साधु करे. उस स्थानकी आलोचना न करे, यावत् प्रायश्चित्त न लेवे. विराधक भावसे काल कर महर्द्धिक देवताओंमें उत्पन्न हुवे. वह देव संबन्धी दिव्य सुख भोगके आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य लोकमे अच्छा कुल-जातिको अच्छे रुप, योवन, लावण्यको प्राप्त हुइ, उस पुत्रीको उंच कुलमें भार्या करके देवे, पूर्व निदानकृत फलसे मनुष्य संबन्धी कामभोग भोगवती आनन्दमें विचरे.

उस स्त्रीको अगर कोइ दोनो काल धर्म सुनानेवाला मिले, तोभी वह धर्म नहीं सुने, अर्थात् धर्म सुननेके लीये अयोग्य है. बहुत काल महारंभ, महा परिग्रह, महा काम भोगमें गृद्ध, मूर्च्छित हो काल कर दक्षिणकी नारकीमें नैरियापने उत्पन्न होगा. भविष्यके लीयेभी दुर्लभबोधि होगा.

हे आर्य ! इस निदानका यह फल हुवाकि वह धर्म सुननेके लीयेभी अयोग्य है. अर्थात् धर्म सुननाभी उदय नहीं आता है. । इति ।

खांडी हाँडी तूटो चाडु फाटीसी गुद्दडी जाके ।
चोपाई चकचुर है ॥
कालीसी कुरूपानार–बोलत हजार गार ।
पूत है कपूत जांके विधवा घर बाई है ॥
लेणायत लारे लागे रातको दौडी ने भागे ।
और हू अनेक दूख तांहि घर माने मूंड ।
मोह निद्रा छाई है ॥

(५७)

यह मेरे देश विलायत हय गज, यह मेरे मन्दिर यह मेरे ख्याती।
यह मेरे मातापिता पुनः बान्धव, यह मेरे पुत्र यह मेरे ज्ञाती ॥
यह मेरी कामिनी केल करे नित, यह मेरे सेवक है दिन राती ॥
सुन्दर छोड चले गये सबही, तेल जलनेपर बुझ गई बाती ॥

(५८)

कोउ घर पुत्र जायो कोउके वियोग आयो ।
कोउ घर रंग राग कोउ रोवा पीट भारी है ॥
जहां भानू उगत उत्साह गीत गान देखी ।
सांझ समय ताहि घर हाय हाय पारी है ॥
जगतकी रीत जाण बुद्धिसे विचार आण ।
एक घर होरी और एक घर दीखत दीवारी है ॥
मनुष्य जन्म पाय सो तो छिनमें विलाय जाय ।
पुर्वकृत कर्म उदय और बांध चले लारी है ॥

ऋद्धिवान् पुरुष हो. स्त्रीयोंके साथ मनुष्य संबन्धी भोग भोगवते विचरे. इति साध्वी निदान कर उसकी आलोचना न करे यावत् प्रायश्चित्त न लेवे. काल कर महर्द्धिक देवपने उत्पन्न हो. वह देवसंबन्धी सुख भोग आयुष्यके अन्तमे वहांसे चवके कृतनिदान माफिक पुरुषपने उत्पन्न होवे, वह धर्म सुननेके लीये अयोग्य अर्थात् धर्म सुननाभी उदय नहीं आता. वह कृत निदान पुरुष महारंभ, महापरिग्रह, महा भोग भोगवनेमें गृद्ध मूर्च्छित हो, अन्तमे काल कर दक्षिण दिशाकी नारकीमे नैरियपने उत्पन्न हुवे. भविष्यमेभी दुर्लभ बोधि होवे.

हे आर्य ! इस निदानका यह फल हुवाकि यह जीव केवली प्ररुपित धर्मभी सुन नहीं सके. अर्थात् धर्म सुननेकोभी अयोग्य होता है. । इति ।

(५) हे आर्य ! मैं जो धर्म प्ररुपित किया है. यावत् उस धर्मकी अन्दर साधु-साध्वी अनेक परीषह सहन करते हुवे, धर्ममे पराक्रम करते हुवे मनुष्य संबन्धी कामभोगोंसे विरक्त हुवा ऐसा विचार करेकि-अहो ! आश्चर्य ! यह मनुष्य संबन्धी कामभोग अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत, सडन पडन विध्वंसन इसका सदैव धर्म है. अहो ! यह मनुष्यका शरीर मल मूत्र, श्लेष्म, मंस, चरबी, नाकमेल, वमन, पित्त, शुक्र, रक्त, इत्यादि अशुचिका स्थान है. देखनेसेही विरुप दिखाता है. उश्वास निश्वास दुर्गन्धिमय है. मल, मूत्र कर भरा हुवा है.

मानूषकी गंदी देह जीवतही आवे काम
मुवा पीछे कहा जानूं काग कूत्ता खायगो ॥

(६२)

कंचनके आसन कंचनके वासन ।
कंचनके पलंग सब यहां ही रहेंगे ॥
हाथी हूलशाननमें घोडे घुडशालनमें ।
कपडे जामदानमें घडीबंध धरे रही रहेंगे ॥
बेटा और बेटी धन दोलतका पार नहीं ।
जवाहरातके डब्बोंपर ताले जडेही रहेंगे ॥
देह छोड दिगम्बर होय देखे सब खडे लोग ।
न्यायके करइये नृप उठही चलेंगे ॥

(६३)

शीशकी शोभाको केश दीये, युगनयन दीया जिन जोवनको ।
पँथ चलनेको दोय पांव दीये, दो हाथ दीये दान देननको ॥
कथा सुननेको दोय कान दीये, एक नाक दीयो मुख शोभनको ।
कर्मराय सब ठीक दीये, पिण पेट दीयो पत खोवनको ॥

(६४)

भक्तिवन्त, मीठाबोले, कपटरहित, एक मनं सुने चित्त धर सीखको ।
प्रश्नकर्ता प्रगट कहे यथासूत्र रहस्य जाने, धर्म आलस्य त्यागको ॥
निंदारहित, बुद्धिवान, दयाके परिणाम जान, करेपर उपकारको ।
गुणग्राही निद्रा नहीं ऐसे श्रोता आग करे मुनी धर्म वेपारको ॥

श्रवण कर श्रद्धा प्रतीत रुचि कर सके? धर्म सुन तो सके, परन्तु श्रद्धा प्रतीत रुचि कर सके? धर्म सुन तो सके परन्तु श्रद्धा प्रतीत रुचि नहीं ला सके. वह महारंभी, यावत् काम-भोगकी इच्छावाला मरके दक्षिणकी नरकमें उत्पन्न होता है. भविष्यमें दुर्लभबोधि होगा.

हे आर्य! उस निदानका यह फल हुवा कि वह धर्म श्रवण करनेके योग्य होता है, परन्तु धर्मपर श्रद्धा प्रतीत रुचि नहीं कर सके. ॥ इति ॥

(६) हे आर्य! मैं जो धर्म प्ररुपा है. वह सर्व दुःखोंका अन्त करनेवाला है. इस धर्मकी अन्दर साधु-साध्वी पराक्रम करते हुवेको मनुष्य संबन्धि कामभोग अनित्य है. यावत् पहिले पीछे अवश्य छोडने योग्य है। इससे तो उर्ध्वलोकमें जो देवों है, वह अन्य देवतावोंकी देवीयोंको वश कर नहीं भोगवते है, परन्तु अपनी देवीयोंको वश कर भोगवते है. तथा अपने शरीरसे वैक्रिय देव-देवी बनाके भोग भोगवते है. वह अच्छे है. वास्ते हमारे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो तो हम उस देवोंमें उत्पन्न हुवे. ऐसा निदान कर आलोचना नहीं करता हुवा काल कर वह देवता होते है. पूर्वकृत निदान माफिक देवतावों संबन्धी सुख भोगवके वहांसे चवके उत्तम कुल-जातिमें मनुष्यपणे उत्पन्न होते है. यावत् महाऋद्धिवन्त जहांतक एकको बोलानेपर पांच आके हाजर हुवे.

अज्ञानको अंधकार कहत गुरु वारवार ।
ज्ञानकी चीराक चित जोयले तो जोयले ॥
चिंतामणि मनुष्यभव मिले नहीं मूंढ तोको ।
प्रभूजीसे प्रेम पियारो होयले तो होय ले ॥
क्षणभंगुर देह जामे जन्म सुधारो चाहे तो ।
बिजली चमकारे मोती पोयले तो पोयले ॥

(६८)

मांडलगढ आय कर माल पूरे बेठ रह्यो ।
दिल्लिहूको याद कर आगरे को जाना है ॥
काबुल तो पीछे रही घोरागढ आय लागो ।
बदनोरको याद कर नागोरका थाना है ॥
लखनउके द्वार आय सायपुरको भूलमत ।
चितोडकी चिन्ताकर इंग्लेन्डको जाना है ॥
सुरतको सोधनकर संयतीमे वासकर ।
लोहारगढ लियां सेति शिवपुरको जाना है ॥

(६९)

क्षमा जगमें सार क्षमासे आदर पावे ।
करी प्रदेशीराय सुख सुरीयाभे पावे ॥
करी हरीकेशी अणगार मोक्षमें आप सिधावे ।
मेतारज मुनीराय अटल सुख आगम गावे ॥
खंदक मुनीके शिष्य पांचसो पदको पावे ।

अन्त करनेवाला है. उस धर्मकी अन्दर पराक्रम करते हुवे मनुष्य संवन्धी कामभोग अनित्य है, यावत् जो उर्ध्वलोकमें देवों है, जो पारकी देवीकों अपने वश कर नहीं भोगवते है तथा अपने शरीरसे वनाके देवोको भी नहीं भोगवते है. परन्तु जो अपनी देवी है, उसको अपने वशमें कर भोगवते है. अगर हमारे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो हम उक्त देवता हुवे. ऐसा निदान कर आलोचना न करे, यावत् प्रायश्चित्त न करते हुवे काल कर उक्त देवोंमें उत्पन्न होते है. वहां देवतावों संवन्धी चिरकाल सुख भोगवके वहांसे काल कर उत्तम कुल-जातिकी अन्दर मनुष्य हुवे. वह महर्द्धिक यावत् एकको बुलानेपर च्यार पांच आहे हाजर हुवे.

हे भगवन्! उस मनुष्यकों कोइ श्रमण भगवान् केवली प्ररूपित धर्म सुना शके? हां, सुना सके. क्या वह धर्मपर श्रद्धाप्रतीत रुचि करे? हॉ, करे. वह दर्शन श्रावक हो सके. परन्तु निदानके पाप फलसे वह पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत यह श्रावकके वारहा व्रत तथा नोकारसी आदि प्रत्याख्यान करनेको समर्थ नहीं होते है. वह केवल सम्यक्त्वधारी श्रावक होते है. जीवादि पदार्थका जानकार होते है. हाडहाड किमीजी-धर्मकी अन्दर राग जागता है. ऐसा सम्यक्त्वरुप श्रावकपणा पालता हुवा वहुत कालतक आयुष्य पाल वहांसे मरके देवोंकी अन्दर जाते है.

तुं करेगा औरका बुरा तो तेरा भी होजायगा बूरा।
कलयुग नहीं करयुग है इस हाथ दे और उस हाथ ले ॥

(७३)

दूति कहे सुनो मनमोहन पँख विना पंखेरु उडाऊं।
कागका हंस कसूंबेकी केसर रेतीपे नाव चला के दिखाऊं ॥
पहाडपे मेंडक समुद्रमें दीपक उंटका भार पपई पे लदाऊं।
और ही मोहन वाद वदो तो घासके ढेरेमें आग लगाके-
सोर के गंजमें जाय छिपाऊ ॥

(७४)

उंचा मकांन फीका पकवांन, मोटासा पेट लम्बासा कान।
जाडी गादी दीपकका उजाला, केसरका तिलक और कपूरकी माला। छोटासा कपाट वडासा ताला, पांचसोकी पूंजी और साठसोका दीवाला ॥

(७५)

भलो जहां भरतार तहां घर नारी नखरी।
पति नहीं परविण जहां घर नारी सखरी ॥
जहां घर वहुलो वित्त दत्त देणी नहीं आवे।
जहां घर नहीं है वित्त दत्त देणो चित चावे ॥
श्रोता तो सुखी नहीं पंडित नहीं परवीणता।
कवि कलयुग देखके राख सत्यसे लीनता ॥

रहा व्रतोंको धारण कर सके; परन्तु निदानके पापोदयसे 'मुंडे भवित्ता' अर्थात् संयम-दीक्षा लेनेको असमर्थ है, वह श्रावक हो जीवादि पदार्थोंका ज्ञान हुवे, अशनादि चौदा प्रकारका प्रासुक, एषणीय आहार साधु साध्वीयोंको देता हुवा बहुतसे व्रत प्रत्याख्यान पौषध, उपवासादि कर अन्तमे आलोचना सहित अनशन कर समाधिमें काल कर उंच देवोंमे उत्पन्न होता है.

हे आर्य ! उस पाप निदानका फल यह हुवाकि वह सर्व विरति-दीक्षा लेनेको असमर्थ अर्थात् अयोग्य हुवा. । इति ।

(९) हे आर्य ! मैं जो धर्म कहा है, वह सर्व दुःखोंका अन्त करनेवाला है. उस धर्मकी अन्दर साधु साध्वी पराक्रम करते हुवे ऐसा जानेकि-यह मनुष्य संबन्धी तथा देवसंबन्धी कामभोग अध्रुव, अनित्य, अशाश्वत है, पहिले या पीछे अवश्य छोडने योग्य है. अगर मेरे तप, संयम, ब्रह्मचर्यका फल हो, तो भविष्यमें मै ऐसे कुलमें उत्पन्न हो. यथा—

(१) अन्तकुल—स्वल्प कुटंब, सोभी गरिब. (२) प्रान्तकुल—बिलकुल गरीब कुल. (३) तुच्छकुल—स्वल्प कुटंबवाले कुलमें. (४) दरिद्रकुल—निर्धन कुटंबवाला. (५) कृपणकुल—धन होनेपरभी कृपणता. (६) भिक्षुकुल—भिक्षाकर आजीविका करे. (७) ब्राह्मणकुल—ब्राह्मणोंका कुल सदैव भिक्षु-

(७८)

कोडे चाल्यो आवे तूं तो मूडे पाटी बांध आडी ।
निकल अठासुं आगो नहीं तो पीटसुं अबार रे ।
घाली झोली लीना पातर आय उभो जम जैसो ॥
मुंडकों मूंडाई शाला क्यों छोडया घरबार रे ।
कपडा मलीन दिसे छोकरा डरावे डाकी ॥
अरे मूढ शुचि को न लेस थारे, जावों मांगो ओसवालके ।
लालचंद कहे हाथ धोया विना रोटी थने देवो नहीं ॥
चीकणी सोपारी जैसा लोक है ढुंढाडको ।

(७६)

मेवाड मालवे देश माकड घणा हैं भाई ।
वेठका भरे छे पूरी निद्रा नहीं आवे रे ॥
माकड मकोडा राते पाडे घणा फोडा ।
डंस मंस घणा सो तो चटकीने खावे रे ॥
उत्तराध्ययन दूसरे अध्ययनमांहि ।
पांचमो परिसहो जिन दोहलो बतायो रे ॥
खूबचंद बोले इम सुनहो श्रावक जन ।
मालवे मेवाड देश किणविध आवे रे ॥

(८१)

गुर्जर मजेको देश तहां मोटां है तीर्थ विशेष ।
सुखी लोक वसे जाके अन्न धन पूर है ॥

स्त्री आदिके संगसे विरक्त, एवं शरीर, स्नेह, ममत्व-भावसे विरक्त सर्व चारित्रकी क्रियावोंके परिवारसे प्रवृत्त, उस श्रमण भगवन्तको अनुत्तर ज्ञान, अनुत्तर दर्शन, यावत् अनुत्तर निर्वाणका मार्गको संशोधन करता हुवा अपना आत्माको सम्यक्प्रकारसे भावते हुवेकों जिन्होंका अन्त नहीं है ऐसा अनुत्तर प्रधान, जिसको कोइ बाध न कर सके, जिसको कोइ प्रकारका आवरण नहीं आ सके, वह भी संपूर्ण, प्रतिपूर्ण, ऐसा महत्ववाला केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न होते है.

वह श्रमण भगवन्त अरिहंत होते है. वह जिन केवली, सर्वज्ञानी, सर्वदर्शनी, देवता मनुष्य, असुरादिकसे पूजित, यावत् बहुत कालतक केवलीपर्याय पालके अपना अवशेष आयुष्य जान, भक्त पानीका प्रत्याख्यान अर्थात् अनशन कर फिर चरम श्वासोश्वासकों वोसिराते हुवे सर्व शारीरिक और मानसिक दुःखोंका अन्त कर मोक्ष महेलमे विराजमान हो जाते है.

हे आर्य ! ऐसा अनिदान अर्थात् निदान नहीं करनेका फल यह हुवाकि उंसी भवमें सर्व कर्मोंका मूलोंको उच्छेदन कर मोक्षसुखोंको प्राप्त कर लेते हैं. ऐसा उपदेश भगवान् वीरप्रभु अपने शिष्य साधु-साध्वीयोंको आमंत्रण करके दीया था, अर्थात् अपने शिष्योंकी डूबती नौकाको अपने करकमलोंसे पार करी है.

नाम विद्याराम सो तो मूर्ख ही कहाना है ॥
नाम अमरचंद सो तो मैं मरत देख्यो ।
गुन विना नाम सो तो प्रभुता न पाना है ॥

(८३)

योग लेइ योगी भयो जगसुख देखी भूरे जैसे कांगो हाटको ।
योग लइ भटकत गटकत सब रस भूठो मोती साच नहीं
पायो कूंदो पाठको ।
औरोंको उपदेश देवे आप पोते रीतो रहवे हांस नहीं पूरे
जैसे दोडायो घोडो काठको ।
ऋषी लालचंद कहे शुद्धमति न्याय लहे धोबी केरो कूत्तो
सो तो घरको न घाटको ।

(८४)

योग लीयो जग देखनकूं कच्छू योगकी रीत सख्या नहीं पाली ।
केईक रमावत बाल छोकरा केईक चरावत गाय अरू छाली ॥
जान बरातमें संग चले जब भातमें खात सबनकी गाली ।
कहत कवि सुनो रे सज्जन, बाम्रोंको बाबो और हालीको हाली ॥

(८५)

भेप लेई गयो भूल शंक नहीं माने मूळ ।
झगडेमें रह्यो भूल हाथ लेई लाकडी ॥
मन नहीं स्थिर स्थोभ लगोहे इन्द्रियोंको लोम ।
शरीरकी वधाई शोभ उंची मेली आखडी ॥

अगर मन्द रसवाला निदान हो तो छे निदानमें सम्यक्त्वादि धर्मकी प्राप्ति होती है. जैसे कृष्ण वासुदेव तथा द्रौपदी महा सतीको सनिदानभी धर्मकी प्राप्ति हुइथी.

इति श्री दशाश्रुतस्कंध-दशवा अध्ययन.

। इति श्री दशाश्रुत स्कंध सूत्रका संक्षिप्त सार ।
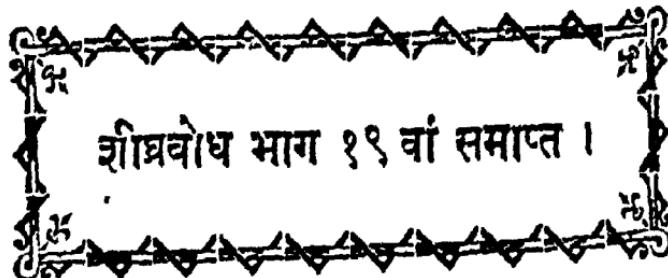
(८८)

प्रथम क्षमा सार दूसरो लोभ निवारे ।
होवे सरल स्वभाव मान मद दूरो नाखे ॥
हलका द्रव्ये भाव झूठ मुखसे नहीं भाखे ।
तप संयम शुद्ध ज्ञान शीयल अमृतरस चाखे ॥
ए दशविध धर्म आराधता सो गुरू लीजो धार ।
ज्ञान कहे समझायने तिरे सो तारणहार ॥

(८९)

नारीतणा दश बाण कटाक्षका नयण जाण ।
भ्रकूटी चढावे ताण उंचो नीचो जोवे है ॥
अंगको मरोडे तोडे दांतसेति हास्य छोडे ।
मुंहको मरोडे और झीणी राग गावे है ॥
उंची करे काख पाख बातको बनावे लाख ।
स्तनतणी देइ साख घात करे शीलकी ॥
नरककी दीवार नार पुरूषको लेजावे लार ।
ज्ञान कहे ऐसी नार सो तो धार तरवारकी ॥

(९०)

त्रिया चरित्र दश लाख लक्ष वार्तो मुख जोडे ।
दिनमें कागथी डरे रातको अहिफण मोडे ॥
उंदरसेती दूर कूदे पकड शेर वश आणे ।
पलंगसेती गीरपडे चढ पर्वत मथ जाणे ॥

देवे. अगर माया[1]—कपट संयुक्त आलोचना करी हो, तो उस मुनिको दो मासका प्रायश्चित्त देना चाहिये. एक मासतो दुष्कृत स्थान सेवन कीया उसका, और एक मास जो कपट माया करी उसका.

(२) मुनि दो मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर माया (कपट) रहित आलोचना करे, उसको दो मासिक प्रायश्चित्त देना, अगर माया[2] (कपट) संयुक्त आलोचना करे, उसको तीन

१—एक नदीके कीनारे पर निवास करनेवाला तापसने मच्छ भक्षण कीया था, उसीसे उन्होंके शरीर में बहुत व्याधि हो गइ उस तापसके भक्त लोगोंने एक अच्छा वैद्य बुलाया वैद्यने पूछा कि—'आपने क्या भक्षण कीया था?' तापस लज्जाके मारे सत्य नहीं बोला, और कहा कि—'मैंने कदमूलका भक्षण कीया' वैद्यने दवाका प्रयोग किया, जिससे फायदा के बदले रोगकी अधिक वृद्धि हो गइ जब वैद्यने कहा कि—'आप सत्य सत्य कह दीजीये, क्या भक्षण कीया था?' तापसने लज्जा छोडके कहा कि—'मैंने मच्छ भक्षण कीया था' तब वैद्यने उसकी दवा देके रोगचिकित्सा करी इसी माफिक कपट कर आलोचना करने से पापकी न्यूनताके बदले वृद्धि होती है और माया (कपट) रहित आलोचना करनेसे पाप निर्मूल हो आत्मा निर्मल होती है वास्ते अव्वल पाप सेवन नहीं करे, अगर मोहनीय कर्मके उदयमे हो भी जावे, तो शुद्ध अंत करणके भावसे आलोचना करनी चाहिये

२—केवलीके पास माया संयुक्त आलोचना करे, तो केवली उसे प्रायश्चित न दे, किन्तु छद्मस्थोंके समीप आलोचना करनेको कहे छद्मस्थ आलोचना प्रथम सुनते है, उस समय प्रायश्चित न दे, दुसरी दफे उसी आलोचनाको और सुने, फीर प्रायश्चित न दे, तीसरी दफे और भी सुने, तीनों दफेकी आलोचना एक सरिखी हो तो अनुमानसे जाने कि माया रहित आलोचना है अगर तीनों दफेमें फारफेर हो तो माया संयुक्त आलोचना जान एक मास मायाका और जितना प्रायश्चित सेवन कीया हो उतना मूल मिलाके उसको प्रायश्चित दीया जाता है

शीलादिक आचारको पालणसे मन भांगो।
नाथ कहै रे बालका थो योगको रोग लागो ॥

(६४)

महिला परिचय अति बूरो मांडे बहूली बात।
चित चंचल जाणो सही करे शीलकी घात ॥
करे शीलकी घात शंका इसमें मत आणो।
धर्मकर्म से भ्रष्ट रोग बहु काल का जाणो ।
उत्तराध्ययन सोलमें भाख गया जिनराज ।
लज्या पामें लोकमें विटलजाय मुनीराज ॥

(६५)

द्रव्यको पायके मूर्ख धर्म कथा न रूची
तीनको तीनको ।
जिन एकेक रांड बुलाय नचावत नहीं आवत
लाज जरा जिनको जिनको ।
मृदंग कहे धिक है धिक है सुरताल
पुछे किनको किनको—
तब उत्तर रांड बतावत है धिक है सब
इनको इनको ॥

(६६)

फांसी जब लग मजहबकी, तब लग होत न ज्ञान ।
तुटे फांसी मजहबकी, तब पावत निर्वाण ॥

(८) वहुतसे तीन मासिक.

(९) वहुतसे च्यार मासिक.

(१०) वहुतसे पांच मासिक प्रायश्चित्त सेवन कर आलोचना जो माया रहित करने वालोंको मूल सेवन कीया उतना ही प्रायश्चित्त दीया जाता है. अगर माया संयुक्त आलोचना करे उस मुनिका मूल प्रायश्चित्तसे एक मास अधिक प्रायश्चित्त यावत् छे मासका प्रायश्चित्त होता है. इसके उपरान्त चाहे माया रहित, चाहे माया संयुक्त आलोचना करे. परन्तु छे माससे ज्यादा तपादि प्रायश्चित्त नहीं दीया जाता. उस मुनिको तो फिरसे दीक्षाका ही प्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

(११) मुनि जो मासिक, दोमासिक. तीन मासिक च्यार मासिक, पांच मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर माया रहित निष्कपट भावसे आलोचना करनेपर उस मुनिको मासिक, दो मासिक, तीन मासिक, चार मासिक, पांच मासिक प्रायश्चित्त होता है. अगर माया सयुक्त आलोचना करे तो मूल प्रायश्चित्तसे एक मास अधिक प्रायश्चित्त होता है. इस्के आगे प्रायश्चित्त नहीं है. भावना पूर्ववत्.

(१२) मुनि जो वहुसे मासिक, वहुतसे दो मासिक, एवं तीन मासिक, च्यार मासिक, पांच मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर माया रहित आलोचना करे, उस मुनिको मासिक यावत पांच मासिक प्रायश्चित्त होता है. अगर मायासंयुक्त आलोचना करे उसे मूल प्रायश्चित्तसे एक मास अधिक यावत् छेमासका प्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

(१३) जो मुनि चातुर्मासिक, साधिक चातुर्मासिक पंचमासिक, साधिकपंचमासिक प्रायश्चित्त स्थानको सेवन कर माया रहित आलोचना करे, उसे मूल प्रायश्चित्त ही दीया जाता है.

(२९९)

शब्द सुने सब कोय कोकिला सबे सुहावे ।
दोनोंका रंग एक काग मनमें नहीं भावे ॥
कहे गिरधर कविराय सुनो हो मनके ठाकूर ।
बिन गुनं लहे न कोय सहस्र नर गुनके ग्राहक ॥

(१००)

फूट बूरी है जगतमें जाने सकल जहान ।
मन्दोदरी लज्या गई गया रावणका प्राण ॥
गया रावणका प्राण भेद बिभित्तण दिन्हो ।
कुटुम्ब सहित परिवार नाश अपनोही कीन्हो ॥
कहे गिरधर कविराय लंकगढ कैसे तुटे ।
पडे दुश्मनका दाव भेद जब घरका फूटे ॥

(१०१)

सम्पत सबसे संचिये सरे सम्पसे काज ।
जैसे रस्सीकी सुतकी स्थंभत है गजराज ॥
स्थंभत है गजराज संपका कारण यही ।
कहां पूणीका ताग कहां मत्तंगकी देही ॥
कहे गिरधर कविराय सम्पसे वैरी कम्पत ।
जो होवे पुण्यवान तॉ घर पावे सम्पत—

(१०२)

बनिक अपने बापको ठगत न लगावे बार ।
काम पडे जननी ठगे जहां लियो अवतार ॥

प्रायश्चित्तमें ही वृद्धि करना (इसकी विधि निशीथ सूत्रमें है.) आलोचना करनेवालोंके च्यार भांगा है. यथा—आचार्यमहाराजकी आज्ञासे मुनि अन्य स्थल विहार कर कितने अरसेसें वापीस आचार्यमहाराजके समीप आये, उसमें कितने ही दोष लगे थे. उसकी आलोचना आचार्यश्रीके पासमें करते है.

(१) पहले दोष लगा था. उसकी पहले आलोचना करे, अर्थात् क्रमःसर प्रायश्चित्त लगा होवे. उसी माफिक आलोचना करे.

(२) पहले दोष लगा था, परन्तु आलोचना करते समय विस्मृत हो जानेके सबबसे पहले दूसरे दोषोंकी आलोचना करे फिर स्मृति होनेसे पहले सेवन कीये हुवे दोषोंकी पीछे आलोचना करे.

(३) पीछे सेवन कीया हुवा दोषोंकी पहले आलोचना करे.

(४) पीछे सेवन कीये हुवे दोषोंकी पीछे आलोचना करे.

आलोचना करते समय परिणामोंकी चतुर्भंगी.

(१) आलोचना करनेवाले मुनि पहला विचार किया था कि अपने निष्कपटभावसे आलोचना करनी. इसी माफिक शुद्ध भावोंसे आलोचना करे, ज्ञानवन्त मुनि.

(२) मायारहित शुद्ध भावोंसे आलोचना करनेका इरादा था, परन्तु आलोचना करते समय मायासंयुक्त आलोचना करे. भावार्थ—ज्यादा प्रायश्चित्त आनेसे अन्य लघु मुनियोंसे मुजे लघु होना पडेगा, लोगोंमें मानपूजाकी हानि होगी–इत्यादि विचारोंसे मायासंयुक्त आलोचना करे.

(३) पहला विचार था कि मायासंयुक्त आलोचना करुंगा.

जगमें होत हंसाय चितमें चैन न पावे ।
खान पान सनमान राग रंग मनहू न भावे ॥
कहे गिरधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे ।
खटकत है दीलमांहि कीये जो विन विचारे ॥

(१०६)

भाई वैर न कीजीये गुरु पंडित कविराय ।
वेटा वनिता पोरिया यज्ञ करावनहार ॥
यज्ञ करावनहार राजमंत्री जो होइ ।
विप्र जुवारी वैद्य आपके तपे रसोई ॥
कहे गिरधर कविराय जुगनसे यह चल आई ।
इन तरहसे वैर भूल मत करीये भाई ॥

(१०७)

वेगम गावे गालीयां कर कर मनमें कोड ।
वूढी हूई है वेशर भी अव तो ममता छोड ॥
अव तो ममता छोड वणी गाई अरु नाची ।
कहे दास सागर अव क्युं न ले पाछी ॥
कर्मराय देशे धका यम कुंटसी रोड ।
वेगम गावे गालीयां कर कर मनमें कोड ॥

(१०८)

ढुढीये इन्ही संसारमें पेट भरनके काज ।
गध्धा जीम भमता फीरे, जीम तीतर पर वाज ॥

करना तथा प्रायश्चित्त तप करके निकलते हुवेको अगर लघु दोष लग जावे, तो उसी तपकी अन्दर सामान्यतासे वृद्धि कर शुद्ध कर देना.

(१८) इसी माफिक वहु वचनापेक्षा भी समझना.

जो मुनि प्रायश्चित्त सेवन कर निर्मळ भावोंसे आलोचना करते है. उसको कारण वतलाते हुवे, हेतु वतलाते हुवे, अर्थ व-तलाते हुवे इस लोक, परलोकके आराधकपनाके अक्षय सुख वत-लाते हुवे प्रायश्चित्त देवें, और दीया हुवा प्रायश्चित्तमें सहायता कर उसको यथा निर्वाह हो एसा तप कराके शुद्ध वना लेवे. यह फर्ज गीतार्थ आचार्य महाराजकी है.

(१९) वहुतसे मुनि ऐसे है कि जो प्रायश्चित्त सेवन कीया, उसकी आलोचना भी नहीं करी है. उसे शास्त्रकारोंने 'प्रायश्चित्ती-ये' कहा है. और वहुतसे मुनि निरतिचार व्रत पालन करते है, उसे 'अप्रायश्चित्तीये' कहा है, वह दोनों प्रायश्चित्तीये, अप्राय-श्चित्तीये मुनि एकत्र रहना चाहे, एकत्र वैठना चाहे, एकत्र शय्या करना चाहे, तो उस मुनियोंको पेस्तर [1]स्थविर महाराजको पु-छना चाहिये, अगर स्थविर महाराज किसी प्रकारका खास का-रन जानके आज्ञा देवे, तो उस दोनों पक्षवाले मुनियोंको एकत्र रहना कल्पै. अगर स्थविर महाराज आज्ञा न दे तो उस दोनों पक्षवालोंको एकत्र रहना नहीं कल्पै. अगर स्थविर महाराजकी

---

१ स्थविर तीन प्रकारके होते है (१) वय स्थविर ६० वर्षकी आयुष्यवाला (२) दीक्षा स्थविर वीस वर्षका चारित्र पर्यायवाला, (३) सूत्र स्थविर स्थानागसूत्र और समवायाग सूत्रके जानकार तथा कितनेक स्थानोंपर आचार्य महाराजको भी स्थ-विरके नाममें ही वतलाये है.

उर अंतर धूंधवाय जले ज्यों काचकी भट्ठी ।
जरेगो लोही मांस रह गइ हाडकी तट्ठी ॥
कहे गिरधर कविराय सुनो हो मेरे मिन्ता ।
वह नर कैसे जिवन्त जाहि तन व्यापै चिन्ता ॥

(११२)

धोखे दाडिमके सुवा गयो नारियल खान ।
फल खायो पाई सजा फिर लाग्यो पछतान ॥
फिर लाग्यो पछतान बुद्धि अपनीको रोयो ।
निर्गुनियोंके संग बैठ गुन अपनो ही खोयो ॥
कहे गिरधर कविराय कहुँ जइये नहीं ओखे ।
चोंच खटकके टुटी सुवा दाडिमके धोखे ॥

(११३)

पूर्वदिशा पलटी अर्क उगे पश्चिमदिशी ।
सदा काल कलयुगे ज्वाला वर्षे शशि ॥
सायर तजे मर्याद अचल गिरि होय चलाचल ।
पावक शीतलता भजे पृथ्वी जो जाय रसतल ॥
शिर सहस्र नाग धुणे कदा, धरा उपर निचे गगन ।
जिनहर्ष ताइं न पलटे उत्तम पुरुष बोल्या वचन ॥

(११४)

अंजन[1] मंजन[2] चन्दन[3] चीर[4], दोउ कर कंकण[5] बाजु[6] धीर ।
बिंदली[7] निलाड जबकती भाल, शोभित हार फुलनकी माल ॥

जिस ग्लानोंकी वैयावच्चके लीये भेजा था, उसकी वैयावच्च कोन करे? इस लये उस मुनिको शीघ्रतापूर्वक ही जाना चाहिये.

(२१) इसी माफिक रवाने होते समय आचार्यमहाराज तप छोडनेका न कहा हो, तो उस मुनिको जो प्रायश्चित्तका तप कर रहा था, उसी माफिक तप करते हुवे ही ग्लानिकी वैयावच्चमें जाना चाहिये. रहस्तेमें विलंब न करे.

(२२) इसी माफिक पेस्तर आचार्यमहाराजका इरादा था कि विहार समय इस मुनिको कहे कि-रहस्तेमें तप छोड देना, परन्तु विहार करते समय किसी कारणसे कह नहीं सका हो तो उस मुनिको तप करते हुवे ही ग्लानोंकी वैयावच्चमें जाना चाहिये. पूर्ववत् शीघ्रतासे.

(२३) कोइ मुनि गच्छको छोडके एकल प्रतिमारुप अभिग्रह धारण कर अकेला विहार करे. अगर अकेले विहार करनेमें अनेक परिसह उत्पन्न होते है. उसको सहन करनेमें असमर्थ हो, तथा आचारादि शीथिल हो जानेसे या किसी भी कारणसे पीछे उसी गच्छमें आना चाहे तो गणनायकको चाहिये कि-वह उस मुनिसे फिरसे आलोचना प्रतिक्रमण करावे और उसको छेद प्रायश्चित्त तथा फिरसे उत्थापन देके गच्छमें लेवे.

(२४) इसी माफिक गणविच्छेदक

(२५) इसी माफिक आचार्योपाध्यायको भी समझना.

भावार्थ—आठ[1] गुणोंका धणी हो, वह अकेला विहार कर सकता है. अकेला विहार करनेमें अप्रतिबन्ध रहनेसे कर्मनिर्जरा बहुत होती है. परन्तु इतना शक्तिमान होना चाहिये. अगर परिसह सहन करनेमें असमर्थ हो उसे गच्छमें ही रहना अच्छा है.

---

१ स्थानायांग सूत्रके आठवें स्थानको देखो

घरको धंधो छोडके, भेली मीली बहु नार ।
कवि कहे समभायने, बाइयों कहीं निकाल्यो सार ॥

(११८)

व्याख्यानकी तैयारी हुइ, बहेनो मीली हजार ।
श्रावक वाणी भेलसी, अपों वातोंने होशीयार ॥
वातोंने होशीयार, करे कोइ छाने छाने ।
केई होय निःशंक, वरजे तांही नही माने ॥
सद्गुरु वाणी वागरे, बोले कंठको तान ।
कवि कहे समभायके, बाइयों सुनो व्याख्यान ॥

(११६)

वेश्याको ज्ञान कांहा, गधाहुको पान कांहा ।
नाजरको नार कांहा, अन्धेको आरसी ॥
मूर्खका मान कांहा, दुष्टका दान कांहा ।
कपटिकी प्रीत कांहा, खोटी उर धारसी ॥
कायरका युद्ध कांहा, कृपणका धन कांहा ।
शत्रुका संग कांहा, दगोकर मारसी ॥
कहे कवि रंग, दुष्टहु का छोड संग ।
भावे कहो सिधी, भावे कहो पारसी ॥

(१२०)

ज्ञानसे ज्ञान आदरसत्कार पावे ।
ज्ञानसे ज्ञान भाव लच्मी घर आवे ॥

(३१) जो कोइ साधु गच्छ छोडके पार्श्वस्थी लिंगको स्वीकार करे अर्थात अन्य यतियोंके लिंगमें रहे और वापिस स्वगच्छमें आना चाहे. तो उसे कोइ आलोचना प्रायश्चित्त नहीं. फक्त व्यवहारसे उसकी आलोचना सुन ले, फिर उस मुनिको गच्छ में ले लेना चाहिये. भावार्थ—अगर कोइ राजादिका जैन मुनियों पर कोप हो जानेसे अन्य साधुवोंका योग न होनेपर अपना संयमका निर्वाह करनेके लीये अन्य यतियोंके लिंगमें रह कर, अपनी साधुक्रिया बराबर साधन करता केवल शासन रक्षणके लीये ही ऐसा कार्य करे, तो उसे प्रायश्चित्त नहीं होता है. इस विषयमें स्थानांग सूत्र चतुर्थ स्थानकी चौभंगी, तथा भगवती सूत्र निग्रंथाधिकारे विशेष खुलासा है.

(३२) जो कोइ साधु स्वगच्छको छोडके व्रत भंग कर गृहस्थधर्मको सेवन कर लीया हो बाद में उसको परिणाम हो कि मैंने चारित्र चिंतामणिको हाथसे गमा दीया है. अर्थात संसारसे अरुचि—संवेगकी तर्फ लक्ष्य कर फिरसे उसी गच्छमें आना चाहे तो आचार्य महाराज उसकी योग्यता देखे, भविष्यके लीये ख्याल कर. उसे छेदके तप प्रायश्चित्त कुछ भी नहीं दे. किन्तु पुनः उसी रोजसे दीक्षा देवे.

(३३) जो कोइ साधु अकृत्य ऐसा प्रायश्चित्त स्थानको सेवन करे फिरसे शुद्ध भावना आनेसे आलोचना करनेकी इच्छा करे, तो उस मुनिको अपने आचार्योपाध्याय जो बहुश्रुत, बहु आगमका जाणकार, पांच व्यवहारके ज्ञाता हो उन्होंके समीप आलोचना करे, प्रतिक्रमण करे, पापसे विशुद्ध हो, प्रायश्चित्तसे निवृत्त हो. हाथ जोडके कहे कि—अब में ऐसा पापकर्मको सेवन न करुंगा. हे भगवन ! इस प्रायश्चित्तकी यथायोग्य आलोचना दो. अर्थात् गुरु देवे उस प्रायश्चित्तको स्वीकार करे.

नही गांटसे गीरपडा, नही काउको दीन ।
देतों देखे ओरको जिन्हसे वदन मलीन ॥

(१२४)

सज्जन एसा किजिये, जेसे तनकी छाय ।
भेद भाव नहीं चित्तमें, एकरूप हो जाय ॥
मित्र एसा किजिये, जेसे शिरका बाल ।
काटे कटावे फीरं कटे, कबुह न छोडे ख्याल ॥

प्रास्ताविक दोहा.

सबसे अधिका प्रेम है, प्रेमसे अधिका नियम ।
जहां घर नियम न प्रेम है, तहां घर कुशल न क्षेम ॥१॥
संगत शोभा पाईये, सुनो अक्कबर वैन ।
वहीज काजल ठीकरी, वहीज काजल नयन ॥ २ ॥
मन मोति गीरवे रखा, प्रभु तुमारे पास ।
भक्ति व्याज नित्यका वढे, नहीं छूटणकी आश ॥ ३ ॥
काच कटोरो नयन धन, मौती और मन ।
इतना तुटा नहीं मीले, पहेला करो जतन ॥ ४ ॥
पापी रे तुं पापकर, पापकरीयो गति होय ।
जो तुं पा पकरं नहीं तो, नरकसे राखे न कोय ॥ ५ ॥

(३९) अगर ऐसा मंदिरमूर्त्तिका भी जहांपर योग न हो, तो फिर ग्राम तथा नगर यावत् सन्निवेश के वाहार जहांपर कोइ सुननेवाला न हो, ऐसे स्थलमें जाके पूर्व तथा उत्तर दिशाके सन्मुख मुंह कर दोय हाथ जोड शिरपे चडाके ऐसा शब्द उच्चारण करना चाहिये-हे भगवन्! मैंने यह अकृत्य कार्य कीया है. हे भगवन्! में आपकी साक्षीसे अर्थात् आपके समीप आलोचना करता हुं. प्रतिक्रमण करता हुं मेरी आत्माकी निंदा करता हुं. घृणा करता हुं. पापोंसे निवृत्ति करता हुं आत्मा विशुद्ध करता हुं. आइंदासे ऐसा अकृत्य कार्य नहीं करुंगा ऐसा कहे. यथायोग स्वयं प्रायश्चित्त स्वीकार करना चाहिये.

भावार्थ—जो किंचित् ही पाप लगा हो, उसकी आलोचनाके लीये क्षणमात्र भी प्रमाद न करना चाहिये. न जाने आयुष्यका किस समय बन्ध पडता है. काल किस समय आता है. इस वास्ते आलोचना शीघ्रतापूर्वक करना चाहिये. परन्तु आलोचनाके सुननेवाला गीतार्थ, गंभीर, धैर्यवान् होना चाहिये. वास्ते शास्त्रकारोंने आलोचना करनेकी विधि बतलाइ है. इसी माफिक करना चाहिये. इति.

श्री व्यवहार सूत्र-प्रथम उद्देशाका संक्षिप्त सार.

(२) दूसरा उद्देशा.

(१) दो स्वधर्मी साधू एकत्र हो विहार कर रहे है. उसमें एक साधुने अकृत्य कार्य अर्थात् किसी प्रकारका दोषको सेवन कीया है, तो उस दोषका यथायोग उस मुनिको प्रायश्चित्त देके

शत सज्जन और लच्च मित्र, मजलस मित्र अनेक ।
संकट में साथे रहै, सौ लाखनमें एक ॥ १७ ॥
चरण धरे चिंता करे, नयन निद्रा नही जोर ।
ढुंढत फीरे सुवरणको, जाहार कवी अरु चौर ॥ १८ ॥
ग्रंथ पढियो अरु तप तप्यो, सहे न परिसह धर्म ।
केवल तत्त्व पेच्छान विन, मिट्यो न मनको भर्म ॥ १९ ॥
बंध्यासे बंध्यो मीले, छुटे कोन उपाय ।
संगत किजे निर्बंधकी, सो छीनमें देत छोडाय ॥ २० ॥
विद्या गुरुभक्तिसे लहै, फीर करिये अभ्यास ।
भील द्रोणकी भक्तिसे, सीख्यो बाण विलास ॥ २१ ॥
पंडितकी लातों भली, नही मूर्खकी वात ।
इन्ह लातों सुख उपजे, उन्ह वातों दुःख थात ॥ २२ ॥
जल न डुबावे काष्टकों, कहो कहांकी प्रित ।
अपना सिंचा जांनके, यह वडोंकी रीत ॥ २३ ॥
सिच्याथा गुण जानके, कपटी निकला काट । ~
गुन अवगुन जाना नहीं उलटी पाडी वाट ॥ २४ ॥
वडा कधी डुबावे नहीं, जो पकडे तस बांह ।
नावा संग लोहा रहे, तीरत फीरत जल मांह ॥ २५ ॥
जो जां के सरणे वसे, तांको उन्हीकी लाज ।
उलटे जल मच्छली तीरे, बहे जात गजराज ॥ २६ ॥
यौवन था तब रूप था, पुछते थे सब मांय ।

शक्तिको देख तप प्रायश्चित्त देवे. अगर वह साधु तकलीफ पाता हो तो उसकी वैयावच्चमें एक दुसरे साधुको रखे अगर वह साधु दुसरे साधुवोंसे वैयावच्चही करावे और अपना प्रायश्चित्तका तपभी न करे तो वह साधु दुतरफी प्रायश्चित्तका अधिकारी बनता है.

(६) प्रायश्चित्त तप करता हुवा साधु ग्लानपनेको प्राप्त हुवा 'गणविच्छेदक' के पास आवे तो गणविच्छेदकको नहीं कल्पै कि उस ग्लान साधुको निकाल देना कि तिरस्कार करना. गणविच्छेदक का फर्ज है कि उस ग्लान मुनिकी अग्लानपणे वैयावच्च करावे. जहांतक वह रोगमुक्त न हो, वहांतक, फिर रोगमुक्त हो जानेपर व्यवहार शुद्धि निमित्त सदोष साधुकी वैयावच्च करनेवाले मुनिको स्तोक—नाम मात्र प्रायश्चित देवे.

(७) अणुट्टप्पा पायश्चित (तीन कारणोंसे यह प्रायश्चित होता है, देखो, बृहत्कल्पसूत्रमें) वहता हुवा साधु ग्लानपनेको प्राप्त हुवा हो, वह साधु गणविच्छेदकके पास आवे तो गणविच्छेदकको नहीं कल्पै, उसको गणसे निकाल देना या उसका तिरस्कार करना. गणविच्छेदककी फर्ज है कि उस मुनिकी अग्लानपणे वैयावच्च करावे. जहांतक उस मुनिका शरीर रोगरहित न हो वहांतक. फिर रोग रहित हो जाने के बाद जो मुनि वैयावच्च करी थी, उसको नाम मात्र स्तोक प्रायश्चित देना. कारण—वह रोगी साधु प्रायश्चित वह रहा था. जैन शासनकी बलिहारी है कि आप प्रायश्चित्त भी ग्रहन करे, परन्तु परोपकारके लीये उस ग्लान साधुकी वैयावच्च कर उसे समाधि उपजावे.

(८) एव पारंचिय प्रायश्चित्त वहता हुवा (दशवा प्रायश्चित)

(९) 'खित्तचित्त' किसी प्रकारकी वायुके प्रयोगसे विक्षिप्त—विकल चित्त हुवा साधु ग्लान हो, उसको गच्छ बहार

थीग् पापी सुकत नहीं, सो भर भर आवत नीर ॥ ३८ ॥
काजल तजे न श्यामता, मोती तजे न श्वेत ।
दुर्जन तजे न कुटिलता, सज्जन तजे न हेत ॥ ३९ ॥
च्यार मील्या चौसठ हस्या, वीस रहा कर जोर ।
सो त्रासठ वृस हुवे, पंडित करो निछोर ॥ ४० ॥
जो देवे तो वेश्याने दीजे, ब्राह्मणने दीयो नरक पडिजे ।
वेश्याने दीयो वदेगा वंश, ब्राह्मणने दीया जाय निर्वंश ।४१।
मूर्ख मुख कमान है, वचन कठोरके तीर ।
एसा मारे खेंचके, सो साले सर्व शरीर ॥ ४२ ॥
एक उदरके उपने, जामण जाया वीर ।
महिलावोंके वश हुवे, नहीं शाकमें सीर ॥ ४३ ॥
प्रितम की प्यारी प्रितमसे कबहु न रहत न्यारी ।
प्रितम सुतो प्यारी जागे, प्यारी सुतो पीयु कबहु न जागे ॥४४॥
कोन चाहे वरसना, कोन चाहे धूप ।
कोन चाहे बोलना, कोन चाहे चुप ॥ ४५ ॥
माली चाहे वरसना, धोबी चाहे धूप ।
शाहा चाहे बोलना, चौर चाहे चुप ॥ ४६ ॥
विद्या वनिता नृप लता, यह नहीं जाय गिनीत ।
जाहांके संग निशदिन रहे ताहांसे ही लपटंत ॥ ४७ ॥
पातर प्रित पतंग रंग, ताते मदकी तार ।
पाछल दिन अरु अउत धन, जातां न लागे वार ॥४८॥

मुनिको व्यवहार शुद्धिके निमित्त नाममात्र प्रायश्चित्त देवे. कारण-वह ग्लान साधु उस समय दोषित है, परन्तु वैयावच करनेवाला उत्कृष्ट परिणामसे तीर्थंकर गोत्र बांध सकता है.

(१८) नौवा प्रायश्चित्त सेवन करनेवालेको अगृहस्थपणे दीक्षा देना नहीं कल्पै गणविच्छेदकको.

(१९) नौवा अनवस्थित नामका प्रायश्चित्त कोइ साधु सेवन कीया हो, उसको फिरसे गृहस्थलिंग धारण करवाके ही दीक्षा देना गणविच्छेदकको कल्पै.

(२०) दशवा प्रायश्चित्त करनेवालेको अगृहस्थपणे दीक्षा देना नहीं कल्पै गणविच्छेदकको.

(२१) दशवा पारंचित नामका प्रायश्चित्त किसी साधुने सेवन कीया हो, उसको फिरसे गृहस्थलिंग धारण करवाके ही दीक्षा देना गणविच्छेदकको कल्पै.

(२२) नौवां अनवस्थित तथा दशवां पारंचित नामका प्रायश्चित्त किसी साधुने सेवन कीया हो, उसे गृहस्थलिंग करवाके तथा अगृहस्थ (साधु) लिंगसे ही दीक्षा देना कल्पै.

भावार्थ—नौवां दशवां प्रायश्चित्त (बृहत्कल्पमें देखो) यह एक लौकिक प्रसिद्ध प्रायश्चित्त है. इस वास्ते जनसमूहको शासनकी प्रतीतिके लीये तथा दुसरे साधुवोंका क्षोभके लीये उसे प्रसिद्धिमें ही गृहस्थलिंग करवाके फिरसे नवी दीक्षा देना कल्पै. अगर कोइ आचार्यादि महान् अतिशय धारक हो, जिसकी विशाल समुदाय हो, अगर कोइ भवितव्यताके कारण ऐसा दोष सेवन कीया हो, वह बात गुप्तपणे हो तो उसको प्रायश्चित्त अन्दर ही देना चाहिये. तात्पर्य-गुप्त प्रायश्चित्त हो, तो आलोचना भी गुप्त देना. और प्रसिद्ध प्रायश्चित्त हो तो आलोचना भी प्रसिद्ध देना परन्तु आलो-

इतना वेग संभारीये, धान पान यजमान ॥ ५६ ॥
हंसा सर नहीं छोडीये, जो जल खारो होय ।
तलाव तलाई डोलतों, भला न केहसे कोय ॥ ६० ॥
अक्कल अमूल्य गुण रत्न, अक्कले पुच्छे राज ।
एक अक्कलकी नकलसें, सबही सुधरे काज ॥ ६१ ॥
और वस्तु कि पारीखा, माप गणित अरु तोल ।
नर नारीकी पारीखा, होत बोल से मोल ॥ ६२ ॥
जाणतो अजाण बनजे, तत्त्व लीजे ताणी ।
आगलो अग्नि सम होय, तो आप बन जावे पाणी ॥६३॥
सरवर सलीला मूर्ख धन, हरकोइ हर लेत ।
बलीहारी नर कुंपकी, सो गुण विनो बुंद न देत ॥ ६४ ॥
काच कटारो नयन धन, मोती अरू मन ।
इतना तुटा न जुडे, पहेला करो जतन ॥ ६५ ॥
सलीला सोनो सुघड नर, तुट जुडे सो वार ।
मूर्ख घडो कुंभारको, सो जुडे न दुजी वार ॥ ६६ ॥
चलना है पण रहना नहीं, चलना विसवावीस ।
दोय घडीके कारणे, कोन गुंथावे शिस ॥ ६७ ॥
आयुष्य घटे तृष्णा बढे, मन घट बढ रहत हमेश ।
प्रालब्ध न घटे पुरुषकी, सुन राजा सुरतेश ॥ ६८ ॥
शीतल पातल मन्दगति, अल्प आहार नहीं रोस ।
यह त्रियामें पांच गुण, यह ही तुरंगमें दोष ॥ ६९ ॥

आनेकी इच्छा करे, अगर उस समय अन्य साधु शंका करे कि-इसने दोष सेवन कीया होगा या नहीं ? उन्होंकी प्रतीतिके लीये आचार्यमहाराज उसकी जांच करे. प्रथम उस साधुको पूछे. अगर वह साधु कहे कि -मैंने अमुक दोष सेवन कीया है. तो उसको यथायोग्य प्रायश्चित्त देना. अगर साधु कहे कि—मैंने कुच्छ भी दोष सेवन नहीं कीया है, तो इसकी सत्यतापर ही आधार रखे. कारण प्रायश्चित्त आदि व्यवहारसे ही दीया जाता है.

भावार्थ—अगर आचार्यादिको अधिक शंका हो तो जहां पर वह साधु गया हो, वहांपर तलास करा लि जावे. भगवती सूत्र ८-६ मनकी आलोचना मनसे भी शुद्ध हो सकती है.

(२५) एक पक्षवाले साधुको स्वल्पकालके लीये आचार्योपाध्यायकी पद्वी देना कल्पै. परन्तु गच्छवासी निग्रंथोंको उसकी प्रतीति होनी चाहिये.

भावार्थ—जिन्होंको रागद्वेषका पक्ष नहीं है. अथवा एक गच्छमें गुरुकुलवासको चिरकाल सेवन कीया हो. प्रायः गुरुकुलवास सेवन करनेवालेमें अनेक गुण होते है. नये पुराणे आचार व्यवहार, साधु आदिके जानकार होते है, गच्छमर्यादा चलानेमे कुशल होते है, उन्होंको आचार्यकी मौजुदगीमे पद्वी दी जाती है. अगर आचार्य कभी कालधर्म पाया हो, तो भी उन्होंके पीछे पद्वीका झघडा न हो, साधु सनाथ रहै. स्वल्पकालकी पद्वी देनेका कारण यह है कि—अगर दुसरा कोइ योग्य हो तो वह पद्वी उन्होंको भी दे सकते है. अगर दुसरा पद्वीके योग्य न हो तो, चिरकालके लीये ही उसी पद्वीको रख सकते है.

(२६) जो कोइ मुनि परिहार तप कर रहे है, और कितनेक अपरिहारिक साधु एकत्र निवास करते है. उन्होंको एक

पल पलमें करे प्यार, पल पलमें पलटे परा।
बोलतीयोंकी लार, रञ्ज उढवो राजीया ॥ ८१ ॥
हृदय होवे हाथ, तो कुसंगीके तां मीलो ।
चन्दन भुंजंगो साथ कालो न लागे कीसनिया ॥ ८२ ॥
सज्जन एसा नही किजिये, जेसा चीरमी बोर।
मुख मीलीयों मीठा रहै, भीतर वडा कठोर ॥ ८३ ॥
सज्जन एसा किजिये, जिसमें लक्षण बत्तीस ।
भीड पड्यो भागे नहीं, देवे अपना शिष ॥ ८४ ॥

(चोकडा)

सोनो कहे सुनो सोनार, उत्तम मेरी जात ।
काल मुखकी कुकसी (चीरमि), तुली हमारी साथ ॥ १ ॥
मैं हूं वनकी लाडकि, लाल हमारो रंग ।
काला मुंह जिनसे हुवा, तूली नीचकी संग ॥ २ ॥
भोली चीरमी भावली, भोली कर रही वात ।
जो तेरेमें गुण हुवे तो, जल हमारी साथ ॥ ३ ॥
वन जाइ वन उपनि, वनमे किया बनाय ।
तुतो जले कलंकके कारण, मेरी जले बलाय ॥ ४ ॥ ॥८५॥

(चोकडा)

नही वाडी नही केतकी, नही फुलनका ढंग ।
हुं थांने पुछुं हे सखी, भ्रमर भस्म लगावत अंग ॥ १ ॥

भावार्थ—प्रायश्चित लेके तप कर रहा है. इसी वास्ते वह साधु शुद्ध है. वास्ते उसने लाया हुवा अशनादि स्थविर भोगव सके. परन्तु अबी तक तपको पूर्ण नहीं कीया है. वास्ते उस साधुके पात्रादिमें भोजन न करें. उससे उस साधुको क्षोभ रहता है. तपको पूर्णतासे पार पहुंचा सकते हैं. इति.

श्री व्यवहार सूत्र-दूसरा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

—❀—

(३) तीसरा उद्देशा.

(१) साधु इच्छा करे कि मैं गणको धारण करुं. अर्थात शिष्यादि परिवारको ले आगेवान हो के विचरुं. परन्तु आचारांग और निशीथसूत्रके जानकार नहीं है. उन साधुको नहीं कल्पै गणको धारण करना.

(२) अगर आचारांग और निशीथसूत्रका ज्ञाता हो, उस साधुको गण धारण करना कल्पै.

भावार्थ—आगेवान हो विचरनेवाले साधुवोंको आचारांगसूत्रका ज्ञाता अवश्य होना चाहिये, कारण-साधुवोंका आचार, गोचार विनय. वैयावच्च, भाषा आदि मुनि मार्गका आचारांगसूत्रमें प्रतिपादन कीया हुवा है. अगर उस आचारसे स्खलना हो जावे, अर्थात् दोष लग भी जावे तो उसका प्रायश्चित निशीथ सूत्रमें है. वास्ते उक्त दोनों सूत्रोंका जानकार हो, उस मुनिको ही आगेवान होके विहार करना कल्पै.

(३) आगेवान हो विहार करनेकी इच्छावाले मुनियोंको पेस्तर स्थविर (आचार्य) महाराजसे पूछना इसपर आचार्य महाराज योग्य जानके आज्ञा दे तो कल्पै.

कष्ट क्रियासे प्रभु मीले, तो चुपचाप ही रहेना ॥ ८९ ॥

ज्ञान गुजारस किजिये, अपनि अपनी देख।
दुःखी दुनिया भावली, इसमें मीन न मेख ॥ ९० ॥

अध्यातम लखियो नही, न पीनों समता नीर।
पंडित भयो तो कहा भयो प्यारे, निष्फल गमायो तीर ॥ ९१ ॥

जगत जिन्होंका दास है, सो है जगके दास।
पंडित भयो तो कहा भयो प्यारे, मीटी न जगकी आस ॥९२॥

रुप अध्यातम कन्तसे, कबु हि न भीडी बाथ।
पंडित भयो तो कहा भयो प्यारे, धूले धोया हाथ ॥ ९३ ॥

आतम अनुभव रस नही चाख्यो, नव नव चाल्यो चाल।
पंडित भयो तो कहा भयो प्यारे, बन्धी न सरवर पाल ॥९४॥

पांच कामिनी मीलके तोंको, विलमावे दीन रात।
पंडित भयो तो कहा भयो प्यारे, जाणी नही निज जात ॥९५॥

आतम स्वरूप नही ओलख्यो, नही ओलख्यो वपु रूप।
पंडित भयो तो कहा भयो प्यारे, नही छुटो भव कूप ॥ ९६ ॥

जे जे कारण मोचना, कारज मान्या तास।
पंडित भयो तो कहा भयो प्यारे, मीटी न तृष्णा प्यास ॥९७॥

हठयोग साध्या बहुत, आसन समाधि ध्यान।
पंडित भयो तो कहा भयो प्यारे, पाम्यो नही सद्ज्ञान ॥९८॥

तपकर तन शोषण कर्यो, क्रिया कालो काल।

आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्त्तक, स्थविर, गणि, गणविच्छेदक, पद्वी देना कल्पै. और उस मुनिको उक्त पद्वी लेना भी कल्पै.

(१०) इससे विपरीत हो तो न संघको पद्वी देना कल्पे, न उस मुनिको पद्वी लेना कल्पै. कारण-पद्वीधरोंके लीये प्रथम इतनी योग्यता प्राप्त करनी चाहिये. जो उपर लिखी हुइ है.

(११) एक दिनके दिक्षितको भी आचार्यपद्वी देना कल्पे.

भावार्थ—किसी गच्छके आचार्य कालधर्म प्राप्त हुवे, उस गच्छमें साधु संप्रदाय विशाल है, किन्तु पीछे ऐसा कोइ योग्य साधु नहीं है कि जिसको आचार्यपद पर स्थापन कर अपना निर्वाह कर सके. उस समय अच्छा, उच्च, कुलीन जिस कुलकी अन्दर बडी उदारता है, विश्वासकारी उच्च कार्य कीया हुवा है, संसारमें अपने विशाल कुटुम्बका हितपूर्वक निर्वाह कीया हो, लोकमें पूर्ण प्रतीत हो-इत्यादि उत्तम गुणोंवाले कुलका योग्य पुरुष दीक्षा ली हो, ऐसा एक दिनकी दीक्षावालेको आचार्यपद देना कल्पे.

(१२) वर्ष पर्याय धारक मुनिको आचार्य उपाध्यायकी पद्वी देना कल्पै.

भावार्थ—कोइ गच्छमें आचार्योपाध्याय कालधर्म प्राप्त हो गये हो और चिरदिक्षित आचार्योपाध्यायका योग न हो, उस हालतमें पूर्वोक्त जातिवान्, कुलवान्, गच्छ निर्वाह करने योग्य अचिरकाल दीक्षित है, उसको भी आचार्योपाध्याय पद्वी देनी कल्पै. परन्तु वह मुनि आचारांग निशीथका जानकार न हो तो उसे कह देना चाहियें कि-आप पेस्तर आचारांग निशीथका अभ्यास करों. इसपर वह मुनि अभ्यास कर आचारांग निशीथ सूत्र पढ ले, तो उसे आचार्योपाध्याय पद्वी देना कल्पै. अगर

अथश्री दानछत्तिसी.

दोहा.

आदिनाथ प्रणमुं सदा । जिण दिनो वर्षी दान ॥ प्रथम संयम आदर्यो । उपनो केवळज्ञान ॥ १ ॥ ऋषभ श्रेण गणधर नमुं । द्वादशांगी ज्ञान ॥ च्यार प्रकारे धर्ममें । प्रथम प्ररूप्यो दान ॥ २ ॥ दुष्कर देणो दानको । भगवतीको ज्ञान ॥ सावधान थइ सांभळो । आगे करूं व्याख्यान ॥ ३ ॥ नयो मत प्रगट भयो । बाजे तेरापन्थ ॥ दान उत्थापे बापडा । वह कुमतिका कन्थ ॥ ४ ॥

ढाल—देशी गोपीचन्दके ख्यालकी

मुंडोमति देखो । पाप कहेरे पन्थीदानमें ॥ मु० ॥टेर॥ नाम लेइ भगवती केरो । बोधोने वेकावे ॥ शतक आठ उदेशो पांचमो । असती पाठ बतावेरे ॥ मु० १ ॥ वहांतो कर्मादान बतायो । श्रावक विणजकी वात ॥ अनाथ दुर्बल पन्थी कहे । उदय हुवो मिथ्यात रे ॥ मुं २ ॥ भूखों मरता रंक भिखारी । कोइ चिणा भूगडा देवे ॥ कहो पाप लागो किण विधसे । तत्त्व विचारी लेवे रे ॥ मु० ३ ॥ शतक आठ उदेशो छठो ।

और न तो उस साधुको पद्वी धारण करना कल्पै. अगर तीन वर्ष अतिक्रमके बाद चतुर्थ वर्पमें प्रवेश किया हो, वह साधु कामविकारसे बिलकुल उपशांत हुवा हो, निवृत्ति पाइ हो, इंद्रियों शांत हो, तो पूर्वोक्त सात पद्वीमेंसे किसी प्रकारकी पद्वी देना और उस मुनिको पद्वी लेना कल्पै.

भावार्थ—भवितव्यताके योगसे किसी गातार्थको कर्मोदय के कारणसे विकार हो, तो भी उसके दिलमें शासन बसा हुवा है कि वह गच्छ, वेष छोडके अकृत्य कार्य किया है, और काम उपशांत होनेसे अपना आत्मस्वरुप समझ दीक्षा ली है. ऐसेको पद्वी दी जावे तो शासनप्रभावनापूर्वक गच्छका निर्वाह कर सकेगा.

(१७) इसी माफिक गण विच्छेदक.

(१८) एवं आचार्योपाध्याय.

भावार्थ—अपने पदमें रहके अकृत्य कार्य करे, उसे जाव-जीव किसी प्रकारकी पद्वी देना और उन्होंको पद्वी लेना नहीं कल्पै. अगर अपने पदको, वेषको छोड पूर्वोक्त तीन वर्षोंके बाद योग्य जाने तो पद्वी देना और उन्होंको लेना कल्पै भावनापूर्ववत्.

(१९) साधु अपने वेषको विना छोडे और देशांतर विना गये अकृत्य कार्य करे, तो उस साधुको जावजीवतक सात पद्वीमेंसे कोइभी पद्वी देना नहीं कल्पै.

भावार्थ—जिस देश, ग्राममें वेषका त्याग कीया है, उसी देश, ग्रामादिमें अकृत्य कार्य करनेसे शासनकी लघुता करनेवाला होता है. वास्ते उसे किसी प्रकारकी पद्वी देना नही कल्पै. अ-गर किसी साधुको भोगावली कर्मोदयसे उन्माद प्राप्ति हो भी जावे, परन्तु उसके हृदयमें शासन बस रहा है. वह अपना वे-शका त्याग कर, देशान्तर जा, अपनी कामाग्निको शांत कर, फिर

॥मुं० १५॥ कहे वर्षादान दियो वीरजी। जिणसुं कर्म सताया ॥ एसी वात कहेतो अज्ञानी। जरा नहीं शरमायारे ॥ मुं० १६ ॥ मल्लिजिनवर दान देइने। लीनो संयमभार ॥ एक प्रहर छदमस्थ रह्या सरे। हुवा केवलके धार रे ॥ मुं० १७ ॥ त्रिविधे २ पापज त्यागी। फासु भोजन लावे ॥ पडिमा धारी छेदसूत्रमें। श्री जिन इम फरमावे ॥ मुं० १८ ॥ तीणने दीयांसु पाप बतावे। अव्रत रहे गई बाकी ॥ जोवो हृदय फुटा कुमत्यांका। चडि मोहकी छाकी रे ॥मुं०१९॥ आज्ञा दी प्रतिमाकी जिनवर। जिणमें मागने खावे। आप तीरे दातार जो डूबे। तो चौरसे अधिको थावे रे ॥मुं० २०॥ द्रव्य धन तो चौर लेजावे। लारे पाप नही आवे ॥ यों माल ले जावे पाप दे जावे। तो विश्वास घाती कहेवावे रे ॥मुं० २१॥ जो पाप हुवे पडिमामें। जिनवर कियुं बतावे। अव्रतकी क्रिया नहीं लागे। भगवती आप बतावे रे ॥मुं० २२ ॥ पाखंड कपट चलावे एसो। अधिकरण श्रावक काया। पाप कहूं इण न्यायसे सरे। भगवतीकी वाया रे ॥मुं० २३॥ अधिकरण नाम हे क्रोधको सरे बृहत्कल्प को पाठ। वलि व्यवहार सूत्रमें देखो। मत करो मनका थाठरे ॥मुं० २४॥ शतक शोले उदेशो दुजो। आहारक शरीर अधिकार। अधिकरण कहि साधुकी काया। हृदय करो विचार रे ॥मुं० २५॥ अंबड श्रावक करे पारणा। सो-सो-घर मझार। श्रावक दान देइने हरषे। लाभ तणो नहीं पार रे ॥ मुं० २६ ॥ शतक बारा उदेशो पहेलो। संखपोरकलि सार।

बोले, उत्सूत्र बोले, आगम विरुद्ध आचरण करे-इत्यादि असत्य बोले तो सबके सबको जावजीवतक सात प्रकारमेंसे कोइभी पद्वी देना नहीं कल्पै. अर्थात् सबके सब पद्वीके अयोग्य है. इति..

श्री व्यवहारसूत्र-तीसरा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

(४) चौथा उद्देशा.

(१) आचार्योपाध्यायजीको शीतोष्ण कालमें अकेले विहार करना नहीं कल्पै.

(२) आचार्योपाध्यायजीको शीतोष्ण कालमें आप सहित दो ठाणेसे विहार करना कल्पै अधिक सामग्री न हो, तो उतने रहै, परन्तु कमसे कम दो ठाणे तो होनाही चाहिये.

(३) गणविच्छेदकको शीतोष्ण कालमें आप सहित दो ठाणे विहार करना नहीं कल्पै.

(४) आप सहित तीन ठाणेसे कल्पै. भावना पूर्ववत्.

(५) आचार्योपाध्यायको आप सहित दो ठाणे चातुर्मास करना नहीं कल्पै.

(६) आप सहित तीन ठाणे चातुर्मास करना कल्पै. भावना पूर्ववत्.

(७) गणविच्छेदकको आप सहित तीन ठाणे चातुर्मास करणा नहीं कल्पै.

(८) आप सहित च्यार ठाणे चातुर्मास रहना कल्पै.

भावार्थ—कमसे कम रहे तो यह कल्प है. आचार्योपाध्यायसे एक साधु गणविच्छेदकको अधिक रखना चाहिये. कारण-

॥ अथ श्री अनुकंपा छत्तीसी ॥

दोहा.

समकित रत्न शिरोमणि, जिणके लक्षण पांच । मूढ भेद समजे नहीं, खाली कर रह्या खांच ॥ १ ॥ शम संवेग जाणीये, निर्वेग तीजो होय । अनुकंपाने आसता, नयन खोल कर जोय ॥ २ ॥ जीव अनंता शिर धरी, शिवपुर गया और जाय । सावद्य थापे बापडा, चउगति गोता खाय ॥ ३ ॥ बडो उंठ आगे भयो, पाछल भई कतार । सबही डूबा बापडा, बडा उंठकी लार ॥ ४ ॥

॥ ढाल-देशी घूमरकी ॥

सावद्य अनुकंपा पन्थीडा थापे । श्री वीरजी वचन उत्थापे हो लाल ॥ सा० टेर ॥ आगे तो एक प्रतिमा उत्थापी, ये प्रगट बाजे टोला हो लाल । दया-दान भिखम उत्थापी, ज्यांरा भर्ममें पडिया केइ हो लाल ॥ सा० ॥१॥ अनुकंपाने सावद्य बतावे, जिणसुं दया उठावे हो० । कांकरा भेली बोगा नेकावे, ज्यांने जरा शरम नहीं आवे हो० ॥ सा० ॥ २ ॥ किसा सूत्रको पाठ बतावो, के मनका कुहेतु लगावो हो० ।

रात्रिसे अधिक नहीं रहना. अगर रोगचिकित्सा होनेपर एक दोय रात्रिसे अधिक ठहरे, तो जितना दिन ठहरे, उतना ही दिनोंका छेद तथा तप प्रायश्चित्त होता है.

भावार्थ—आचारांग और निशीथसूत्रके जानकार हो वह मुनि ही मुनिमार्गको ठीक तौरपर चला सकता है. अपठितोंके लीये रहस्तेमें एक दोय रात्रिसे अधिक ठहरना भी शास्त्रकारोंने बिलकुल मना कीया है. कारण—लाभके बदले बडा भारी नुकशान उठाना पडता है. चारित्र तो क्या परन्तु कभी कभी सम्यक्त्व रत्न ही खा बेठना पडता है. वास्ते आचारांग और निशीथके अपठित साधुवोंको आगेवान होके विहार करनेकी साफ मनाइ है.

(१२) इसी माफिक चातुर्मास रहे हुवे साधुवोंके आगेवान मुनि काल करनेपर दुसरा आचारांग-निशीथके जानकार हो तो उसकी निश्राय रहना. अगर ऐसा न हो तो चातुर्मासमें भी विहार कर, अन्य साधु जो आचारांग-निशीथका जानकार हो, उन्होंके पास आ जाना चाहिये. परन्तु एक दोय रात्रिसे अधिक अपठित साधुवोंको रहनेकी आज्ञा नहीं है. स्वेच्छासे रह भी जावे, तो जितने दिन रहे, उतने दिनका छेद तथा तपप्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

(१३.) आचार्योपाध्याय अन्त समय पीछले साधुवोंको कहे कि—हे आर्य ! मेरा मृत्युके वाद आचार्यपदवी अमुक साधुको दे देना. ऐसा कहके आचार्य कालधर्म प्राप्त हो गये. पीछेसे साधु (संघ) उस साधुको आचार्योपाध्याय पद्वीके योग्य जाने तो उसे आचार्योपाध्याय पद्वी दे देवे, अगर वह साधु पद्वीके योग्य नहीं है, (आचार्य रागभावसे ही कह गये हो.) अगर गच्छमें

श्री वामादेवीनो जायो हो० । शरणो दई स्वर्ग पहुंचायो, ये तो धरणेंद्र पद पायो हो० ॥ सा० ॥ १३ ॥ वाडा पिंजरा भरीया देखी, नेमप्रभु हित राच्या हो० । जीव छोडाई दीनी वधाई, ये तो दया रंग रस माच्या हो० ॥ सा० ॥ १४ ॥ हाथीरा भवमें शुसीयों वचायो, ये तो श्रेणिक सुत कहायो हो० । चोडे पाठ ज्ञाताजी बोले, ये तो कुमत्यांरे मन नहीं भायो हो० ॥ सा० ॥ १५ ॥ मेघरथराजा पौषध कीनो, ज्यांरे शरणे पारेवो आयो हो० । करी अनुकंपा जीव वचायो, ये तो शान्तिनाथ पद पायो हो० ॥ सा० ॥ १६ ॥ मेतारज शिर चर्मज बांध्यो पत्तिनी करुणा आणी हो० । दयारंगमें मुनिवर रमता, करी शिवसुन्दरी पटराणी हो० ॥ सा० ॥ १७ ॥ कडवी तुंबी परिठण चाल्या, कीडीयांरी करुणा आणी हो० । धर्मरूचि मुनि मोटका कहीजे, ये तो ज्ञाता सूत्रकी वाणी हो० ॥ सा० ॥ १८ ॥ छे कायाको जीवणो वांछे, मुनिवर फासुक भोजी हो० । शतक पहेले उदेशे नवमे, निर्णय करे कोइ खोजी हो० ॥ सा० ॥ १९ ॥ आवश्यक अर्थ देखो अज्ञानी, थें मोहनिद्राथी जागो हो० । पडतो वालक भेले मुनिवर, ज्यांरो ध्यान रति नहीं भांगो हो० ॥ सा० ॥ २० ॥ पन्थीरे कोइ फांसी दे जावे, कोइ खोले अनुकंपा आणी हो० । दोनों जणांने निन्हव पाप वतावे, या नरकतणी निशानी हो० ॥ सा० ॥ २१ ॥ शतक सोले उद्देशे तीजे, मुनिवर ध्यानमें

योग्य साधु होने पर उसकी पदवी ले लेना चाहिये माँगनेपर पद्धी छोड दे तो प्रायश्चित्त नहीं है. अगर न छोडे तथा छोडाने के लीये साधु संघ प्रयत्न न करे, तो सबको तथा प्रकारका छेद और तप प्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

(१५) आचार्योपाध्याय किसी गृहस्थको दीक्षा दी है, उस साधुको वडी दीक्षा देनेका समय आनेपर आचार्य जानते हुवे च्यार, पांच रात्रिसे अधिक न रखे. अगर कोइ राजा और प्रधान शेठ और गुमास्ता तथा पिता और पुत्र साथमें दीक्षा ली हो, राजा, शेठ, और पिता जो [1]वडी दीक्षा योग्य न हुवा हो और प्रधान, गुमास्ता, पुत्र वडीदीक्षा योग्य हो गये हो तो जबतक राजा, शेठ और पिता वडी दीक्षा योग्य नहो वहांतक प्रधान, गुमास्ता और पुत्रको आचार्य वडी दीक्षासे रोक सकते है परन्तु ऐसा कारण न होनेपर उस लघु दीक्षावाला साधुको वडी दीक्षासे रोके तो रोकनेवाला आचार्य उतने दिनके तप तथा छेदके प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(१६) एवं अनजानते हुवे रोके.

(१७) एवं जानते अनजानते हुवे रोंके, परन्तु यहां दश रात्रिसे ज्यादा रखनेसे प्रायश्चित्त होता है.

नोटः—अगर पिता, पुत्र और दुसराभी साथमें दीक्षा ली हो, पिता वडी दीक्षा योग्य न हुवा, परन्तु उसका पुत्र वडी दीक्षा योग्य हो गया है और साथमें दीक्षा लेनेवालाभी वडी दीक्षाके योग्य हो गया हे. अगर पिताके लीये पुत्रको रोक दीया

---

१ सात रात्रि, च्यार मास, छे मास—छोटी दीक्षाका तीन काल है इतने समयमें प्रतिक्रमणसें पंडिषण नामका अध्ययन तथा दशवैकालिकका चतुर्थाध्ययन पढलेनेवालोंको वडी दीक्षा दी जाती है

॥ सा० ॥ ३१ ॥ थोरा पाटसु आखडि पडियो, मूर्च्छा आई तेहने हो० । कपटी न टालो पाप पोतारो, आच्छो नहीं करे एहने हो० ॥ सा० ॥ ३२ ॥ पाणीसे माखी काडी बचावे, पाप टालो इम बोले हो० । नहीं करे आच्छी श्रावक व्रतीने, बुद्धिवंत मनमें तोले हो० ॥ सा० ॥ ३३ ॥ देखो छलंइण कपटयो केरो, निर्दयामन भाइ हो० । पाप नहीं कहेवे जीव बचायो, पुन्छियों सेति कसाइ हो० ॥ सा० ॥ ३४ ॥ नेमनाथजीने पार्श्वप्रभुजी, श्रीवीरजिनेश्वर राया हो० । शान्तिनाथजी पूर्वभवमें, ये तो दयारा भंडार खुलाया हो० ॥ सा० ॥ ३५ ॥ सात निन्हवतो आगे हुवा, नहीं कोइ दया उत्थापि हो० । भिखम निन्हव पांचमे आरे, ए तो जड समकितकी कापी हो० ॥ सा० ॥ ३६ ॥

कलश.

दया सागर करूणा आगर, जगत रक्षण आप हो । नाग बचायो स्वर्ग पहुंचायो, अश्वसेन नन्दन आप हो । साल बहुंतेर कार्तिक मासे, कृष्ण सप्तमी शनिवारजी । करूणारसमें रमत गयवर, करदो बेडा पारजी ॥ १ ॥ इति.

(२०) विना आज्ञा विहार करे, तो एक दोय तीन च्यार पांच रात्रिसे अपने स्थविरोंको देखके सत्यभावसे आलोचना —प्रतिक्रमण कर, यथायोग्य प्रायश्चित्तको स्वीकार कर पुनः स्थविरोंकी आज्ञामें रहे, किन्तु हाथकी रेखा सुके वहांतक भी आज्ञा वहार न रहै आज्ञा है वही प्रधान धर्म है

(२१) आज्ञा वहार विहार करतेको च्यार पांच रात्रिसे अधिक समय हो गया हो, वादमें स्थविरोंको देख सत्यभावसे आलोचना-प्रतिक्रमण कर, जो शास्त्र परिमाणसे स्थविरों तप, छेद, पुन उत्थापन प्रायश्चित्त देवे, उसे सविनय स्वीकार करे, दुसरी दफे आज्ञा लेके विचरे. जो जो कार्य करना हो, वह सब स्थविरोंकी आज्ञामे ही करे, हाथकी रेखा सुके वहांतक भी आज्ञाके वहार नही रहे तीसरा महाव्रतकी रक्षाके निमित्त स्थविरोंकी आज्ञाको यावत् काया कर स्पर्श करे एव

(२२) (२३) दो अलापक विहारसे निवृत्ति होनेका है.

भावार्थ—इस च्यारों सूत्रोंमें स्थविरोंकी आज्ञाका प्रधानपणा वतलाया है स्थविरोंकी आज्ञाका पालन करनेसे ही मुनियोंका तीसरा व्रत पालन हो सकता है.

(२४) दो स्वधर्मी साथमें विहार करते है जिसमें एक शिष्य है, दुसरा रत्नत्रयादिसे गुरु है. शिष्यको श्रुतज्ञान तथा शिष्यादिका परिवार वहुत है, और गुरुको स्वल्प है तदपि शिष्यको गुरुमहाराजका विनय वैयावच्चादि करना, आहार, पाणी, वस्त्र, पात्रादि अनुकूलतापूर्वक लाके देना कल्पै. गुरुकुल वास रह के उन्होंकी सेवा-भक्ति करना कल्पै. कारण—जो परिवार है, वह सब गुरुकृपाका ही फल है.

(२५) और जो शिष्यको श्रुतज्ञान तथा शिष्यादिका

लेखजी । दोय सहस्र मल्लिजिनवरके, ज्ञाता सूत्र लो देखजी ॥ मू० ॥ २ ॥ ज्ञातामें कृष्णकी राणी, बत्तिस सहस्रको मानजी । सोला सहस्र कही ते देखो, यों अन्तगडको ज्ञानजी ॥ मू० ॥ ३ ॥ चार ज्ञान केशी श्रमणके, रायपसेणी जोयजी । तीन ज्ञान उत्तराध्ययन बोले, शुं तफावत होयजी ॥ मू० ॥ ४ ॥ विराधि पहले देवलोके, भगवती में वातजी । ज्ञातामें गइ इशान देवी, आठोंइ एक साथजी ॥ मू० ॥ ५ ॥ उववाइमें ताप देखो, उत्कृष्ट जोतीषी जायजी । भगवतीमें तांवली तापस, इशानेंद्र कहायजी ॥ मू० ॥ ६ ॥ उववाइ छट्ठे देवलोके, जावे चौदा पूर्वना धारजी । कार्तिक सेठ प्रथम देवलोके, भगवतीमें तारजी ॥ मू० ॥ ७ ॥ तीन करण योगथी टाले, श्रावक कर्मादानजी । उपासकमें हल निवाडा, सगडाल आनंद गुणवानजी ॥ मू० ॥ ८ ॥ वेदनी कर्मकी बारह मुहूर्त, जघन्य स्थिति पन्नवण जाणजी । तेहिज अंतर्मुहूर्त दाखी, उत्तराध्ययनकी वाणजी ॥ मू० ॥ ९ ॥ भगवतीमें वाल मरणथी, वदे अनंत संसारजी । ठाणांगमें दो मरणकी, आज्ञा दी कीरतारजी ॥ मू० ॥ १० ॥ चौदा पूर्व महावल भण्यो, भगवती ब्रह्म देवलोकजी । छट्ठाथी नीचे नहीं जावे, उववाइ सूत्र अवलोकजी ॥ मू० ११ ॥ लसण मांहे जीव अनंता, उत्तराध्ययनमें सारजी । प्रत्येककाय पन्नवणा बोले, पंचांगी लो धारजी ॥ मू० ॥ १२ ॥ दोय भाषारी आज्ञा नहि, दशवैकालिक जाणजी । चार भाषा आराधी बोली, पन्न-

(५) पांचवा उद्देशा.

(१) जैसे साधुवोंको आचार्य होते है, वैसे ही साध्वीयोंको आचार, गौचरमें प्रवृत्ति करानेवाली प्रवर्तिनीजी होती है. उस प्रवर्तणीजीको शीतोष्णकालमें आप सहित दो ठाणे विहार करना नहीं कल्पै

(२) आप सहित तीन ठाणे विहार करना कल्पै

(३) गणविच्छेदणी—एक सवाडेमें आगेवान होके विचरे, उसे गणविच्छेदणी कहते है. उसे आप सहित तीन ठाणे शीतोष्णकालमें विहार करना नहीं कल्पै.

(४) परन्तु आप सहित च्यार ठाणेसे विहार करना कल्पै.

(५) प्रवर्तणीको आप सहित तीन ठाणे चातुर्मास करना नहीं कल्पै.

(६) आप सहित च्यार ठाणे चातुर्मास करना कल्पै.

(७) गणविच्छेदणीको आप सहित च्यार ठाणे चातुर्मास करना नहीं कल्पै.

(८) आप सहित पांच ठाणे चातुर्मास करना कल्पै. भावना पूर्ववत

(९) ग्राम नगर यावत राजधानी वहुतसी प्रवर्तणीयों आप सहित तीन ठाणे, वहुतसी गणविच्छेदणीयों आप सहित च्यार ठाणेसे शीतोष्ण कालमें विचरना कल्पै. और वहुतसी प्रवर्तणीयों आप सहित च्यार ठाणे. वहुतसी गणविच्छेदणीयों आप सहित पांच ठाणे चातुर्मास करना कल्पै.

(१०) एक दुसरेकी निश्रामें रहैं.

तीसूत्र मझारजी ॥ मू० ॥ २४ ॥ पांच महानदी नहीं उतरे, ठाणांगरो लेखजी । मार्ग जातां नदी उतरे, आचारांग लो देखजी ॥ मू० ॥ २५ ॥ चौमासामें विहार न करणो, बृहत्कल्पकी साखजी । पांचमे ठाणे विहार करणको, वीतराग गया भाखजी ॥ मू० ॥ २६ ॥ त्रिविधे २ हिंसा नही करणी, आचारांग दशवैकालजी । नदी उतरे नावमें बेठे, आचारांगमे भालजी ॥ मू० ॥ २७ ॥ कल्पसूत्र साधु चौमासे, विगइ नहीं लेवे वारंवारजी । सूयगडांगमें निषेध कीनो, नहीं लेवे अणगारजी ॥ मू० ॥ २८ ॥ सचित्त मिश्र वस्तु नहीं लेवे, दशवैकालिक जाणजी । आचारांगमें लुण जो खावे, आ जिनवरकी आणजी ॥ मू० ॥ २९ ॥ भगवतीसूत्रमें देखो, निवज तीखो होयजी । कडवो कह्यो अध्ययन चौत्तिसे, उत्तराध्ययन लो जोयजी ॥ मू० ॥ ३० ॥ मृषावादका त्यागज कीना, दशवैकालिक जाणजी । आचारांग 'मृगादिक' तांइ, जुठ बोले दया आणजी ॥ मू० ॥ ३१ ॥ समवायांगे तेविश तीर्थकर, सूर्य उग्यो केवळज्ञानजी । नेमिश्वर पाछले पहोरे, दशाश्रुतस्कंध पेच्छाणजी ॥ मू० ॥ ३२ ॥ सूर्य उगतां ज्ञान उपनो, तेविश तीर्थंकर जाणजी । पाछले पहोरे मल्लि जिनवर, ये ज्ञातासूत्रकी वाणजी ॥ मू० ॥ ३३ ॥ दश प्रकारे वैयावच्च बोली, उववाइमें लेखजी । हरिकेशीकी वैयावच्च करतां, जक्ष ब्राह्मण हणीया देखजी ॥ मू० ॥ ३४ ॥ प्राणभूत जीव सत्त्वने,

आपको यह प्रवर्त्तणीके कहनेसे पद्वी दी जाती है, परन्तु अन्य कोइ पद्वी योग्य साध्वी होगी, तो आपको यह पद्वी छोडनी होगी. बादमे कोइ साध्वी पद्वी योग्य हो, तो पहलेसे पद्वि छोडा लेनी इसपर पद्वी छोड दे तो किसी प्रकारका प्रायश्चित्त नहीं है, अगर वह पद्विको नहीं छोडे तो जितने दिन पद्वी रखे. उतने दिन छेद तथा तपप्रायश्चित्त होता है. अगर उसकी पद्वी छोडनेमें साध्वी और संघ प्रयत्न न करे, तो उस साध्वी तथा संघ सबको प्रायश्चित्तके भागी बनना पडता है.

(१४) इसी माफिक प्रवर्त्तणी साध्वी प्रबल मोहनीयकर्मके उदयसे कामपीडित हो, फिर संसारमें जाते समयकाभी सूत्र कहेना भावना चतुर्थ उद्देशा माफिक समझना.

(१५) आचार्य महाराज अपने नवयुवक तरुण अवस्थावाले शिष्यको आचारांग और निशीथ सूत्रका अभ्यास कराया हो, परन्तु वह शिष्यको विस्मृत होगया जाण आचार्यश्रीने पुछा कि-हे आर्य! जो तुमको आचारांग और निशीथसूत्र विस्मृत हुवा है, तो क्या शरीरमें रोगादिकके कारणसे या प्रमादके कारणसे? शिष्य अर्ज करे कि—हे भगवन! मुजे प्रमादसे सूत्र विस्मृत हुवा है. तो उस शिष्यको जावजीवतक सातों पद्वीयोंसे किसी प्रकारको पद्वी देना नहीं कल्पे. कारण अभ्यास कीया हुवा ज्ञान विस्मृत हो गया. तो गच्छका रक्षण कैसे करेगा? अगर शिष्य कहे कि—हे भगवन! प्रमादसे नहीं, किन्तु मेरे शरीरमें अमुक रोग हुवा था, उस व्याधिसे पीडित होनेसे सूत्रों विस्मृत हुवा है. तब आचार्यश्री कहे कि-हे शिष्य! अब उस आचारांग और निशीथको फिरसे याद कर लेगा? शिष्य कबूल करे कि—हाँ मैं फिरसे उन सूत्रोंको कंठस्थ कर लुंगा. तो उस शिष्यको

सागर विजय विमाणजी । पन्नवणामें इगतीस सागर, जघन्य थिति परिमाणजी ॥ मू० ॥ ४५ ॥ ऋषभ वीरके वीचे समवायांग, अंतरो कोडाकोड एकजी । बयालीस सहस्र वर्ष छे उणा, जंबुद्विप पन्नति लो देखजी ॥ मू० ॥ ४६ ॥ आधाकर्मी आहार भोगवे, सूयगडांग बोले एमजी । कर्मोंथी लेपे न लेपे, दो बातों मीले केमजी ॥ मू० ॥ ४७ ॥ भगवती सूत्रमें देखो, आधाकर्मी अधिकारजी । चार गतिको कह्यो पोषणो, रुले बहुत संसारजी ॥ मू० ॥ ४८ ॥ उणो सहस्र तेतीस सूर्य, चक्षु स्पर्शे चोथे अंगजी । बत्तीस सहस्र एक जोजन अधिको, जंबुद्विप पन्नति रंगजी ॥ मू० ॥ ४९ ॥ शतक आठ उद्देशो दशमो, भगवती अंग जाणजी । पोग्गले पोग्गली कह्यो जीवने, तेहनो सुं परिमाणजी ॥ मू० ॥ ५० ॥ सोला नाम मेरुका चाल्या, समवायांगमें जोयजी । आठमो प्रियदर्शन दाख्यो, चौदमो उत्तर होयजी ॥ मू० ॥ ५१ ॥ तीमहिज जंबूद्विप पन्नति, मेरुका सोला नामजी । आठमो सलोचय चौदमो उत्तम, यों पंचांगीको कामजी ॥ मू० ॥ ५२ ॥ अणआहारी दोसमय स्थिति, पन्नवणा पेछाणजी । तीन समय भगवती बोले, आ जिनवरकी आणजी ॥ मू० ॥ ५३ ॥ चर्म तीर्थंकर कल्पसूत्रें बयालीस वर्ष दीक्षा संगजी । बयालीस वर्ष भाजेरा, देखो चोथो अंगजी ॥ मू० ॥ ५४ ॥ जीवाभिगम रुचक द्विपको, कह्यो असंख्यातो मानजी । ठाम

साध्वीयोंके पास ही आलोचना करना कल्पै. अगर अपनी अपनी समाजमें आलोचना सुननेवाला हो, तो उन्होंके पास ही आलोचना करना, प्रायश्चित्त लेना. अगर दश बोलोंका जानकार साध्वीयोंमें उस समय हाजर न हो, तो साध्वीयों साधुवोंके पास भी आलोचना कर सके, और साधु साध्वीयोंके पास आलोचना कर सके

भावार्थ—जहांतक आलोचना सुन प्रायश्चित्त देनेवाला हो, वहांतक तो साध्वीयोंको साध्वीयोंके पास और साधुवोंको साधुवोंके पास ही आलोचना करना चाहिये कि जिससे आपसमें परिचय न वढे. अगर ऐसा न हो, तो आलोचना क्षणमात्र भी रखना नहीं चाहिये. साध्वीयों साधुओंके पास भी आलोचना ले सके.

(२०) साधु साध्वीयोंके आपसमें संभोग है, तथापि आपसमें वैयावच्च करना नहीं कल्पै, जहांतक अन्य वैयावच्च करनेवाला हो वहांतक. परन्तु दुसरा कोइ वैयावच्च करनेवाला न हो, उस आफतमें साधु, साध्वीयोंकी वैयावच्च तथा साध्वीयों, साधुवोंकी वैयावच्च कर सके. भावना पुर्ववत्

(२१) साधुको रात्रि तथा वैकालमे अगर सर्प काट खाया हो, तो उसका औषधोपचार पुरुष करता हो, वहांतक पुरुषके पास ही कराना. अगर उसका उपचार करनेवाली कोइ स्त्री हो, तो मरणान्त कष्टमें साधु स्त्रीके पास भी औषधोपचार करा सकते है. इसी माफिक साध्वीको सर्प काट खाया हो, तो जहांतक स्त्री उपचार करनेवाली हो, वहांतक स्त्रीसे उपचार कराना, अगर स्त्री न हो, किन्तु पुरुष उपचार करता हो, तो मरणान्त कष्टमें पुरुषसे भी उपचार कराना कल्पै. यहांपर लाभालाभका कारण देखना. यह कल्प स्थविरकल्पी मुनियोंका है. जिनकल्पी मुनिको

॥ मू० ॥६५॥ भगवतीमें पल्योपमको, कुवा तणो कह्यो मानजी। तेथी फर्क घणेरो दिसे, अणुयोग द्वारको ज्ञानजी ॥मू० ॥ ६६ ॥ असुर अवधि ज्ञान जघन्यथी, पचविस जोजन चोथे उपांगजी। अंगुल भाग असंख्यातो दाख्यो, देव सुधर्मा चंगजी ॥ मू० ॥ ६७ ॥ वादर तेउ मनुष्य लोकमें, पन्नवणा पहेचाणजी। देखो अग्नि कही नरकमें, उतराध्ययन उगणीसमें जाणजी ॥मू०॥ ६८ ॥ शौरीपुरमें नेमीनाथजी, कह्या उत्तराध्ययन मझारजी। दीक्षा ले तो कहि द्वारका, मूलथी काडो सारजी ॥ मू० ॥६९॥ शौरीपुर पूर्वमें जाणो, द्वारका पश्चिम जाणजी। राम कृष्ण वंदन कर चाल्या, आ जिनवरकी वाणजी ॥ मू० ॥ ७० ॥ सात कुलकरका नाम बताया, ठाणांग ठाणे सातजी। दश कुलकर कह्या दशमें ठाणे, मूळथी मेलो आतजी ॥ मू० ॥७१॥ आवती उत्सर्पिणी जाणो, कुलकरको अधिकारजी। सातमे दशमे ठाणे देखो, उपरवत् विचारजी ॥ मू० ॥७२॥ सुधर्म इशान कह्यो बरोबर, जीवाभिगम जोयजी। भगवती सूत्रमें देखो, इशान उंचो होयजी ॥ मू० ॥७३॥ तीर्छि गति कही असुरकी, नंदीश्वरद्विप मझारजी। राजधानी असंख्या द्विपे, भगवती अंग विचारजी ॥ मू० ॥७४॥ महावेदना सम्यग्द्रष्टी नेरीयां, प्रथम शतके थायजी। शतक अठारे उदेशो पांचमो, अल्प वेदना कहेवायजी ॥ मू० ॥७६॥ बारमो तीर्थंकर कह्यो कृष्णने, अंतगड अधिकारजी। जिनवर

(५) पहले दाल उतरी हो तो दाल लेना कल्पै, शेप नहीं.

(६) पहले चावल दाल दोनों उतरा हो तो दोनों कल्पै.

(७) चावल दाल दोनों पीछेसे उतरा हो तो दोनों न कल्पै.

(८) मुनि जानेके पहले जो उतरा हो वह लेना कल्पै.

(९) मुनि जानेके बाद चूलासे जो उतरा हो वह लेना न कल्पै.

(१०) आचार्योपाध्यायका गच्छकी अन्दर पांच अतिशय होते है.

(१) स्थंडिल, गोचरी आदि जाके पीछे उपाश्रयकी अन्दर आने समय उपाश्रयकी अन्दर आके पगको प्रमार्जन करे.

(२) उपाश्रयकी अन्दर लघु वडीनीतिसे निवृत्त हो सके.

(३) आप समर्थ होनेपर भी अन्य साधुवोंकी वैयावच्च इच्छा हो तो करे. इच्छा हो तो न भी करे.

(४ उपाश्रयकी अन्दर एक दोय रात्रि एकान्तमें ठेर सके

(५) उपाश्रयकी बहार अर्थात ग्रामादिमें, बहार जगलमे एक दो रात्रि एकान्तमें ठेर सके.

यह पांच कार्य सामान्य साधु नही कर सके, परन्तु आचार्य करे, तो आज्ञाका अतिक्रम न होवे.

(११) गणविच्छेदक गच्छकी अन्दर दोय अतिशय होते है.

(१) उपाश्रयकी अन्दर एकान्त एक दो रात्रि रह सके.

(२) उपाश्रयकी बहार एक दो रात्रि एकान्तमे रह सके

भावार्थ—आचार्य तथा गणविच्छेदकोंके आधारसे शासन रहा हुवा है उन्होंके पास विद्यादिका प्रयोग अवश्य होना चाहिये कभी शासनका कार्य हो तो अपनी आत्मलब्धिसे शासनकी प्रभावना कर सके

नहि जाणुं, कल्पसूत्र परिमाणजी। आचारांगमें कहे में जाणुं, आ वीर जिणंदकी वाणजी ॥ मू० ॥ ८७ ॥ पहेला देव और पछी मनुष्यने, धर्म कह्यो जगनाथजी। अच्छेरामे वाणी निष्फळ, मेलो मूलके साथजी ॥ मू० ॥ ८८ ॥ योग वैपारसे हिंसा हुवे, भगवतीमें वातजी। आज्ञा दीनी शुभ योगकी, मेलो उववाइ सातजी ॥ मू० ॥ ८९ ॥ बारा व्रत लेशुं इम बोल्या, आनंद उपाशक जोयजी। सात व्रत उचरीयां जाणो, अतिचार बारेका होयजी ॥ मू० ॥ ९० ॥ वनस्पति संघट्टो नहि करणो, भगवतीमें लेखजी। झाड पकड खाइसु नीकले, आचारांग लो देखजी ॥ मू० ॥ ९१ ॥ समय मात्र प्रमाद न करणो, उत्तराध्ययन दशमे जाणजी। तीजे पहोरे निद्रा लेणी, छवीशमे अध्ययन परिमाणजी ॥ मू० ॥ ९२ ॥ गृहस्तीने कठण नहि बोले, निशिथसूत्रमें लेखजी। केशी कहे मूढ तुच्छ प्रदेशी, रायपसेणी लो देखजी ॥ मू० ॥ ९३ ॥ निशिथमें साधुने वरज्यो, कोइ चीज देखवा जायजी। विपाक मृगापुत्रने गौतम, देख्यो जिनवर वायजी ॥ मू० ॥ ९४ ॥ गृहस्तीसे परिचय नहि करणो, दशवैकालिक जाणजी। गौतम अंगुली पकडी एमंतो, आ अंतगडकी वाणजी ॥ मू० ॥ ९५ ॥ छ पुरुष सातमी नारी, अंतगड अर्जुन जाणजी। पुरुष सातमो छे कही नारी, प्रगट पाठ परिमाणजी ॥ मू० ॥ ९६ ॥ इत्यादि बहु बोल चाल्या, मूल सूत्रमें भालजी। स्याद्वादकी

करते हो, वहांपर साधु साध्वीको नहीं ठेरना चाहिये. कारण आत्मा निमित्तवासी है. जीवोंको चिरकालका काम विकारसे परिचय है. अगर कोइ एसे अयोग्य स्थानमे ठेरेगा, तो उस कामी पुरुष या पशु आदिको देख विकार उत्पन्न होनेसे कोइ अचित श्रोत्रसे अपने वीर्यपात के लीये हस्तकर्म करते हुवे को अनुघातिक मासिक प्रायश्चित होगा

(१७) इसी माफिक मैथुन संज्ञासे हस्त कर्म करते हुवे को अनुघातिक चातुर्मासिक प्रायश्चित होगा

(१८) साधु साध्वीयोंके पास किसी अन्य गच्छसे साध्वी आइ हो. उसका साधु आचार खडित हुवा है. संयममें सबल दोष लगा है, अनाचारसे आचारको भेद दीया है, क्रोधादि कर चारित्रको मलिन कर दीया हो उस स्थानकी आलोचना विगर सुने प्रतिक्रमण न करावे, प्रायश्चित्त न देवे एसेही खंडित आचारवालेकी सुखशाता पूछना, वाचना देना, दीक्षाका देना साथमें भोजनका करना (साध्वीयोंको) सदैव साथमें रहना, स्वल्पकाल तथा चिरकालकी पदवीका देना नहीं कल्पै.

(१९) आचारादि खंडित हुवा हो तो उसे आलोचना प्रतिक्रमण कराके, प्रायश्चित दे शुद्ध कर उसके साथ पूर्वोक्त व्यवहार करना कल्पै.

(२०) (२१) इसी माफिक साधु आश्रयभी दो अलापक समझना.

भावार्थ—किसी कारणसे अन्य गच्छ के साधु साध्वी अन्य गच्छमें जावे तो प्रथम उसको मधुर वचनोंसे समझावे, आलोचनादि करायके प्रायश्चित्त दे पीछे उसी गच्छमें भेज देवे. अगर उस गच्छमें विनय धर्म और ज्ञान धर्मकी खामीसे आया हो, तो उसे

दो बहु आदर मानजी। स्याद्वादकी शैली समजो, लो गुरुगमशे ज्ञानजी ॥ मू० ॥ १०८ ॥

कलश.

नाभिराय कुल वंशभूषण, मरुदेवी मायजी। "अष्टापद" पर आप सिद्धा, गणधर प्रणमे पायजी। एकादशी अषाढ शुक्ल, उगणीश बहुत्तर सालजी। देश मरुधर ग्राम तीवरी, प्रभु जोडी प्रश्नमालजी ॥ १ ॥

॥ इति श्री प्रश्नमाला संपूर्ण. ॥

योंको वन्दन करना, अशनादि देना लेना उस हालतमें साधु, साध्वीयोंके साथ प्रत्यक्षमें संभोगका विसंभोग करे. अर्थात अपने संभोगसे बहार कर देवे. प्रथम साध्वीयोंको बुलवाके कहे कि— हे आर्या! तुमको दो तीन दफे मना करने पर भी तुम अपने अकृत्य कार्यको नहीं छोडती हो. इस वास्ते आज हम तुमारे साथ संभोगको विसंभोग करते हैं उसपर साध्वी बोले कि-मैंने जो कार्य कीया है उसकी आलोचना करती हूं, फिर ऐसा कार्य न करुंगी. तो उसके साथ पूर्वकी माफिक संभोग रखना कल्पे. अगर साध्वी अपनी भूलको स्वकार न करें तो प्रत्यक्षमें ही विसं-भोग कर देना चाहिये. ताके दुसरी साध्वीयोंको क्षोभ रहे.

(६) एवं साधु अकृत्य कार्य करे तो साध्वीयोंको प्रत्यक्षमें संभोगका विसंभोग करना नहीं कल्पे. परन्तु परोक्ष जैसे किसी साथ कहला देवे कि—अमुक अमुक कारणोंसे हम आपके साथ संभोग तोड देते हैं. अगर साधु अपनी भूलको स्वीकार करे, तो साध्वीको साधुके साथ वन्दन व्यवहारादि संभोग रखना कल्पे अगर साधु अपनी भूलको स्वीकार न करें, तो उसको परोक्षपणे संभोगका विसंभोग कर. अपने आचार्योपाध्याय मिलनेपर साध्वी कह देवे कि —हे भगवन्! अमुक साधुके साथ हमने अमुक कार-णसे संभोगका विसंभोग कीया है

(७) साधुवोंको अपने लीये किसी साध्वीको दीक्षा देना, शिक्षा देना साथमें भोजन करना, साथमें रखना, नहीं कल्पे.

(८) अगर किसी देशमें मुनि उपदेशसे गृहस्थ दीक्षा लेता हो, परन्तु उसकी लडकी बाधा कर रही है कि—अगर दीक्षा लो, तो मैंभी दीक्षा लेउंगी. परन्तु साध्वी वहांपर हाजर नहीं है. उस हालतमें साधु उस पिताके साथमे लडकीको साध्वीयोंके लीये

हो निकल्या बाविसके ॥ वीर ॥ ६ ॥ तेरापन्थी अलगा पड्या, टोले टोले हो मांहोमांही जुठके । भेद क्रिया श्रद्धा विषे, करे फोगट हो बहु माथाकुटके ॥ वीर ॥ ७ ॥ गच्छ गच्छान्तर जुवा-जुवा, अन्योअन्य हो बोले जुठ मजुठके । एक बीजाने उत्थापता, मांहोमांही हो करे लुठ मलुठके ॥ वीर ॥८॥ जुठी पटावली बन्धने, मांहोमांही हो करे खाचाताणके, वेष क्रिया श्रद्धा जुइ जुइ, जुदा जुदा हो सहुना ऐंनाणके ॥ वीर ॥ ९ ॥ चौरासीथी वदता हुवा, गच्छ तीनसो हो दश पन्थापन्थके । बावीसमांथी छन्नु थया, थापे उत्थापे हो केइ ग्रन्थाग्रन्थके ॥ वीर ॥ १० ॥ अढाई हजार वर्ष हुवा, कलयुगीया हो पेठा शासन मांहके, घटमां गोचा गालता, लजावे हो प्रभु शासन तोयके ॥ वीर ॥ ११ ॥ संवेगी नाम धरायने, दुरो मुक्यो हो संवेगनो रंगके । लोक लजावे बापडा, न्यारा न्यारा हो जाणो सहूना ढंगके ॥ वीर ॥ १२ ॥ वेष क्रिया पदवी तणा, करे जघडा हो मांहोमांही जुठके । अन्तानुबन्धी राखी रह्या, खाली हो करे माथाकुटके ॥ वीर ॥ १३ ॥ मार्गानुसारीपणो कीहां, कीहां समकित हो चारित्रनी वातके । कलयुगीया वेला हुवा, मांहोमांही हो करे गजबनी वात के ॥ वीर ॥ १४ ॥ देव वीतरागी तुं प्रभु, गुरु वीतरागी हो गौतमादिक जोयके । धर्म वीतरागी पामीने, कलयुगीया हो फोगट देवे खोयके ॥ वीर ॥ १५ ॥ मांहोमांही जुठा कहे, लडी

(१८) परन्तु किसी साधु साध्वीयोंकी वाचना चलती हो, तो उसको वाचना देना कल्पे. अस्वाध्यायपर पाटे (वस्त्र) बन्ध लेना चाहिये. यह विशेष सूत्र गुरुगम्यताका है.

. (१९) तीन वर्षके दीक्षापर्यायवाला साधु, और तीस वर्षकी दीक्षापर्यायवाली साध्वीको उपाध्यायकी पद्वी देना कल्पे

(२०) पांच वर्षके दीक्षापर्यायवाला साधु और साठ वर्षकी दीक्षापर्यायवाली साध्वीको आचार्य (प्रवर्तणी) पद्वी देना कल्पे. पद्वी देते समय योग्यायोग्यका विचार अवश्य करना चाहिये. इस विषय चतुर्थ उद्देशामें खुलासा कीया हुवा है.

(२१) ग्रामानुग्राम विहार करता हुवा साधु, साध्वी कदाच कालधर्म प्राप्त हो, तो उसके साथवाले साधुवोंको चाहिये कि- उस मुनि तथा साध्वीका शरीरको लेके वहुत निर्जीव भूमिपर परठे. अर्थात् एकान्त भूमिकापर परठे. और उस साधुके भंडोपकरण हो, वह साधुवोंको काम आने योग्य हो तो गृहस्थोंकी आज्ञासे ग्रहन कर अपने आचार्यादि वृद्धोंके पास रखे, जिसको जरुरत जाने आचार्यमहाराज उसको देवे. वह मुनि, आचार्यश्रीकी आज्ञा लेके अपने काममें लेवे

(२२) साधु साध्वीयों जिस मकानमें ठेरे है. उस मकानका मालिक अपना मकान किसी अन्यको भाडे देता हो, उस समय कहे कि-इतना मकानमें साधु ठेरे हुवे है. शेष मकान तुमको भाडे देता हुं, तो घरधणीको शय्यातर रखना. अगर घरधणी न कहे, और भाडे लेनेवाला कहे कि-हे साधु ! यह मकान मैंने भाडे लीया है. परन्तु आप सुखपूर्वक विराजो, तो भाडे लेनेवालेको शय्यातर रखना. अगर दोनों आज्ञा दे, तो दोनोंको शय्यातर रखना.

गुरु नामे विचरे गणा, श्रावकना हो वीत्त (द्रव्य) हरण हारके। साचा सत् गुरु स्वलप छे, श्रावकना हो जो चित्त हरण हारके ॥ वीर ॥ २६ ॥ धर्मशाला उपासरा, मठ, धारी हो अपणा करी लिधके । खाता पोता राखे तेहना, मुनि पदने हो जलाञ्जली दीधके ॥ वीर ॥ २७ ॥ पाठ-शाळा थापे आपणी, टीप मंडावे हो बापडा गामो गामके। मायाना मजुरीया फीरे गणा, लजावे हो प्रभु पीलोनुं नामके ॥ वीर ॥ २८ ॥ व्याज वीणंज करे गणा, भाडा लेवे हो करे धीर उद्धारके । केस लडे कोरट छडे, पीली पलटणना होये छे समाचारके ॥ वीर ॥ २९ ॥ छापा परस्पर छापता, देता चेलेंजो हो लडता मांहोमांहके । लोक लजावे बापडा, पीताम्बरी ही अब वीगडता जायके ॥ वीर ॥ ३० ॥ नहीं करीयो नहीं करशके, न कुच्छ हो करणाने योगके । पीला कपडा पहेरके, भला हसाया हो कलयुगीया लोकके ॥ वीर ॥ ३१ ॥ रेल विहारी कोइ थया, कोइ पोटलीया हो थया मायाना मजुरके । साधु साध्वीयों साथे विचरता, पांच सात हो साथे होय मजुरके ॥ वीर ॥ ३२ ॥ पाछली रात्री वेला उठीने, गामोगाम करता विहारके । तुज शासन निंदा-वता पीली पलटणना, हो केता लिखुं समाचारके ॥ वीर ॥ ३३ ॥ क्यां आणा प्रभु ताहरी, क्यां हो आ अज्ञान विला-सके। मुनि मतंगज क्यां प्रभु, क्यां कलयुगीया हो आ साध्वा भापके ॥ वीर ॥ ३४ ॥ एटलां छतां आ बापडा, थइ बेठा

(८) आठवां उद्देशा.

(१) आचार्यमहाराज अपने शिष्य संयुक्त किसी नगरमें चातुर्मास कीया हो, वहांपर गृहस्थोंके मकानमें आज्ञासे ठेरे है. उसमें कोई साधु कहे कि—हे भगवन्! इस मकानका इतना अन्दरका मकान और इतना वहारका मकान में मेरी निश्रामें रखु? आचार्यश्री उस साधुकी अशठता-सरलता जाणे कि—यह तपस्वी है, बीमार है, तो उतनी जगहकी आज्ञा देवे तो उस मुनिको वह स्थान भोगवना कल्पे अगर आचार्य श्री जाणे कि—यह धूर्ततासे आप सुखशीलीयापणासे साताकारी मकान अपनी निश्रामें रखना चाहता है. तो उस जगहकी आज्ञा न दे, और कहे कि हे आर्य! पेस्तर रत्नत्रयादिसे वृद्ध साधु है, उन्होंके क्रमसर स्थान लेनेपर तुमारे विभागमें आवे उस मकानको तुम भोगवना. तो इस मुनिको जैसो आचार्य श्री आज्ञा दे, वैसाही करना कल्पे.

(२) मुनि इच्छा करे कि—मैं हल्का पाट, पाटला, तृणादि, शय्या, संस्तारक, गृहस्थोंसे वहांसे याचना कर लाऊं तो एक हाथसे उठा सके तथा रहस्तेमें एक विश्रामा, दोय विश्रामा, तीन विश्रामा लेके लाने योग्य हो, ऐसा पाट पाटला शीतोष्ण कालके लीये लावे.

भावार्थ—यह है कि प्रथम तो पाट पाटला ऐसा हल्काही लाना चाहिये कि जहां विश्रामाकी आवश्यक्ता ही न रहे अगर ऐसा न मिले तो एक दो तीन विश्रामा खाते हुवे भी एक हाथसे लाना चाहिये.

(३) पाट पाटला एक हाथसे वहन कर उठा सके ऐसा एक दो तीन विश्रामा लेके अपने उपाश्रय तक ला सके. ऐसा जाने कि—यह मेरे चातुर्मासमें काम आवेगा भावना पूर्ववत्.

कालना हो बाना धरे मुंढके । यथाशक्ति खप नवि करे, नवि जाणे हो परमार्थ गुढके ॥ वीर ॥ ४५ ॥ शास्त्र अभ्यास मुक्यो पछ्यों, जवरीसे हो हाके जुठ दफाणके । गाम पंडोलीया थइ रह्या, वातोनी स्वाध्याय हो सुतोनो ध्यानके ॥ वीर ॥ ४६ ॥ भवाभिनन्दी बापडा, सुख शैल्या हो पामर थाता जायके । 'वुडाणं वुडियाणं' न्यायथी, कलयुगीया हो दुर्लभ बोधी थायके ॥ वीर ॥ ४७ ॥ माया कपटाइ समाचरे, मान वडाई हो इर्षा मृषावादके । हितशिक्षा माने नहीं, अन्योअन्य हो करे वादविवादके ॥ वीर ॥ ४८ ॥ गृहस्थी परिचय बहुलो करे, स्वच्छंदता हो कायरता तेम के । स्वार्थता बहु कुटिलता, तुच्छ वस्तुपर हो बहु राखे प्रेमके ॥ वीर ॥ ४९ ॥ पासत्थाने कुशीलीया, अहछंदा हो संसक्ता प्रायके । उसन्ना नित्य पिंडिया, व्रत खंडिया हो बहुलो समुदायके ॥ वीर ॥ ५० ॥ पंडित नाम धरावता, मुर्खना हो करे काम तमांमके । आचार्य नाम धरायने, अनाचार हो सेवे ठामोठाम ॥ वीर ॥ ५१ ॥ क्रियापात्र क्रिया नवि करे, तपस्वी हो जाय लपसी अनेकके । साधु नाम धरायने, वरतावं हो बहुलो अविवेकके ॥ वीर ॥ ५२ ॥ नवा नवा कायदा घडे, नित्य तोडे हो कलयुगीया आपके । मिच्छामि दोकडो कुंभकारनो, कोण काढे हो जो पापनो मापके ॥ वीर ॥ ५३ ॥ कनक कामनी लालचे, करे चालाहो केइ अपरम्पारके । सर्व प्रकार जाणो तमे, कर तेहनो हो प्रभु जलदी उद्धारके ॥ वीर ॥ ५४ ॥ पांच पांचडा तीम

[१०] चर्मकोश—गुह्य स्थानमें विशेष रोग होने पर काममें लीया जाता है.

[११] चर्म अंगुठी—वस्त्रादि सीवे उस समय अंगुली आदिमें रखनेके लीये.

चर्मका उपकरण विशेष कारणसे रखा जाता है. अगर गौचरीपाणी निमित्त गृहस्थोंके वहां जाना पडता है. उस समय आपके साथ ले जानेके सिवाय उपकरण किसी गृहस्थोंके वहां रखे तथा उन्होंको सुप्रत करके भिक्षाको जावे, पीछे आनेपर उस गृहस्थोंकी रजा ले कर, उस उपकरणोंको अपने उपभोगमे लेवे, जिनसे गृहस्थोंकी खातरी रहे कि यह उपकरण मुनि ही लीया है.

(६) जिस मकानमें साधु ठेरे है. उस मकानका नाम लेके गृहस्थोंके वहांसे पाटपाटले लाया हो, फिर दुसरे मकानमें जानेका प्रयोजन हो, तो गृहस्थोंकी आज्ञा विगर वह पाटपाटले दूसरे मकानमें ले जाना नहीं कल्पै.

(७) अगर कारण हो, तो गृहस्थोंकी आज्ञासे ले जा सक्ते है. कारण—गृहस्थोंके आपसमें केइ प्रकारके टंटे फिसाद होते है वास्ते विगर पूछे ले जानेपर घरका धणी कहे कि—हमारे पाटपाटले उस दुसरे मकानमें आप क्यों ले गये? तथा उन्होंके पाटपाटले हमारे मकानमे क्यों लाये? इत्यादि.

(८) जहांपर साधु ठेरे हो, वहांपर शय्यातरका पाटपाटले आज्ञासे लीया हो, फिर विहार करनेके कारणसे उन्होंको सुप्रत कर दीया, बादमें किसी लाभालाभके कारणसे वहां रहना पडे, तो दुसरी दफे आज्ञा लीया विगर वह पाटपाटले वापरना नहीं कल्पै.

योग उपधानादि तणी, क्रिया माटे हो पैसा परिठाय के।
सिद्ध साधक जोडी वणी, कलयुगीया हो इम लुटी खायके।
।वीर॥६४॥ तुज शासन अति उज्वलो, देवतांने हो पण
प्रीय जणाय के। कलयुगीया डोलोकरे, जोइ सांभली हो बहु
खेद कराय के॥ वीर ॥ ६५ ॥ मुनिपुंगव बहु थोडाला,
जेना नाम हो सुरलोक गवाय के। पासत्था विचरे गणा,
जेना नाम हो दुनीया शरमाय के ॥ वीर ॥ ६६ ॥ अे ता
पन्थ-विलाय जाशे, के सगला हो थाशे एकत्र के। के अनेरो
कोइ जागसी, मारी कल्पना हो एवी छे अत्रके॥ वीर ॥६७॥
श्रावक पण तेवा माल्या, सरखा सरखी हो. कोइ कर्म संयोग
के। फुटीनावा नाविक अंधिलो, पार पामे हो किम असाद्य
रोगके ॥ वीर ॥ ६८ ॥ देव दुकांन मंडी रह्या, कारखाना हो
तीर्थ कमेटी नाम के। पेसा लेइ करे एकठा, नहीं खरचे हो
केइ उत्तम ठामके ॥ वीर ॥ ६८ ॥ त्रीष्टी मालक थइ बेठा,
एक देहरानी हो मीलकत जो होयके। बीजे देहरे खरचे नही,
बीजे तीर्थ हो नहीं वापरे कोयको ॥ वीर ॥ ७० ॥ व्याज
वदारे वाणीया, भरे वेको हो मीलोमें द्रव्यके। देवाला
नीकले तेहना, डुबी जावे हो धर्मादो सर्वके ॥ वीर ॥ ७१ ॥
के तो मांहोमांही खायने, केइ जगडे हो लडे मांहोमांहके।
वकील कोरटना घर भरे, सात क्षेत्र हो प्रभु पडिया सिवायके
॥ वीर ॥ ६२ ॥ कान्फरन्स केइ घर भरे, छापखाना हो भरे
आपणा पेट के। पाठशाला सिधाया करे, मील्या प्राणी हो

भोगवे. तो गृहस्थकी और तीर्थंकरोंकी चोरी लगे. गृहस्थोंसे आज्ञा लेनेको जानेसे गृहस्थोंको अप्रतीत हो कि-क्या मुनिको इस वस्तुका लोभ होगा. वास्ते वह मुनि मिले तो उसे दे देना नहीं तो एकान्त भूमिपर परठ देना. इसमें भी आज्ञा लेनेवालोंमें अधिक योग्यता होना चाहिये.

(१४) एक देशमें पात्र फासुक मिलते हो. दुसरे देशमें विचरनेवाले मुनियोंको पात्रकी जरुरत रहती है. तो उस मुनियोंके लीये अधिक पात्र लेना कल्पे. परन्तु जबतक उस मुनिको नहीं पूछा हो. वहांतक वह पात्र दुसरे साधुवोंको देना नहीं कल्पे. अगर उस मुनिको पूछनेसे कहे कि-मेरेको पात्रकी जरुरत नहीं है आपकी इच्छा हो. उसे दीजीये, तो योग्य साधुको वह पात्र देना कल्पे.

(१५) अपने सदैव भोजन करते है. उस भोजनके ३२ विभाग करना (कल्पना करना.) उसमें अठ विभाग आहार करनेसे पोण उणोदरी, सोल विभाग करनेसे आधी उणोदरी चोवीश विभाग भोजन करनेसे पाव उणोदरी, एक विभाग कम भोजन करनेसे किंचित उणोदरी तथा एक चावल (सीत) खानेसे उत्कृष्ट उणोदरी कही जाती है. साधु महात्मावोंको सदैवके लीये उणोदरी तप करना चाहिये. इति.

श्री व्यवहारसूत्र—आठवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

मिथ्या आडम्बरी थायके ॥ वीर ॥ ८३ ॥ परोपदेशे पंडिता, पोते पापथी हो भरे आपणो पंडके। जड उठावे धर्मनी, गुण-हीना हो राखे खुब गमंडके ॥ वीर ॥ ८४ ॥ प्रभु तुम नामे लुंटीने, धुती खावे हो कलयुगीया आजके । धनलोभी धर्म वंचता, केइ करता हो केटला अकाजके ॥ वीर ॥ ८५ ॥ दशवैकालिक आगमे, आवश्यक हो तेम उत्तराध्ययनके । आचारांग सूयगडायांग भगवती, प्रश्न व्याकरण हो ते बोल्या वचनके ॥ वीर ॥ ८६ ॥ उववाइ उपदेशमालामें, ते भाख्यो हो मुनिमार्ग जेहके । कुगुरु तेहने छीपावता, मुनि लिंगमें हो उडावे स्त्रेयके ॥ वीर ॥ ८७ ॥ एकलो ज्ञान न फल देवे, तिम एकली हो क्रिया फलहीनके। फल समपुरण तव थावे । मांहोमांही हो दोय होय अधिनके ॥ वीर ॥ ८८ ॥ तेरी तृष्णा तेरा काठीया, त्रिविध तापे हो ताप्या भवजीवके । बावना चन्दन मुनि क्यां. करे ठाड हो हरे ताप अतिवके ॥ वीर ॥ ८९ ॥ कामधेनु सम मुनि कया, काम कुंभ हो सुर-मणि सुरवृक्षके । सुगुरु देखीने संभाले, सुदेव हो सुधर्म प्रतिक्षके ॥ वीर ॥ ९० ॥ अहो मुनि अहो संयमि, अहो ज्ञानी हो अहो ध्यानी जेह के। अहोत्यागी वैरागीया, नमु नमु हो कर जोडी तेहके ॥वीर॥९१॥ शासन रक्षक देवता, उठो-जागो हो थयो सावधानके । साहुय करो शासन तणी, अम उपर हो थावो मेहरबांनके ॥ वीर ॥ ९२ ॥ युग प्रधान मुनि-राजजी, दोय सहस्रने हो चार हुसे जेहके । तीरण तारण

(१०) शय्यातरके न्यातीले एक मकानकी अन्दर पाणी विगेरे सामेल है. एक चूलेपर भिन्न भिन्न भाजनमें आहार तैयार कीया है. उस आहारसे मुनिको आहार देवे तो यह आहार मुनिको लेना नहीं कल्पे. कारण-पाणी दोनोंका सामेल है

(११-१२) एवं दो सूत्र, घरके बहार चूलापर आहार तैयार करनेका यह च्यार सूत्र एक घरका कहा. इसी माफिक (१३-१४ १५-१६) च्यार सूत्र अलग अलग घर अर्थात् एक पोलमे अलग अलग घर है. परन्तु एक चूलापर एकही बरतनमे आहार बनावे पाणी विगेरे सब सामेल होनेसे वह आहार साधु साध्वीयोंको लेना नहीं कल्पे.

(१७) शय्यातरकी दुकान किसीके सीर (हिस्सा-पांती) में है. वहांपर तैल आदि क्रयविक्रय होता हो. वेचनेवाला भागीदार है. साधुवोंको तैलका प्रयोजन होनेपर उस दुकान (जोकि शय्यातरके विभागमे है, तो भी) से तैलादि लेना नहीं कल्पे. शय्यातर देता हो, तो भी लेना नहीं कल्पे सीरवाला दे तो भी लेना नहीं कल्पे.

(१९-२०) एवं शय्यातरकी गुलकी शाला (दुकान.)
(२१-२२) एवं कियाणाकी दुकानका दो सूत्र.
(२३-२४) एवं कपडाकी दुकानका दो सूत्र.
(२५-२६) एवं सूतकी दुकानका दो सूत्र.
(२७-२८) एवं कपास (रुइ) की दुकानका दो सूत्र.
(२९-३०) एवं पसारीकी दुकानका दो सूत्र.
(३१-३२) एवं हलवाइकी दुकानका दो सूत्र.
(३३-३४) एवं भोजनशालाका दो सूत्र.
(३५-३६) एवं आम्रशालाका दो सूत्र.

व्यापक हो तमे छो सावधान के ॥ वीर ॥ १०२ ॥ मारा मनमे उपनी, तेवी विनती हो करी दीन दयालके। समर्थ आगल बोलतो, ते वातनो हो होय तूरत निकाल के ॥ ॥ वीर ॥ १०३ ॥ ओशीयां मंडन वीरजी, शासनपति हो श्री वीर जिनेन्द के। साधिष्ठायक प्रतिमा प्रभु, करी दर्शन हो पावू आनन्द के ॥ वीर ॥ १०४ ॥ तूज निर्वाण पच्छी प्रभु, वर्ष सीतर हो उपकेशमजार के। रत्नप्रभसूरिश्वरे, दीव्य विधिथी हो करी प्रतिष्ठा सार के ॥ वीर ॥ १०५ ॥ प्रभु तुम संवत् चौत्रिसमो, इगतालीसमो हो ज्येष्ट मास उद्धारके। शुक्लाष्टमि रविदिन भलो, विनति शतक हो स्तवन रच्यो श्रीकारके ॥ वीर ॥ १०६ ॥ सहाय करो मुज बाल हा, कर करुणा हो गरीबनिवाजके। दिनोद्धारक तुं मिल्यो, सेवकना हो सफला थाय काजके ॥ वीर ॥ १०७ ॥ ओशीया मंडन वीरजी, जयजय हो तुं श्री जिनरायके। धर्मरत्न निर्मल करो, जिन सुधरे हो सब जैन समाजके ॥ वीर ॥ १०८ ॥

॥ इति विनतिशतक स्तवन समाप्तम् ॥
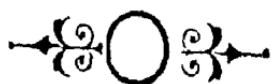
चौद पूर्वधर महर्षियोंकी प्रतिज्ञा-अपेक्षा (प्रतिमा) दो प्रकारकी कहते हैं. क्षुल्लकमोयक प्रतिमा. महामोयक प्रतिमा. जिसमें क्षुल्लकमोयक प्रतिमा धारण करनेवाले महर्षियोंको शरदकाल-मृगसर माससे आषाढ मास तक जो ग्राम. नगर यावत् सन्निवेशके बहार वन. वनखंड जिसमें भी विषम दुर्गम पर्वत, पहाड, गिरिकन्दरा. मेखला. गुफा आदि महान भयंकर, जो कायर पुरुष देखे तो हृदय कम्पायमान हो जावे, ऐसी विषम भूमिकाकी अन्दर भोजन करके जावे. तो छे उपवास (छे दिनतक) और भोजन न कीया हो तो सात उपवाससे पूर्ण करे. और महामोयक प्रतिमा. जो भोजन करके जावे. तो सात दिन उपवास, भोजन न करे तो आठ दिन उपवास करे. विशेष इस प्रतिमाकी विधि गुरुगम्यतामें रही हुइ है. वह गीतार्थ महात्मा वोसे निर्णय करे. क्यों कि—अहासुत्तं, अहाकप्पं, अहामग्गं. सूत्रकारोंने भी इसी पाठपर आधार रखा है. अन्तमे फरमाया है कि—जैसी जिनाज्ञा है, वैसी पालन करनेसे आज्ञाका आराधक हो सकता है. स्याद्वाद रहस्य गुरुगमसे ही मिल सकता है.

(४३) दातकी संख्या करनेवाले मुनि पात्रधारी गृहस्थोंके वहां जाते है. एक ही दफे जितना आहार तथा पाणी पात्रमे पड जाता है. उसको शास्त्रकारोंने एक दातीका मान बतलाया है. जैसे बहुतसे जन एक स्थानमें भोजन करते हैं. वह स्वल्प स्वल्प आहार एकत्र कर. एक लाडु बनाके एक सायमें देवे. उसे भी एक ही दाती कही जाती है

(४४) इसी माफिक पाणीकी दाती भी समझना.

(४५) मुनि मोक्षमार्गका साधन करनेके लीये अनेक प्रकारके अभिग्रह धारण करते है. यहां तीन प्रकारके अभिग्रह बतलाये है.

अशोक वृक्षकी छाया भारी, भामंडलकी छबी हे न्यारी। तीन छत्र शीर ऊपरे, चमर अधिकारीरे ॥ मूर्ती ॥ २ ॥ स्फटिक सिंहासण प्रभुजी छाजे, देव दुंदुभि नितकी बाजे। वाणी जोजन गामिणी, या घन जीउं गाजेरे ॥ मूर्ती ॥ ३ ॥ बारह प्रकारे परिषदा आवे, अमृतधारा जिन वर्षावे। सुणतो वाणी आपकी, शीतलता थावेरे ॥ मूर्ती ॥ ४ ॥ केइ समकित केइ व्रत आराधे, केइ दिक्षा सिवपुरको साधे। केइ पूजा रचावे आपकी, मानव भव लाधेरे ॥ मूर्ती ॥ ५ ॥ केसर चन्दन कर्पूर लावे, कस्तुरीका किच मचावे। पुष्प सुगंधि मांहने, प्रभु अङ्गीया रचावेरे ॥ मूर्ती ॥ ६ ॥ केइ मुगट केइ हार मंडावे, रत्नजडितका बोरखा लावे। कुंडल कंदोरा हेमका, कोइ तिलक चढावेरे ॥ मूर्ती ॥ ७ ॥ अक्षत सोपारी श्रीफळ लावे, अत्तर अगर फुलेल चढावे। धूप दीप बहु विधी करी, मन हर्ष उमावेरे ॥ मुर्ती ॥ ८ ॥ जिन प्रतिमा जिन सारखी दाखी, रायपसेणी सूत्र साखी। वलि भगवती मांहने, श्रीजिनवर भाखिरे ॥ मूर्ती ॥ ९ ॥ नरभव केरो लाहो लीजे, द्रव्यभावसे पूजा कीजे। चेत सके तो चेत, दान सुपात्र दीजेरे ॥ मुर्ती ॥ १० ॥ तीर्थ ओसीयां मनमें भायो, त्रिसलादे राणीको जायो। चाकर गयवर आपको, चरणोंमें आयोरे ॥ मूर्ती ॥ ॥ ११ ॥ इति पदम् ॥

[२] यवमध्यम चंद्रप्रतिमा-यवका आदि अन्त पतला और मध्य भाग विस्तारवाला होता है.

इसी माफिक मुनि तपश्चर्या करते है जिसमें यवमध्यचंद्र प्रतिमा धारण करनेवाले मुनि एक मास तक अपने शरीर सरक्षणका त्याग कर देते है. जो देव मनुष्य तिर्यंच संबंधी कोइ भी परीसह उत्पन्न होते है उसे सम्यक् प्रकारसे सहन करते है वह परीसह भी दो प्रकारके होते है.

[१] अनुकुल—जो वन्दन, नमस्कार पूजा सत्कार करनेसे राग केसरी खडा होता है. अर्थात् स्तुतिमें हर्ष नहीं

[२] प्रतिकूल—दडासे मारे, जोतसे. वेंतसे मारे पीटे, आक्रोश वचन बोले, उस समय द्वेष गजेन्द्र खडा होता है

इस दोनों प्रकारके परीषहको जीते यवमध्यम प्रतिमा धारी मुनिको शुक्लपक्षकी प्रतिपदाको एक दात आहार और एक दात पाणी लेना कल्पे. दूजको दो दात, तीजको तीन दात, यावत् पूर्णिमाको पंद्रह दात आहार और पंद्रह दात पाणी लेना कल्पे. आहारकी विधि जो ग्राम, नगरमे भिक्षाचर भिक्षा लेकर निवृत्त हो गये हो, अर्थात दो प्रहर (दुपहर) को भिक्षाके लीये जावे. चंचलता, चपलता, आतुरता रहित जो एकेला भोजन करता हो, दुपद, चतुष्पद न वछे ऐसा नीरस आहार हो, सोभी एक पग दरवाजाकी अन्दर, और एक पग दरवाजाके वाहार. वह भी खरडे हाथोंसे देवे. तो लेना कल्पे. परन्तु दो, तीन, यावत बहुतसे जन एकत्र हो. भोजन करते हो वहांसे न कल्पे. वालकके लीये, गर्भवतीके लीये. ग्लानके लीये कीया हुवा भी नहीं कल्पे. बच्चोंको दुध पान करातीको छोडाके देवे तो भी नहीं कल्पे. इत्यादि एपणीय आहार पूर्ववत् लेना कल्पै.

(३) स्तवन तीजो (देशी ख्यालकी)

पूजाके मांही आठ कर्म जावे तूटरे ॥ आज० ॥ टेर ॥ चैत्यवंदन स्तुति करतां, ज्ञानावरणी टुटे । दर्शन करतां भावे भावना, दर्शनावरणी छूटे ॥ आज० ॥ १ ॥ प्राणभूत जीव सत्वकी, करुणा घटमें लावे । अशाता वेदनी जाय मूलसे, शाताको बंध थावे ॥ आज० ॥ २ ॥ आठ कर्ममें नायक कहिजे, मोहको मोटो फंद । वीतरागकी भावो भावना, कटे कर्मको कंद ॥ आज० ॥ ३ ॥ योग अवस्था ध्यावतां सरे, चारित्र मोहको नाश । ध्यावो सिद्धकी अवस्था सरे, तूटे दर्शन मोहनी खास ॥ आज० ॥ ४ ॥ परिणामोंकी लहर चडे जद, कैसा आवे भाव । आउ बांधे सुरतणो सरे, यों पूजा परभाव ॥ आज० ॥ ५ ॥ नाम लेउं प्रभु तुमतणो सरे, अशुभ कर्म जावे दूर । बंध होय शुभ नामको सरे, पामे सुख भरपुर ॥ आज० ॥ ६ ॥ वंदना करतां गोत्र कर्म जो, होय नीचको नाश । उंच गोत्र पदवी मिले सरे, फिर रहुं तुमारे पास ॥ आज० ॥ ७ ॥ द्रव्य चढावे शक्ति फोरवे, इम तुटे अंतराय । भाग्य उदय हो जेहनां सरे, प्रभुकी भक्ति कराय ॥ आज० ॥ ८ ॥ अशुभ कर्मको नाश पुजामें, शुभको बंधज थावे । द्रव्यक्रियांसे भाव आवे जद, वेगो मुक्तिमें जावे ॥ आज० ॥ ॥ ९ ॥ स्वरुप हिंसा द्रव्य पूजामें, देखी चमके भोला ॥ भक्ति नफो पिछाणे नाहि, बणरह्या भर्मका गोला ॥ आज० ॥१०॥ पाणी मांसु काढे साधवी, कहो केति हिंसा थावे । आज्ञा धर्म

(२) सूत्रव्यवहार—अंग, उपांग, मूल, छेदादि जिस कालमें जितने सूत्र हो, उसके अनुसार प्रवृत्ति करना उसे सूत्र व्यवहार कहते हैं

(३) आज्ञाव्यवहार—कितनी एक बातोंका सूत्रमें प्रतिपादन भी नहीं है, परन्तु उसका व्यवहार पूर्व महर्षियोंकी आज्ञासे ही चलता है

(४) धारणाव्यवहार—गुरुमहाराज जो प्रवृत्ति करते थे, आलोचना देते थे. तब शिष्य उस बातकी धारणा कर लेते थे उसी माफिक प्रवृत्ति करना यह धारणा व्यवहार है.

(५) जीतव्यवहार—जमाना जमानाके बल, संहनन, शक्ति, लोकव्यवहार आदि देख अशठ आचार. शासनको पथ्यकारी हो, भविष्यमें निर्वाहा हो, ऐसी प्रवृत्तिको जीतव्यवहार कहते हैं

आगम व्यवहारी हो. उस समय आगम व्यवहारको स्थापन करे, शेष च्यारों व्यवहारको आवश्यक्ता नहीं है आगम व्यवहारके अभावमें सूत्र व्यवहार स्थापन करे. सूत्र व्यवहारके अभावमें आज्ञा व्यवहार स्थापन करे, आज्ञा व्यवहारके अभावमें धारणा व्यवहार स्थापन करे, धारणा व्यवहारके अभावमे जीत व्यवहार स्थापन करे.

प्रश्न—हे भगवन्! ऐसे किस कारणसे कहते हो?

उत्तर—हे गौतम! जिस जिस समयमें जिस जिस व्यवहारकी आवश्यक्ता होती है, उस उस समय उस उस व्यवहार माफिक प्रवृत्ति करनेसे जीव आज्ञाका आराधक होता है.

भावार्थ—व्यवहारके प्रवृतानेवाले निःस्पृही महात्मा होते

मूर्ती देखने सरे, आवे अच्छा भाव । निरमल चित्तवृति हुवे मरे, येही ज मुक्ति उपायरे ।। पूजा० ।। ५ ।। च्यार प्रकारे धर्म बताव्यो, सो पूजामें आयो । निंदे गेहली टाटडी सरे, भेद कछु नही पायोरे ।। पूजा० ।। ६ ।। मैत्री करुणा मध्यस्थ भावना, चोथी छे प्रमोद । जिन पुजामें च्यारू आवे, लेवे आत्म शोधरे ।। पूजा० ।। ७ ।। अनित्यादिक बारों भावना, जिन घरमांहे भावो । इण भव मांहे लीला लच्मी, परभव मुक्त सिधावोरे ।। पूजा० ।। ८ ।। पूजा करणी जिन आज्ञामें, लेवो सुत्र देख । गोत्र तीर्थंकर ज्ञाता मांहे, बान्धे जीव विशेषरे ।। पूजा० ।। ९ ।। जन्म राजने केवलीसरे, सिद्ध अवस्था च्यार । प्रतिमा देखी मनमें भावो, पामो भवनो पाररे ।। पूजा० १०।। साल बहुत्तर तीर्थ ओसीया, भेट्या श्रीमहावीर । भवसागर तीरवाने गयवर, । आयो तोरी तीररे ।। पूजा० ।। ११ ।।

(५) स्तवन पांचमो (देशी पूर्व)

पुन्य आछा किधा, भक्ति करुं छुं प्रभुजी आपकी ।। पुन० १ ।। टेर ।। तुज भक्ती विन काल अनंतो, भम्यो चउगति मांह । जो किनि तो लोक देखाउ, अंतर भिज्यो नाहरे ।। पुन० १ ।। आ लोकअर्थी जो जश किर्ति, लोक शोभाके काज । बात कही विति थकीसरे, प्रभु राख हमारी लाजरे ।। पुन० २ ।। नीठे नरभव पाम्यो सरे, प्रभु थारे सरीखा देव । मन मारो हरखे घणो सरे, आज मिलि तुज सेवरे ।। पुन०३ ।।

[४] गच्छकी अन्दर साधुवोंका संग्रह भी नहीं करे, और अभिमान भी नहीं करे, एवं वस्त्र, पात्रादि

(६) च्यार प्रकारके पुरुष होते है—

[१] गच्छके छते गुण दीपावे, शोभा करे, परन्तु अभिमान नही करे एवं चौभगी.

(७) च्यार प्रकारके पुरुष होते है.

[१] गच्छकी शुश्रूषा (विनय भक्ति) करते है, किन्तु अभिमान नहीं करते एवं चौभंगी.

एवं गच्छकी अन्दर जो माधुवोंको अतिचारादि हो, तो उन्होंको आलोचना करवाके विशुद्ध करावे.

(८) च्यार प्रकारके पुरुष होते है—

[१] रुप-साधुका लिंग, रजोहरण, मुखवस्त्रिकादिको छोडे (दुष्कालादि तथा राजादिका कोप होनेसे समयको जानके रुप छोडे) परन्तु जिनेन्द्रका श्रद्धारुप धर्मको नहीं छोडे.

[२] रुपको नहीं छोडे (जमालीवत्) किन्तु धर्मको छोडे.

[३] रुप और धर्म-दोनोंको नहीं छोडे

[४] रुप और धर्म-दोनोंको छोडे, जैसे कुलिंगी श्रद्धासे भ्रष्ट और सयमरहित.

(९) च्यार प्रकारके पुरुष होते है—

[१] जिनाज्ञारुप धर्मको छोडे, परन्तु गच्छमर्यादाको नहीं छोडे. जैसे गच्छमर्यादा है कि-अन्य संभोगीको वाचना नहीं देना, और जिनाज्ञा है कि-योग्य हो उस सबको वाचना देना. गच्छमर्यादा रखनेवाला सबको वाचना न देवे

शमें सरे, ज्यारी नार सवागण होय । हाजर च्यार अवस्था विंवे, में प्रत्यक्ष लीनी जोयजी ॥ छूट० ५ ॥ न जाणुं प्रभु कामण कीधो, चित्त मेरो हर लिनो । नयण निरखतां आणंद आवे, जाणे अमृत पिधोजी ॥ छूट० ६ ॥ काल अनंता प्रीत कर्मसे, अब आयो छे छेडो । अधम उधारण विरूद आपको, मांने जलदी तेडोजी ॥ छूट० ७ ॥ ज्ञान घ्यान उद्यम नही सरे, नही कल्प क्रियाकी सार ॥ संजम व्रत पिण स्थिर नही सरे, थारा वचनांरो आधारजी ॥ छुट० ८ ॥ निरधनीयाकुं धनवंत करदो, सुण शासन सिरदार । गयवरचंदकी एही विनती, करदो बेडा पारजी ॥ छुट० ९ ॥ इति

(७) स्तवन सातमो. (देशी पूर्व)

सरणे आया कि राखो लाज हो, वर्द्धमान जिनेश्वर ॥ सरणे ॥ टेर ॥ में गरीब अनाथ प्रभूजी, और न मुझ आधार। शरणो लीधो आपकोसरे, कर दो बेडा पारहो ॥ व० ॥ १ ॥ दुजा देव अनेरा जगमें, में दीठा सरागी । मूर्ति देखी आपकी सरे, घ्यान वडो वीतरागी हो ॥ व० ॥ २ ॥ चौरासीमें भटक्योसरे, कुगुरूको प्रताप । सूत्र अर्थ नही मानीयासरे, करी अछती थापहो ॥ व० ॥ ३ ॥ एक वचन उत्थापे थारो, रूले अनंत संसार । चौडे धारे पाठ मरोडे, ते किम पामे पारहो ॥ व० ॥ ४ ॥ सूत्र अर्थ साची पंचांगी, नय निक्षेप प्रमाण । स्याद्वादमें धर्म तुमारो, में निश्चय लीनो जाणहो ॥ व० ॥५॥

कर विहार कर गये. उस नव दिक्षित साधुको उत्थापन वडी दीक्षा अन्य आचार्यादि देवे इसी अपेक्षा समझना.

(१२) च्यार प्रकारके आचार्य होते है—

[१] उपदेश करते है, परन्तु वाचना नहीं देते है.
[२] वाचना देते है, किन्तु उपदेश नहीं करते है.
[३] दोनों करते है.
[४] दोनों नहीं करते है.

भावार्थ—एक आचार्य उपदेश कर दे कि—अमुक साधुको अमुक आगमकी वाचना देना वह वाचना उपाध्यायजी देवे. कोइ आचार्य ऐसे भी होते है कि—आप खुद अपने शिष्य समुदायको वाचना देवे.

(१३) धर्माचार्य महाराजके च्यार अन्तेवासी शिष्य होते है—

[१] दीक्षा दीया हुवा शिष्य पासमें रहै, परन्तु उत्थापन कीया हुवा शिष्य पासमें नहीं मिले.
[२] उत्थापनवाला मिले, परन्तु दीक्षावाला नहीं मिले.
[३] दोनों पासमें रहै.
[४] दोनों पासमे नहीं मिले.

भावार्थ—आचार्य महाराज अपने हाथसे लघु दीक्षा दी, उसको वडी दीक्षा किसी अन्य आचार्यने दी. वह शिष्य अपने पासमें है. और अपने हाथसे उत्थापन (वडी दीक्षा) दी, वह साधु दुसरे गणविच्छेदक के पास है. तथा लघु दीक्षावाला अन्य साधुवोंके पास है, आपके पास सब वडी दीक्षावाले है.

(१४) आचार्य महाराजके पास च्यार प्रकारके शिष्य रहते है—

चामर छत्र धरईया । सघला पहेली निज जननीको, शिवपुर विच पठईया ॥ पठईया० ॥ ४ ॥ मूर्ति सूर्ती मोहनगारी, नित्य २ ध्यान धरईया । गयवर शरणे आपरे प्रभु, बेडा पार लगईया ॥ लगईया मइया० ॥ ६ ॥

(९) स्तवन नवमो.

सेवा दे मईया नेमकुंमर तोरा जईया ॥ सेवा० ॥ टेर ॥ समुद्र विजयका नन्द कहीजे, जादव वंस धरईया; खेल खेलंता आयुध शालामें, पंचानन संख पुरईया ॥ पुरईया १ ॥ सहस्र गोपीयां कर मनसुबो, होरी फाग मचईया; जबरदस्तीसे कृष्ण मुरारी, राजुल ब्याह रचईया ॥ २ ॥ सब जादव मील जांन लेइने, जुनेगढ धसईया; वाडा पींजरा भरीया देखी, करूणा नेम धरईया ॥ धरईया ३ ॥ पशु छूडाई गिरिवरजाई, सहस्र पुरुष संगईया; च्यार महाव्रत दिक्षा लीनी, केवल ज्ञान जगईया ॥ जगईया ४ ॥ गीरनार मंडण नेमि जिनेश्वर, पूजो भाव धरईया; गयवरचन्द भावे जिन पूजी, आत्मकाज सरईया ॥ सरईया ५ ॥ इति

(१०) स्तवन दशमो

त्रिसलादे मईया, प्यार लगत तोरा जईया ॥ टेर ॥ इंद्रादिक मिल महोत्सव किनो, इन्द्राणी नृत्य करईया । तीन लोकमें भयो उजालो, वृद्धिकरण तोरा जईया ॥ जईया० १ ॥ मस्तक मुगट कानोंमें कुंडल, तिलक लिलाड लगईया । बांय बेरखा रत्न जडतका, खेलत तोरा जईया ॥ जईया० २ ॥

यन सूत्रार्थ कंठस्थ करलेनेके बादमें बडी दीक्षा दी जावे. उसका काल बतलाया है.

(२१) साधु साध्वीयोंको क्षुलक—छोटा लडका, लडकी या आठ वर्षसे कम उम्मरवालाकों दीक्षा देना, बडीदीक्षा देना, शिक्षा देना, साथमें भोजन करना, सामेल रहना नहीं कल्पै.

भावार्थ—जबतक वह बालक दीक्षाका स्वरुपको भी नहीं जाने, तो फिर उसे दीक्षा दे अपने ज्ञानादिमें व्याघात करनेमें क्या फायदा है ! अगर कोइ आगम व्यवहारी हो, वह भविष्यका लाभ जाने तो वह एसेको दीक्षा दे भी सक्ता है ।

(२२) साधु साध्वीयोंको आठ वर्षसे अधिक उम्मरवाला वैरागीको दीक्षा देना कल्पै, यावत् उसके सामेल रहना.

(२३) साधु साध्वीयोंको, जो बालक साधु साध्वी जिसकी कक्षामें वाल (रोम) नहीं आया हो, ऐसोंको आचारांग और निशीथसूत्र पढाना नहीं कल्पै.

(२४) साधु साध्वीयोंको जिस साधु साध्वीकी काखमें रोम (वाल) आया हो, विचारवान हो, उसे आचारांग सूत्र और निशीथसूत्र पढाना कल्पै.

(२५) तीन वर्षोंके दीक्षित साधुवोंको आचारांग और निशीथ सूत्र पढाना कल्पै निशीथसूत्रका फरमान है कि जो आगम पढनेके योग्य हो, धीर, गंभीर, आगम रहस्य समझनेमें शक्तिमान हो उसे आगमोंका ज्ञान देना चाहिये.

(२६) च्यार वर्षोंके दीक्षित साधुवोंको सूयगडांग सूत्रकी वाचना देना कल्पै.

(२७) पांच वर्षोंके दिक्षित साधुवोंको दश कल्प और व्यवहारसूत्रकी वाचना देना कल्पै.

होत्तर नवमी जेष्टकी, शुक्र सोम जुहारो । जन्म सफल जिण प्राणी भेव्यो, ओसीयां तीर्थ थारो ॥ नाथ० ८ ॥ जो भवि-प्राणी आराधे प्रतिमा, सो जिनवरने आराध्या । गयवर कहे ते कर्मोंथी छुट्यो, आतमकारज साध्या ॥ नाथ० ६ ॥

(१२) स्तवन बारमो (देशी षीणजागकी)

नय सात उतारुं सारी, जिन बिंबकी जाऊं बलीहारी ॥ टेर ॥ नैगम नय मन्दिर आयो, जिन बिंब देख उलसायोजी । प्रणाम करुं चित्तचारी ॥ जिन० १ ॥ संग्रह नय चित्त संभारी, अरिहंतका गुण भारिजी । प्रभु अद्भूत् रचना थारी ॥ जिन० २ ॥ व्यवहारे वंदना कीधी, साधन भावार्थ सिधीजी । लौकिक व्यवहार मजारी ॥ जिन० ३ ॥ परिणाम ऋजु सूत्र लीनो, जिण चित्त एकाग्र किनोजी । जिन भक्ति के लागो लारी ॥ जिन० ४ ॥ शब्द संपूर्ण जांणे, अरिहंतका गुण पिछाणेजी । मिली निमित्त कारण एक तारी ॥ जिन० ५ ॥ समभिरूढ छठो जाणो, चेतनता वीर्य पीछांणेजी । शुद्ध आत्मा आप विचारी ॥ जिन० ६ ॥ शुद्ध नय सातमी जाहारी, प्रगटी चैतनता भारीजी । मिली शुक्र ध्यानकी सारी ॥ जिन० ७ ॥ इम सात नय वखाणी, जिन सारखी सूत्रमें आणीजी । नित वंदे नर और नारी ॥ जिन० ८ ॥ जिन बिंब देखी हुलसायो, जांणे अमृत प्यालो पायोजी । मारी प्रीत लगी एक तारी ॥ जिन० ६ ॥ सरागीसे मोहनी जागे,

(३९) बीश वर्षोंके दीक्षित साधुको सर्व सूत्रोंकी वाचना देना कल्पै. अर्थात् स्वसमय, परसमयके सर्व ज्ञान पठन पाठन करना कल्पै.

. (४०) दश प्रकारकी वैयावच्च करनेसे कर्मोंकी निर्जरा और संसारका अन्त होता है. आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, नवशिष्य, ग्लान मुनि, कुल, गण, सघ, स्वधर्मी इस दशोंकी वैयावच्च करता हुवा जीव संसारका अन्त और कर्मोंकी निर्जरा कर अक्षय सुखको प्राप्त कर लेता है

इति दशवां उद्देशा समाप्त.

इति श्री व्यवहारसूत्रका संक्षिप्त सार समाप्त

मरूस्थल ओसीयां मन भाया, रत्नप्रभ सूरीश्वर आयाजी । ओशवाल वंश थपायो ॥ प्रभु० १० ॥ पुरुष कला साल सुखदाइ, गयवरचंद हरखे गाइजी । मैं मंगलीक आज मनायो ॥ प्रभु० ११ ॥ इति ॥

(१४) स्तवन चौदमो (देशी चोकरी)

अहो सर्वगुणी वर्धमान, महाराज काज मोय सारो । या अर्ज सुणी जगतपति, जिनराज भवो दधि तारो ॥ टेर ॥ क्षत्रीकुंड नगर भारी, सिद्धार्थ राजा जहांरी । रत्नकुख त्रिसला नारीजिण, नन्दन जायो सुखकारी ॥ अहो० १ ॥ मोछव करवा सुर आया, दिशि कुमारी मंगल गाया । सुमेरगिरि पर ले जाया,–प्रभु चोसठ इंद्र हरषाया ॥ अहो० २ ॥ इंद्राणी अपछर आवे, माता त्रिसला हुलरावे । देख नन्दन अति सुख पावे,–वर्द्धमान नाम तब धरावे ॥ अहो० ३ ॥ सर्व अंग अलंकृत करे, रमक जमक प्रभु आंगण फिरे । ठमक २ प्रभु पांव धरे,–ज्यांरी जननी देखी हरख भरे ॥ अहो० ४ ॥ तीस वर्ष ग्रहवास गमे, लोकांतिक सुर आवी नमे । वर्षीदान दियो तिणसमे,–प्रभु दीक्षा लेइ तपस्यामें रमे ॥ अहो० ५ ॥ कर्म काट केवल पाया, इंद्र मोछवने आया । समोसरण सुर रचाया,–प्रभु श्रोताने अमृत पायो ॥ अहो० ६ ॥ प्रभु में दुःख पायो अति भारी, कहता किम आवे पारि । लारे लागी कुंमती नारी,–प्रभु अर्ज करू विति सारी ॥ अहो० ७ ॥ नरक नीगोदमें हुं भमियो, नानाविध त्यां दुःख खमीयो, निज आत्माकुं

वह अवश्य दंडका भागी होगा. यह उद्देश दुराचारसे बचाना और सदाचारमें प्रवृत्ति करानेके लीये ही है दुराचार सेवन करना मोहनीय कर्मका उदय है, और दुराचारके स्वरुपको समझना यह ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम है. दुराचारको त्याग करना यह चारित्र मोहनीयकर्मका क्षयोपशम है

जब दुराचारका स्वरुपको ठीक तौरपर जान लेगा, तब ही उस दुराचार प्रति घृणा आवेगी. जब दुराचार प्रति घृणा आवेगी, तब ही अंतःकरणमें त्यागवृत्ति होगी. इसवास्ते पेस्तर नीतिज्ञ होनेकी खास आवश्यक्ता है कारण—नीति धर्मकी माता है माताही पुत्रको पालन और वृद्धि कर सक्ती है.

यहां निशिथसूत्रमे मुख्य नीतिके साथ सदाचारका ही प्रतिपादन कीया है. अगर उस सदाचारमें वर्तते हुवे कभी मोहनीय कर्मोदयसे स्वलना हो, उसे शुद्ध बनानेको प्रायश्चित्त बतलाया है. प्रायश्चित्तका मतलब यह है कि—अज्ञानपनेसे एकदफे जिस अकृत्य कार्यका सेवन किया है उसकी आलोचना कर दूसरी वार उस कार्यका सेवन न करना चाहिये.

यह निशिथसूत्र राजनीतिके माफिक धर्मकानुनका खजाना है. जबतक साधु साध्वी इस निशिथसूत्ररुप कानुनकोषको ठीक तौरपर नहीं समझे हो, वहांतक उसे अग्रेसरपदका अधिकार नहीं मिल सक्ता है .अग्रेसरकी फर्ज है कि—अपने आश्रित रहे हुवे साधु साध्वीयोंको सन्मार्गमे प्रवृत्ति करावे. कदाच उसमें स्खलना हो तो इस निशिथसूत्रके कानुन अनुसार प्रायश्चित्त दे उसे शुद्ध बनावे. तात्पर्य यह है कि साधु साध्वी जबतक आचारांग और निशिथसूत्र गुरुगमतासे नहीं पढे हो, वहांतक उस मुनियोंको अग्रेसर होके विहार करना. व्याख्यान देना, गोचरी जाना नहीं

मोतीयनकी मालरे कांई, बीचमें लालो शोभतिहो ना० ॥४॥ ना० बाजूबंद सोहे बांहरे कांई, नीचे सोहे बहरकाहो ना० ॥ ५ ॥ ना० कडा सोहे दोय हाथरे कांई, पुणची रत्न जडावकीहो ना० ॥ ६ ॥ ना० मुदडीयां कर मांहरे कांई, कंदोरा कम्मर विपेहो ना० ॥ ७ ॥ ना० आंगी रत्न जडावरे कांई, नयन लोभाया निरखतांहो ना० ॥ ८ ॥ ना० फूलां हंदो गेंदरे कांई, शोभे हिवडां मांहनेहो ना० ॥ ९ ॥ ना० केसर चंदन कपुररे कांई, कस्तुरी किच मचावीयाहो ना० ॥ १० ॥ ना० अत्तर अबीर फलेलरे कांई, पूष्प सुगंधी आपरेहा ना० ॥ ११ ॥ ना० धूपदीपादिक जाणरे कांई, भक्त भक्ति करे भावसुं हो ना० ॥ १२ ॥ ना० जननी जायो एकरे कांई, दुजी माता नही भरतमेंहो ना० ॥ १३ ॥ ना० और घणाई देवरे कांई, वात कहुं देखी जीसीहो ना० ॥ १४ ॥ ना० कोई हाथ हथीयाररे कांई, धनुषबांण लिया खडा हो ना० ॥१५॥ ना० कोई हाथ तलवाररे कांई, देख्या कंपे कालजो हो ना० ॥ १६ ॥ ना० केई त्रिशूल भाला हाथरे कांई, कामचेष्टा कर रयाहो ना० ॥ १७ ॥ ना० केईक जपनी हाथरे, कांई स्मरण करे कोई औरकोहो ना० ॥ १८ ॥ ना० हांसीवाली बातरे कांई, योनिमें लिंग थापियो हो ना० ॥ १९ ॥ ना० कोई मांगे बली ने भोगरे कांइ, पंचइंद्रीना घातीया हो ना०॥२०॥ ना० कहेता न आवे पाररे कांई, राग द्वेषमें पचरयाहो ना०

(१) अथ श्री निशिथसूत्रका प्रथम उद्देशा.

जो भिख्खु—अष्ट कर्मोरुप शत्रुदलको भेदनेवालोंको भिक्षु कहा जाता है. तथा निरवद्य भिक्षा ग्रहण कर उपजीविका करणेवालोंको भिक्षु कहा जाता है. यहां भिक्षुशब्दसे शास्त्रकारोंने साधु साध्वीयों दोनोंको ग्रहन कीया है. 'अंगादान' अंग—शरीर (पुरुष स्त्री चिन्हरुप शरीर) कुचेष्टा (हस्तकर्मादि) करनेसे चित्तवृत्ति मलीनके कारण कर्मदल एकत्र हो आत्मप्रदेशोंके साथ कर्मबन्ध होता है. उसे 'अंगादान' कहते हैं.

(१) हस्तकर्म. (२) काष्टादिसे अंग संचलन. (३) मर्दन. (४) तैलादिसे मालीस करना, (५) काष्टादि सुगन्धी पदार्थका लेप करना. (६) शीतल पाणी तथा गरम पाणीसे प्रक्षालन करना. (७) त्वचादिका दूर करना. (८) घ्राणेन्द्रियद्वारा गंध लेना. (९) अचित्त छिद्रादिसे वीर्यपातका करना. यह सूत्र मोहनीय कर्मकी उदीरणा करनेवाले हैं. ऐसा अकृत्य कार्य साधुवोंको न करना चाहिये अगर कोइ करेगा, तो निम्न लिखित प्रायश्चित्तका भागी होगा. मोहनीय कर्मकी उदीरणा करनेवाले मुनियोंको क्या नुकशान होता है, वह दृष्टांतद्वारा बतलाया जाता है.

(१) जैसे सुते हुवे सिंहको अपने हाथोंसे उठाना. (२) सुते हुवे सर्पको हाथोंसे मसलना. (३) ज्वाज्वल्यमान अग्निको अपने हाथोंसे मसलना (४) तिक्षण भालादि शस्त्रपर हाथ मारना. (५) दुखती हुइ आंखोंको हाथसे मसलना. (६) आशीविष सर्प तथा अजगर सर्पका मुंहको फाडना (७) तीक्षण धारवाली तलवारसे हाथ घसना, इत्यादि पूर्वोक्त कार्य करनेवाला मनुष्यको अपना जीवन देना पडता है अर्थात् सिंह, सर्प,

कीया दिल चाहारे। अयतो बोल आदेश्वर मांसु, कल्पे कायारे ॥ मां० ६ ॥ खेर हुई सो होगइ वाला, वात भली नही किनिरे। गयां पछे कागद नही दिनो, मारी खबर न लीनीरे ॥ मां० ७॥ ओलंभा मैं देउं कहांलग, पाछो क्यों नही बोलेरे। दुख जननीको देख आदेसर, हिवडे तोलेरे ॥ मां० ८ ॥ अनीत्य भावना भाइ माता, निज आतमनें तारीरे। केवलपामी मोक्ष सिधाया, ज्यांने वंदना हमारीरे ॥ मां० ९ ॥ मुक्तीका दर्वाजा खोल्या, मरू देवी मातारे। काल असंख्या रह्या उघाडा, जंबू जड गया जातारे ॥ मां० १० ॥ साल वहोत्तर तीर्थ ओसीयां, गयवर प्रभु गुण गायारे। मूर्तीमोहन प्रथम जिनन्दकी, प्रणमुं पायारे ॥ मां० ११ ॥ इति पदम् ॥

(१७) स्तवन सत्तरमो

जिन वाणी इसिरे २ निसदिन मेरे दिलमें वसि ॥ जिन० टेर ॥ न आदि अनादि जिनवर वाण, अर्द्ध मागधी मूलपेच्छाण ॥ जि० १ ॥ जो जो तीर्थ थापे जिनंद, वाणी फरमावे परमानंद ॥ जि० २ ॥ दीक्षा लेइ उपनो केवलज्ञान, चर्म तीर्थंकर श्रीवर्धमान ॥ जि० ३ ॥ अर्थ रुपी, भापे भगवान, द्वादश अंग रचे गणधर ज्ञान ॥ जि० ४ ॥ सूत्र थोडो ने आसा घणी, केइक समजे बुद्धिका धणी ॥ जि० ५॥ स्याद्वादनय निक्षेपा जाण, वस्तुमें दाख्या च्यार प्रमाण ॥ जि०

(२०) ,, विगर कारण सुइ, (२१) कतरणी, (२२) नख छेदणी, (२३) कानसोधणीकी याचना करे (३)

भावार्थ—गृहस्थोंके वहां जानेका कोइभी कारन न होनेपर भी सुइ, कतरणीका नामसे गृहस्थोंके वहां जाके सुइ, कतरणी आदिकी याचना करे

(२४) ,, अविधिसे सुइ, (२५) कतरणी, (२६) नखछेदणी. (२७) कानसोधणी याचे. (३)

भावार्थ—सुइ आदि याचना करते समय ऐसा कहना चाहिये कि—हम सुइ ले जाते है, वह कार्य हो जानेपर वापिस ला देंगे, अगर ऐसा न कहे तो अविधि याचना कहते है. तथा सुइ आदि लेना हो, तो गृहस्थ जमीनपर रख दे, उसे आज्ञासे उठा लेना. परन्तु हाथोहाथ लेना इसे भी अविधि कहते है, कारण—लेते रखते कहां भी लग जावे, तो साधुवोंका नाम सामेल होता है.

(२८) ,, अपने अकेलेके नामसे सुइ याचके लावे. अपना कार्य होनेके बाद दुसरा साधु मागनेपर उसको देवे. (२९) एवं कतरणी (३०) नखछेदणी. (३१) कानसोधणी.

भावार्थ—गृहस्थोंको ऐसा कहे कि-मैं मेरे कपडे सीनेके लीये सुइ आदि ले जाता हुं, और फिर दुसरोंको देनेसे सत्यवचनका लोप होता है. दुसरे साधु मांगनेपर न देनेसे उस साधुके दिलमें रंज होता है. वास्ते उपयोगवाला साधु किसीका भी नाम खोलके नहीं लावे. अगर लावे तो सर्व साधु समुदायके लीये लावे.

(३२) ,, कार्य होनेसे कोइ भी वस्तु लाना और कार्य हो जानेसे वह वस्तु वापिस भी दी जावे उसे शास्त्रकारोंने ' पडि-

समुद्र वेगा तिरोरे ॥ जि० २४ ॥ मारे तो एक एहिज आधा-र, गयवर वंदे वारंवार ॥ जि० २५ ॥

(१८) स्तवन अढारमो.

तुमारे कदमका शरणा, मुजे भी याद तो करणा ॥ टेर ॥ भटकायो चोरासी मांही, वात कहूं कठा ताही । भेटि-या अब तोय चरणा ॥ तु० १ ॥ सेवक हुं आपका बंदा, मिटा दो चोरासी फंदा । जरा शुभ नजर तो करणा ॥ तु० २ ॥ तेरे वहु सेवक हे सेवा, मेरे तुं एक हे देवा । अरज पे ध्यान तो धरणा ॥ तु० ३ ॥ अवगुण वह वोलिया थारा, उन्हीको छिनकमें तारा । रागीपर देर क्यों करणा ॥ तु० ४॥ ध्यानमें विंवतो दिठो, लागे अमृतसे मिठो । हिया मेरा आज हरखाणा ॥ तु० ५ ॥ उभो या कर रयो अरजी, में हुं एक मोक्षका गरजी । गौर अब अर्जपे करणा ॥ तु० ६ ॥ मेरे नहीं आसरो दुजो, गयवर कहे भावसे पुजो । जीन्हीमे जलदी हो तिरणा ॥ तु० ७ ॥

(१९) स्तवन उगणिसमो

रखो वीरतणो आधार, जिनसे उतरोगे भवपार ॥ रखो० टेर ॥ जिनवर वाणी अमिय समाणि, भवजल तारण हार । च्यार निक्षेप जिनवर वंदो, सुणो सूत्रका सार ॥ रखो० १ ॥ ठाणायंग के चोथे ठाणे, सत्य निक्षेपा च्यार । विशेष पाठ सूत्रको देखो, अणुयोगद्वार मजार ॥ रखो० २ ॥ नाम

समको विषम करावे, नये पात्रा तैयार करावें, तथा पात्रों संबंधी स्वल्प भी कार्य गृहस्थोंसे करावे. ३

भावार्थ—गृहस्थोंका योग सावद्य है. अयतनासे करे. मातेतगी रखना पडे, उसकी निष्पत् पैसा दीलाना पडे. इत्यादि दोषोंका संभव है.

(४१) „ दांडा (कान परिमाण) लट्ठी (शरीर परिमाण), चीपटी लकडी तथा वांसकी खापटी, कर्दमादि उतारनेके लीये और वांसकी सुइ रजोहरणकी दशी पोनेके लीये—उसको अन्यतीर्थीयों तथा गृहस्थोंके पास समरावे, अच्छी करावे, विषमकी सम करावे इत्यादि. भावना पूर्ववत्.

(४२) „ पात्राको एक थेगला (कारी) लगावे. ३

भावार्थ—विगर फूटे शोभाके निमित्त तथा वहुत दिन चलनेके लोभसे थेगलो (कारी) लगावे. ३

(४३) „ पात्राके फूट जानेपर भी तीन थेगलेसे अधिक लगावे.

(४४) वह भी विना विधि, अर्थात् अशोभनीय, जो अन्य लोग देख हीलना करे, ऐसा लगावे. ३

(४५) पात्राको अविधिसे बांधे, अर्थात् इधर उधर शिथिल बन्धन लगावे.

(४६) विना कारण एक भी बन्धनसे बांधे. ३

(४७) कारण होनेपर भी तीन बन्धनोंसे अधिक बन्धन लगावे.

(४८) अगर कोइ आवश्यक्ता होनेपर अधिक बन्धनवाला पात्रा भी ग्रहन करनेका अवसर हुवा तो भी उसे देढ माससे अधिक रखे. ३

आल्हाद ॥ वीर० १ ॥ वार २ करूं विनती, प्रभु एक वार वो बोल । हुं गरीब अनाथ छुं, प्रभु अंतरपट दो खोल ॥ वीर० २ ॥ बालक आडो ले मायसूं, प्रभु जीउ मैं तेरे पास । हुंस लगी मिलवातणी प्रभु, सफल करो मारी आस ॥ वीर० ३ ॥ पतीव्रता संसारमें प्रभु, दुजो न वंछे यार । मारे एक तुंहिज धणी, प्रभु जीवनप्राण आधार ॥ वीर० ४ ॥ मोहनी मूर्ती देखीने प्रभु, कल्पुं अवस्था च्यार । जन्म राजने केवली प्रभु, सिद्ध वडा सिरदार ॥ वीर० ५ ॥ पखाल करावे प्रेमसु, प्रभु जन्म अवस्था जाण । आभरण पुष्प चडावता प्रभु, राज अवस्था मन आण ॥ वीर० ६ ॥ ध्यान सामी दृष्टि करूं, जद केवल आवे याद । गुण समरूं मन मांहने, जद सिद्ध अवस्था साध ॥ वीर० ७ ॥ इम कर निश्चये जाणियो प्रभु, तारक तुं वर्द्धमान, शरणे आयो साहबा, अव तारो २ भग-वान् ॥ वीर० ८ ॥ आशा राखुं मन मांहने प्रभु, निश्चय ता-रसी वीर । केई पापीने उद्धरीया प्रभु, में रागी तुज तीर ॥ वीर० ९ ॥ भाव पूजा गयवर करे, प्रभु श्रावक द्रव्ये भाव । तुज आणा शिरपर धरे, प्रभु येहीज मोक्ष उपाय ॥ वीर० ॥ १० ॥

(२१) स्तवन इकवीसमो (देशी अनोकाभवँर)

सुण २ साहबा हो प्रभुजी, सेवककी अरदास (टेक) सिद्धार्थ कुल उपनाहो प्रभुजी, त्रिसलादेवी माय । इन्द्रादिक

वन करे, अन्य कोइके पास सेवन करावे, अन्य कोइ सेवन करता हो उसे अच्छा समझे, उस मुनिको गुरु मासिक प्रायश्चित्त होता है गुरुमासिक प्रायश्चित्त किसको कहते है, वह इसी निशिथ सूत्रके वीसवां उद्देशामें लिखा जावेगा.

इति श्री निशिथसूत्र–प्रथम उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(२) श्री निशिथसूत्रका दूसरा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' काष्ठकी दंडीका रजोहरण अर्थात् काष्ठकी दंडीके उपर एक सूतका तथा उनका वस्त्र लगाया जाता है, उसे ओघारीया (निशितीया) कहते है. उस ओघारीया रहित मात्र काष्ठकी दंडीका ही रजोहरण आप स्वयं करे, कगवे, अनुमोदे. (२) एवं काष्ठकी दंडीका रजोहरण ग्रहन करे. ३ (३) एवं धारण करे. ३ (४) एवं धारण कर ग्रामानुग्राम विहार करे. ३ (५) दुसरे साधुवोंको ऐसा रजोहरण रखनेकी अनुज्ञा दे. ३

(६) आप रखके उपभोगमें लेवे.

(७) अगर ऐसाही कारण होनेपर काष्ठकी दंडीका रजोहरण रखा भी हो तो देढ (१॥) माससे अधिक रखा हो.

(८) काष्ठकी दंडीका रजोहरणको शोभाके निमित्त धोवे, धूपादि देवे

भावार्थ—रजोहरण साधुवोंका मुख्य चिन्ह है और शास्त्रकारोंने रजोहरणको धर्मध्वज कहा है. केवल काष्ठकी दंडी होनेसे अन्य जीवोंको भयका कारण होता है. इधर उधर पडजानेसे

आधार ॥ सु० ११ ॥ मुख्यतामें ये कह्याहो प्रभुजी, गौणता में गुणवान । शासन तेहने उपरहो प्रभुजी, मे किनो अनुमान ॥ सु० १२ ॥ दुखमा आरा मांह्यनेहो प्रभुजी, एक आधार छे मोय । केइ प्रतिबोध ज पामसीहो प्रभुजी, सूत्र प्रतिमा जोय ॥ सु० १३ ॥ शासनकी उन्नति करे हो प्रभुजी, तिणसमो नही उच्च । निंद्या करावे धर्मकि हो प्रभुजी, जिण समो नही निच्च ॥ सु० १४ ॥ हुं छुं पामर जीवडोहो प्रभुजी, तुं शासने सिरदार । अर्जीपे हूकम लगायदो हो प्रभुजी, शुं थारो विरुद्ध विचार ॥ सु० १५ ॥ ध्यान धरुं छुं ताहरुं हो प्रभुजी, प्रतिमा सामें बेठ । तुं साहब त्रीभुवन धणीहो प्रभुजी, या अर्ज करी मैं भेट ॥ सु० १६ ॥ बालक आडो ले मायसुंहो प्रभुजी, मा-बाप करे छे सार । आस हमारी पुरसोहो प्रभुजी, में निश्चय लिनो धार ॥ सु० १७ ॥ समदृष्टि कोइ सुर हूवे हो देवा, शासनको रखवाल । तिण सेति पीण विनतीहो देवा, चेतो २ इण काल ॥ सु० १८ ॥ द्रव्य भाव पुजा करेहो प्रभुजी, श्रावकनो आचार । साधु पूजे भावसे हो प्रभुजी, नित्य आणी हरख अपार ॥ सु० १९ ॥ चार निक्षेपा वंदसु हो प्रभुजी, घणा सूत्रकि साख । जिन प्रतिमा जिन सारखी हो प्रभुजी, श्रीमुखसे दीनी भाख ॥ सु० २० ॥ गयवरचंदकी विनती हो प्रभुजी, तीर्थ ओसीया आण । जेष्ट शुक्ल एकादशी हो प्रभुजी, साल बहोत्तर जाण ॥ सु० २१ ॥

(२२) „ अखंडित चर्म अर्थात् संपूर्ण चर्म मृगछालादि रखे. ३

भावार्थ—विशेष कारण होनेपर साधु चर्मकी याचना करते है, वह भी एक खंडे सारखे.

(२३) „ सपूर्ण वस्त्र रखे. ३

भावार्थ—संपूर्ण वस्त्रकी प्रतिलेखन ठीक तौरपर नहीं होती है, चौरादिका भय भी रहता है.

(२४) „ अगर संपूर्ण वस्त्र लेनेका काम भी पड जावे, तो भी उसको काममें आने योग टुकडे कीया विगर रखे. ३

(२५) „ तुंबा, काष्ठ, मट्टीका पात्रको आप स्वयं घसे, समारे, सुन्दर आकारवाला करे ३

भावार्थ—प्रमादादिकी वृद्धि और स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न होता है.

(२६) एवं दंड, लठ्ठी, खापटी, वंस, सुइ स्वयं घसे, समारे, सुन्दर वनावे ३

(२७) „ साधुवोंके पूर्व संसारी न्यातीले थे, उन्होंकी सहायतासे पात्रकी याचना करे. ३

(२८) „ न्यातीके सिवाय दुसरे लोगोंकी सहायतासे पात्रकी याचना करे.

(२९) कोइ महान् पुरुष (धनाढ्य) तथा राजसत्तावालाकी सहायतासे

(३०) कोइ वलवानकी सहायतासे

(३१) पात्र दातारको पात्रदानका अधिकाधिक लाभ वतलाके पात्र याचे. ३

आपरो, गौतम गोत्री जाण । अग्नीभूती वाउभूती, लघुबंधव पिछाण ॥ गौ० २ ॥ मध पापा नगरी भली, सोमल नामा माहण । यज्ञ करावण तेडीया, मिलिया इग्यारे आण ॥ गौ० ३ ॥ तिण पाडारे ढुकडै, महासैन नामा उद्यान । वैशाख सुदी एकादशी, समोसर्या वर्धमान ॥ गौ० ४ ॥ चार प्रकारे देवता, केई विद्याधर जाण । नगर लोक बहु गुण करे, गौतम सांभली वाण ॥ गौ० ५ ॥ ओ कुसरे इंद्र जालियो, मांसु अधिको फेर । कर आडंबर शिष्यने, लिधा पांचसो लेर ॥ गौ० ६ ॥ ठीचो उभो आयने, भापे जिनवर एम । जीव छे किंवा नहीं, गौतम शंका छे तेम ॥ गौ० ७ ॥ शंसय मेटी दीक्षा दिनी, पंचसो परिवार । त्रीपदी तिण समे रची, द्वादश अंगी सार ॥ गौ० ८॥ गौराने घणा फुटरा, भगवती में वात । घोर तपसीमें गुण घणा, वीर धरीयो माथे हाथ ॥ गौ० ९॥ छत्तीस सहस्त्र प्रश्न किया, सूत्र भगवती मजार । वजीर वाज्या श्रीवीरना, सब साधूना सिरदार ॥ गौ० १० ॥ हाथतणा दीक्षितने, उपनो केवलज्ञान । गौतम मन चिंता थई, जाय बंध्या भगवान ॥ गौ० ११ ॥ देव वाणी आकाशमें, तीर्थ अष्टापद सोय । भूचर लब्धिसे वांदतां, चर्म शरीरी होय ॥ गौ० १२ ॥ आज्ञा मांगी श्रीवीरसे, श्रीजिन दिनी फरमाय । तीर्थयात्रा जो करे, जन्म सफल होजाय ॥ गौ० १३ ॥ सूर्यकीरण अवलंबने, अष्टापद जाइ वंद । तापस देखी आश्चर्य थया,

भावार्थ—जैसे चारण, भाट, भोजकादि, दातारोंकी तारीफ करते है, उसी माफीक साधुवोंको न करना चाहिये. वस्तुतत्व स्वरुप अवसरपर कह भी सक्ते है

(३९) „ शरीरादि कारणसे स्थिरवास रहे हुवे तथा ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे जिस नगरमें गये है. वहांपर अपने संसारी पूर्व परिचित जैसे मातापितादि पीछे सासु सुसरा उन्होंके घरमें पहिले प्रवेश कर पीछे गौचरी जावे. ३

भावार्थ—पहिले उन लोगोंको खबर होनेसे पूर्व स्नेहके मारे सदोष आहारादि बनावे. आधाकर्मी आहारका भी प्रसंग होता है.

(४०) „ अन्य तीर्थीयोंके साथ, गृहस्थोंके साथ, प्रायश्चित्तीयें साधुवोंके साथ तथा मूल गुणोंसे पतित ऐसे पासत्थादिके साथ, गृहस्थोके वहां गौचरी जावे. ३

भावार्थ—अन्य तीर्थीयादिके साथ जानेसे लोगोंको शका होगी कि—यह सब लोग आहार एकत्र ही लाते होंगे, एकत्र ही करते होंगे. अथवा दुसरेकी लज्जासे दबावसे भी आहारादि देना पडे. इत्यादि.

(४१) एवं स्थंडिल भूमिका तथा विहारभूमि (जिनमन्दिर)

(४२) एवं ग्रामानुग्राम विहार करना. भावना पूर्ववत्.

(४३) „ मुनि समुदाणी भिक्षाकर स्थानपर आके अच्छा सुगन्धि पदार्थका भोजन करे और खराब दुर्गन्धि भोजनको परठे. ३

(४४) एवं अच्छा नीतरा हुवा पाणी पीवे और खराब गुदला हुवा पाणी परठे. ३

(४५) „ अच्छा सरस भोजन प्राप्त हो, वा आप भोजन

सीया, जेष्ट शुक्ल एकादशी । दर्शन पायो गयवर गायो प्रभु मूर्ती मुज हृदये वसी ॥ १ ॥

(२४) स्तवन चोवीसमो

अनुभवीने एकलो । आनन्दमें रेवुंरे । करवुं प्रभुनुं भजन । बीजुं कंइ न केवुंरे ॥ अनु० ॥ १ ॥ सिद्ध बुद्ध चिदानन्द । शुद्ध कुंदन जेवुंरे । निजानन्द स्वरूप रमणे । परमहंस रहेवुंरे ॥ अनु० २ ॥ मुंगाकु सुपना भया । मनमें समजी लेवुंरे । कोइने कहेवानुं नहीं । मस्तानन्द रेहेवुंरे ॥ अनु० ३॥ संसारी जीव पामर प्राणी । भला भुंडा न कहेवुंरे । कहेवुं सुनवुं वृथा जाणी । मौन व्रत लेवुंरे ॥ अनु० ४॥ आशा पास तोडी फोडी । मस्त फकिरी रहेवुंरे । रंकना रतन जेम । जतन करी लेवुंरे ॥ अनु० ५ ॥ भूत भविष्य भुली जाई, वर्तमाने रहेवुंरे । धर्मरत्न आपो आप । तुंही तुंही कहेवुंरे ॥ अनु० ६॥

(२५) स्तवन (राग प्रभाती)

कोन सुने मेरी बात, में कहूं कीस आगे । दुःखकी बातें याद करुं जब, दुःख ही दुःख जागे ॥ कोन० १ ॥ दुःख ही में दिन गये, दुःख ही में जावे । दुःख ही के कारण मील्यां, चेतन दुःख पावे ॥ को० २ ॥ कीयासो दुःख करे सो दुःख, दुःख उदय आवे । सुनेसो दुःखी कहेसो दुःखी, केसे दुःख जावे ॥ को० ३ ॥ अदुःखीको दुःख नहीं, दुःखीको दुःख सतावे । ज्ञानसुन्दर निज दुःखकी वतीयां, प्रभुको सुनावे ॥ को० ॥ ४ ॥ इति.

—॥ इति स्तवन संग्रह प्रथम भाग ॥—

(५३) ,, एक मकानके लीये पाट पाटला लाया हो, फिर किसी कारणसे दुसरे मकानमें जाना हो, उस वख्त विगर आज्ञा दुसरे मकानमें ले जावें. ३

(५४) ,, जितने कालके लीये पाट पाटला तृन संस्तारक लाया हो, उसे कालमर्यादासे अधिक विना आज्ञा भोगवें. ३

(५५) ,, पाट पाटला के मालिककी आज्ञा विगर दुसरेको देवें. ३

(५६) ,, पाट पाटला शय्या संस्तारक विना दीये दुसरे ग्राम विहार करे. ३

(५७) ,, जीवोत्पत्ति न होनेके कारण पाट पाटले पर कोई भी पदार्थ लगाया हो, उसे विगर उतारे धणीको पीछा देवें. ३

(५८) ,, जीव सहित पाट पाटला गृहस्थोंका गमिन देवें. ३

(५९) ,, गृहस्थोंका पाट पाटला आज्ञासे लाया, उसे कोइ चोर ले गया. उसकी गवेषणा नहीं करे. ३

भावार्थ—पेडचकारी रखनेसे दुसरा कोइ पाट पाटला मांगनेमें मुश्केली होगी?

(६० जो कोइ साधु साध्वी किंचित मात्र भी उपधि न प्रतिलेखन करता रहे. रखावे. रखते दुवेको अच्छा समझे.

उपर लिखे ६० बोलोंसे कोइ भी बोल, साधु साध्वी सेवन करे, दुसरोंसे सेवन करावे, अन्य सेवन करते हुवेको अच्छा समझे, सहायता देवे. उस साधु साध्वीयोंको लघु मासिक प्रायश्चित होता है. प्रायश्चित विधि पुर्ववत.

इति श्री निशिथसूत्रके दुसरे उद्देशाका संक्षिप्त सार.

चन्दो, सर्व संघ वन्दनके काजे, वाज रहा पांचो ही वाजे ॥ दोहा ॥ गौडिजीसे आविया, शीतलके दरबार, मनोहर मूर्ति देखी म्हारो, हरख्यो हृदय अपार, जरा शुभ द्रष्टि तो कीजे ॥ शी० ॥ १ ॥ प्रभुजी आप वीतरागी, दर्शनसे अनुभव मुज जागी, आजको दिन है भारी, सेवा में आयो हुं तारी ॥ दोहा ॥ हुं अग्नि कषायसे, जल रहा दिन और रात, शीतल चन्दन बावनो सरे, करलो अपने साथ, रंग प्रभु अपनो मोय दीजे ॥ शी० ॥ २ ॥ तारक विरुद आपको स्वामि, मैं हूं एक मोक्षको कामी, मेरे मन तुंही तुं भावे, गयवरचन्द और नहीं ध्यावे ॥ दोहा ॥ मेरी तो मोक्ष हो गई, कीना तुम दीदार, एक अरज साहबजी तुमसे, ढुंढकको दो तार, इतना यश मेरेको दीजे ॥ शी० ॥ ३ ॥ इति.

नं० ३ श्रीफलोधिमंडन शान्तिनाथजी ।

अचरादे मईया, शान्ति करन तोरा जईया ॥ अ० ॥ टेर ॥ मेघरथ राजा जिनवर पूजी, जीव पारेवा बचइया, वीश स्थानककी करी सेवना, तीर्थंकर गोत बंधईया ॥ बन्धईया मईया ॥ शान्ति ॥ १ ॥ सर्वार्थसिद्धका सुख अनुभवी, गजपुर भूप धरईया, मृगी केरो रोग निवारी, शान्ति शान्ति वरतईया ॥ व० शान्ति ॥ २ ॥ मेरु शिखरे महोत्सव कीनो, इन्द्र हरष भरईया, कुमार राजमंडलिक भोगवी, षट् खंड छत्र धरईया ॥ ध० शान्ति ॥ ३ ॥ सब ऋपि त्यागी भये वैरागी, केवलज्ञान जगईया, सुरवर रचित समोसरणत्रानि, अमृतजल

भावार्थ—इस वृत्तिसे लघुता होती है. लोलुपता बढती है.

(१५) „ गृहस्थोंके वहां भिक्षा निमित्त जाते है. वहां तीन घरसे ज्यादा सामने लाके देते हुवे अशनादिको ग्रहन करे.३

भावार्थ—दृष्टिसे विगर देखी हुइ वस्तु तो मुनि ग्रहण कर ही नहीं सक्ते है, परन्तु कितनेक लोक चोका रखते है, और कोइ देशोंमें एसी भी भाषा है कि—यह भातपाणीका घर, यह बैठनेका घर, यह जीमनेका घर—एसे संज्ञा वाची घरोंसे तीन घरसे उपरांत सामने लाके देवे, उसे साधु ग्रहन करे ३

(१६) „ अपने पावोंको (शोभानिमित्त) प्रमार्जे, अच्छा साफ करे ३

(१७) अपने पावोंको दबावे, चंपावे.

(१८) „ तैल, घृत, मक्खन, चरबीसे मालिस करावे. ३

(१९) लोद्र कोकणादि सुगन्धि द्रव्यसे लित करे.

(२०) एवं शीतल पाणी. गरम पाणीसे एकवार, वारवार धोवे. ३

(२१) „ अलतादिक रगसे पावोंको रंगे. ३

भावार्थ—विगर कारण शोभा निमित्त उक्त कार्य स्वयं करे, अनेरोंसे करावे, करते हुवेको अच्छा समझे, अथवा सहायता देवे, वह साधु दंडका भागी होता है.

इसी माफिक छे सूत्र (अलापक) काया (शरीर) आश्रि-त भी समझना, और इसी माफिक छे सूत्र, शरीरमें गडगुम्बड आदि होनेपर भी समझना. ३३

(३४) „ अपने शरीरमें मेद, फुनसी, गडगुम्बड, जलंधर, हरस, मसा आदि होनेपर तीक्षण शस्त्रसे छेदे, तोडे, काटे ३

तामणि पार्श्व, और दादाशा जाहारीरे ॥ चिं० ॥ १ ॥ अनन्त ज्ञान दर्शनके धारी, तेवीसमा हो तुम अवतारी, शरणे आयो पुरजो, प्रभु आश हमारीरे ॥ चिं० ॥ २॥ तुं जगतारक बिरुद धरायो, मैं हूं दीन याचनको आयो, कुलिंग छोडियो नाथजी, चिंतामणि पायोरे ॥ चिं० ॥ ४ ॥ पांचमे मन्दिर मुक्ति काजे, जैनधर्मका डंका वाजे, गयवर चाकर आपको या घनजियुं गाजेरे ॥ चि० ॥ ५ ॥

नं० ६ श्री जेसलमेर मंडन आदिनाथजी.

(देशी विणजारी)

सुण मरुदेविका नन्दा, म्हारा काट चोरासी फन्दा ॥ सुण ॥ टेर ॥ समोसरण विच सोहे, चउ तीर्थका मन मोहे-जी, थाने सेवे सुरनर इन्दा ॥ सुण ॥ १ ॥ भाखी अर्थ रुपी वाणी, गणधर गूंथी गुण खांणीजी, द्वादश अंग सुरतरु कन्दा ॥ सु० ॥ २ ॥ धर्म अधर्म आकासा, जीव पुद्गल काल वीका-साजी, षटद्रव्य विचार आनन्दा ॥ सु० ॥ ३ ॥ एकरुपी एक है जीवा, पांच अरुपी पांच अजीवाजी, द्रव्य गुण पर्याय सा-नन्दा ॥ सु० ॥ ४ ॥ तीन एक तीन अनेका, पंचास्ति का-लहै शेषाजी, वली देश प्रदेश है खन्धा ॥ सु० ॥ ५ ॥ अ-गुरु लघु पर्यायहै जाहारी, साधर्मीषट् मझारीजी, वीचार भाव अबन्धा ॥ सु० ॥ ६ ॥ शुद्ध सम्यकत्व वोही पावे, षट्द्रव्य हृदयमें ध्यावेजी, इम ज्ञान भजे जिनचन्दा ॥ सु० ॥७॥ इति

(४७) मस्तकके बाल,
(४८) एवं कानोंके बाल.
(४९) कानकी अन्दरके बाल.

उक्त लंबे बालोंको (शोभा निमित्त) कटावे, समरावे, सुन्दरता बनावे, वह मुनि प्रायश्चितका भागी होता है. मस्तक, दाढी मुच्छोके लोच समय लोच करना कल्पे.

(५०) „ अपने दांतोंको एकवार अथवा वारंवार घसे. ३
(५१) शीतल पाणी गरम पाणीसे धोवे. ३
(५२) अलतादिके रगसे रगे. ३

भावार्थ—अपनी सुन्दरता-शोभा वढानेके लीये उक्त कार्य करे, करावे, करतेको सहायता देवे.

(५३) „ अपने होठोंकों मसले, घसे ३
(५४) चांपे, दबावे.
(५५) तैलादिका मालीस करे.
(५६) लोद्रव आदि सुगंधि द्रव्य लगावे.
(५७) शीतल पाणी गरम पाणीसे धोवे. ३

(५८) अलतादि रंगसे रगे, रगावे, रंगतेको सहायता देवे (भावना पूर्ववत्.

(५९) „ अपने उपरके होठोंका लंबापणा तथा होठोंपर के दीर्घवालोंको काटे, समारे, सुन्दर बनावे. ३

(६०) एव नेत्रोंके भोंपण काटे, समारे. ३
(६१) एवं अपने नेत्रों (आंखों)को मसले.
(६२) मर्दन करे.
(६३) तैलादिका मालीस करे.

करे, श्रावक द्रव्ये भाव, ज्ञानसुंदर जिन पूजतो, मीलीयो चौकनो डाव ॥ स ॥ भा० ॥ ११ ॥ इति

नं ८ श्री जेसलमेर मंडन चन्दाप्रभुजी.

चन्दाप्रभु चिंताहरो, करलो आप समान वालेश्वर । चन्दा । टेर । शान्तमुद्रा सोहामणि, नयन रह्या लोभाय । वा । यात्रा करी भला भावशुं सफळ हुइ मुज काय । वा । । चन्दा ॥ १ ॥ धूर गुणस्थानक पेहलडे, रह्यो काल अनन्त । वा । यथाप्रवृति करण हुवा, गीणतो न आवे अन्त । वा । । चन्दा ॥ २ ॥ करण अपूर्व दुसरो, स्थिति कर्म सातों शम । वा । कारण निमत्त मीलीयां थको । अनिवृति पाम्यों धर्म । वा । चन्दा ॥ ३ ॥ औपशम समकित त्यां लही, जावे चोथे गुणस्थान । वा । पडतों स्पर्शें दूसरो, छे आविलका प्रमाण । वा । चन्दा ॥ ४ ॥ मिश्रभाव तीजे गयो, पेहले के चोथे जाय । वा । सात प्रकृति चय करे, सात बोलोंको बन्ध न थाय । वा । चन्दा ॥ ५ ॥ तत्वरुची षटद्रव्य कि; जाणे जीवादि भेद । वा । सिद्ध सम गीणे आतमा, रहै सदा अभेद । वा । चन्दा ॥ ६ ॥ इग्यारे उच्छेदने, जावे पांचमें गुणस्थान । वा । श्रावक व्रत जो आदरे, पाले जिनवर आण । वा । चन्दा ॥ ७ ॥ प्रकृति पन्दरातणो, चय करे उपशम । वा । प्रमत्त गुणस्थानक लहे, मुनिपद क्षम शम दम । वा । । चन्दा ॥ ८ ॥ पांच प्रमादने परिहरे, अप्रमत्त गुण होय ।

(७४) पत्र श्मशानमें मुरदेको जलाया हो, उसकी राखमें मुरदेकी विश्रामकी जगहा, मुरदेकी स्थूभ बनाइ हो, उस जगहा, मुरदेकी पंक्ति (कबरों), मुरदेकी छत्री बनाइ-वहांपर जाके टटी, पैसाब करे, करावे, करतेको अच्छा समझे

(७५) कोलसे बनानेकी जगहा, साजीखारादिके स्थान, गौ, बलहादिके रोग कारणसे डाम देते हो उस स्थानमे, तुसोंका ढेर करते हो उस स्थानमें, धानके खळे बनाते हो उस स्थानमें, टटी पैसाब करे. ३

(७६) सचित पाणीका कीचड हो, कर्दम हो, नीलण, फूलण हो ऐसे स्थानमें टटी पैसाब करे. ३

(७७) नवी बनी गोशाला, नवी खोदी हुइ मट्टी, मट्टीकी खान, गृहस्थलोगों अपने काममे ली हो, या न भी ली हो ऐसे स्थानमें टटी पैसाब करे. ३

(७८) उंबरके वृक्षोंका फल पडा हो, पत्र वडवृक्ष, पीपलवृक्षोंके नीचे टटी पैसाब करे ३ इस वृक्षोंका बीज सुक्षम और बहुत होते है

(७९) इक्षु (साठा) के क्षेत्रमें, शाल्यादि धान्यके क्षेत्रमें, कसुबादि फूलोंके वनमें, कपासादिके स्थानमें टटी पैसाब करे. ३

(८०) मडक वनस्पति, साक व० मूला व० मालक व० खार व० बहु बीजा व० जीरा व० दमणय व० मरुग वनस्पतिके स्थानोमें टटी पैसाब करे. ३

(८१) अशोकवन, सीतवन, चम्पक वन, आम्रवन, अन्य भी तथा प्रकारका जहांपर बहुतसे पत्र, पुष्प, फल, बीजादि जीवोंकी विराधना होती हो, ऐसे स्थानमें टटी पैसाब करे. ३ तथा उक्त स्थानोंमे टटी पैसाब परठे, परिठावे, परिठबेको अच्छा समझे.

तेउ वायु, वनस्पति दादोंणोरे ॥ मु० ॥ २ ॥ बे, ते, चो, पंचेन्द्री तीर्यंच, मनुष गतिमें रमीयोरे, व्यंतर जोतिषी वैमानिकमें, काल अनंता गमीयोरे ॥ मु० ॥ ३ ॥ पतला पड्या कर्म हमारा, जद आ रुची जागीरे, अब तो नामो मंडासु साहब, तुम वीतरागीरे ॥ मु० ॥ ४ ॥ करणी करके सबही तीरीया, कांइ बडाइ धारीरे, साचो दाता जबही थाशो, मुज निगुणाने दो तारीरे ॥ मु० ॥ ५ ॥ दुखे पीडीयो आडो तेडो, बोली क्षम्या कीजोरे, ज्ञानसुन्दर चाकर चरणाको, हीवडे लगाई लीजोरे ॥ मु० ॥ ६ ॥ इति.

नं. १० श्री जेसलमेर मंडन श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ.

मुक्ति दिजो चिंतामणिमाने चोडे सुनो चाहे छाने ॥ मुक्ति० ॥ लेनदार जो आवीने बेठे, देरी करे क्या जाने ॥ मु० ॥ १ ॥ पावणो आवे सो जिमने जावे, करे टालाढुली शाने ॥ मु० ॥ २ ॥ धीणो होवे तो च्छासने आवे, नहीं तो आवे काने ॥ मु० ॥३॥ हुं छुं दीन ने तुं छे दाता, क्युं तरसावे माने ॥ मु० ॥ ४ ॥ सर्व बातको जानो साहब, घणो शुं कहेवुं थाने ॥ मु० ॥ ५ ॥ इति.

तुठो तुठोरे वामाको जायो, म्हेतो सहेज मुक्त गढ पायो ॥ तु० ॥ टेर ॥ निज सेवकपर करुणा आणी, अरजीपे हुकम लगायो ॥ तु० ॥ १ ॥ हुं छोरु कुच्छोरु तो पण, लीनो कण्ठ लगायो ॥ तु० ॥ २ ॥ तीन भुवनका राजसे अधिको, आज

(४) एवं राजाका अर्थी होना. ३

इसी माफिक च्यार सूत्र राजाके रक्षण करनेवाले दिवान-प्रधान आश्रित कहना. ५-८

इसी माफिक च्यार सूत्र नगर रक्षण करनेवाले कोटवालका भी कहना. ९-१२

इसी माफिक च्यार सूत्र निग्रामरक्षक (ठाकुरादि) आश्रित कहना. १३-१६

एवं च्यार सूत्र सर्व रक्षक फोजदारादिक आश्रित कहना. एवं सर्व २० सूत्र हुवे.

भावार्थ—मुनि सदैव निःस्पृह होते है. मुनियांके लीये राजा और रंक सदृश ही होते है. " जहा पुन्नस्स कत्थइ, तहा तुच्छस्स कत्थइ " अगर राजाको अपना करेगा, तो कभी राजाका कहना ही मानना होगा. ऐसा होनेसे अपने नियममें भी स्खलना पहुंचेगा वास्ते मुनियोंको सदैव निःस्पृहतासे ही विचरना चाहिये (यहां ममत्वभावका निषेध है.)

(२१) „ अखंड औषधि (धान्यादि) भक्षण करे. ३

भावार्थ—अखड धान्य सचित्त होता है. तथा सुंठादि अखण्डितमें जीवादि भी कवी कवी मिलते है. वास्ते अखंडित औषधि खानेकी मना है.

(२२) „ आचार्योपाध्यायके विना दीये आहार करे ३.

(२३) „ आचार्योपाध्यायके विना दीये विगइ भोगवे. ३

(२४) „ कोइ गृहस्थ ऐसे भी होते है कि साधुओंके लीये आहार पाणी स्थापन कर रखते है. ऐसे घरोंकी याच पुछ, गवेषणा कीये विगर साधु नगरमें गौचरी निमित्त प्रवेश करे. ३

नं १२ श्री जेसलमेर मंडन शान्तिनाथजी.

(देशी गोरोके गीतकि)

आंगी खुब बनी है दीनानाथकीजी, मनडो हरख्यो मारो देखी छबी नाथकीजी । टेर । सर्वार्थसिद्ध थकी आविथाजी, मारो मृगीको रोग निवारीयाजी–माता अचरादेवी जाया, ज्होंके सूरवर इन्द्र आया, प्रभुकों मेरुशिखर न्हवाया, इन्द्र महोत्सव करे भक्ति नाथकिजी ॥ आं० ॥ १ ॥ मंगल गावे इन्द्राणी आयनेजी, माता आसपुरे हुलरायनेजी–माता आसापुरी रमके, नैवर घुघर पगमें घमकें, पगल्या धर रह्या ठम ठम ठमके, आशा सफळ करी प्रभू मातकिजी ॥ आं० ॥ ॥ २ ॥ पचविश सहस्र कुंमर पद गयाजी, इतनाही प्रभु मंडलीक रह्याजी–भया छे खंड केरानाथ, ज्यांने सुरनर जोडे हाथ, प्रभुजी तत्त्वीण त्यागी आथ, दीक्षा महोत्सव करे म्हारा नाथकीजी ॥ आं० ॥ ३ ॥ छदमस्त मास केवल जच्योजी, सुर समोसरण आवि रच्योजी,–प्रभुके चोंतीस अतिशय छाजे, वानी घन जीयूं गाजे, इन्द्र आवे वन्दन काजे, नाटीक करे इन्द्राणी सब साथकीजी ॥ आं० ॥ ४ म्हेतों आज आनन्द शान्ति लह्योजी, योतों अष्टापद उपर रह्योजी, येतो पुष्प सुगन्धी लावे, श्रावक आंगी खुब रचावे, भावे ज्ञान सुन्दर गुण गावे, जेसलमेरमें निरखी मुद्रा नाथकीजी ॥आं० ॥ ५ ॥ इति ॥

भोजन करनेवाले तथा नित्य विना कारण एक स्थानपर निवास करनेवालोंका समझना

(३८—३९) एवं दो अलापक 'ससत्था' संवेगीके पास संवेगी और पासत्थावोंके पास पासत्था बननेवालोंका समझना

(४०) „ कच्चे पाणीसे 'संसक्त' पाणीसे भींजे हुवे ऐसे हाथोंसे भाजनमेंसे चाटुडी (कुरची) आदिसे आहार पाणी ग्रहन करे. ३ स्निग्ध (पूरा सूका न हो) सचित्त रजसे, सचित्त मट्टीसे, ओसके पाणीसे, नीमकसे, हरतालसे, मणसील (वोडल), पीली मट्टी, गेरुसे, खडीसे, हींगलुसे, अजनसे, (सचित्त मट्टीका) लोद्रसे, कुकस, तत्कालीन आटासे, कन्दसे, मूलसे, अद्रकसे, पुष्पसे, कोष्टकादि—एवं २१ पदार्थ सचित्त, जीव सहित हो, उसे हाथ खरडा हो, तथा सघट्टा होते हुवे आहार पाणी ग्रहन करे. ३ वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है इसी माफिक २१ पदार्थोंसे भाजन खरडा हुवा हो उस भाजनसे आहार पाणी ग्रहन करे ३ एवं ८१

(८२) „ ग्रामरक्षक पटेलादिको अपने वश करे, अर्चन करे, अच्छा करे, अर्थी बने. एवं इसी उद्देशाके प्रारंभमें राजाके च्यार सूत्र कहा था. इसी माफिक समझना. एवं देशके रक्षकों का च्यार सूत्र. एवं सीमाके रक्षकोंका च्यार सूत्र एव राज्य रक्षकोंका च्यार सूत्र. एवं सर्व रक्षकोंका च्यार सूत्र. कुल २० सूत्र. भावना पूर्ववत्. १०१

(१०२) „ अन्योन्य आपसमें एक साधु दुसरे साधुका पग दबावे-चांपे एव यावत् एक दुसरे साधुके ग्रामानुग्राम विहार करते हुवे के शिरपर छत्र धारण करे, करावे. जो तीसरा उद्देशामें कहा है, इसी माफिक यहां भी कहना. परन्तु वहां पर

देखी आनन्द वरत्यो म्हारेरे ॥ सु० ॥ ५ ॥ हजार वर्षका जुना देखा, ताडपत्रका लेख, सूत्र और ग्रन्थ है बहूला. मैं प्रत्यक्ष लीधा देखरे ॥ सु० ॥ ६ ॥ पंचांगीको साची मानो, जो चाहो तुम तीरणो, शंका हो तो मैं बतलाउं, जुठो हठ नहीं करणोरे ॥ सु० ॥ ७ ॥ जिनवाणीसे तीरणो होसी, कलीकालके अन्त, ज्ञान कहे आधार हमारे, जिनवाणी महिमावन्तरे ॥ सु० ॥ ८ ॥ इति.

न १९ श्री लोदरवा पार्श्वनाथजी

(देशी गोरोकी)

आयो आयोरे लोदरवाजी भेटवाने, मारा भवभव पातिक मेटवाने ॥ आ० ॥ टेर ॥ वामादेविको नन्दो, तुं तो दुरोआइ वसीयो, लारेलारे हुं पण आयो, तुमेरा चित्तमें धसीयो ॥ आ० ॥ १ ॥ संसाररुपी अटविभारी, डर लागो छे तुजने, तेथी आण एकान्ते बेठो, छोड आयो प्रभु मुजने ॥ आ० ॥ २ ॥ विषम वाटमें भुंट कांकरा, शीत सताइ मांने, सोरो दोरो आयो साहेब, आ अरज करी छे थांने ॥ आ० ॥ ३ ॥ इतना दिन तो भर्म भटकीयो, फीरीयो चौरासी ताई, पतो न लागो साहेब तोरो, उम्मर वृथा गमाई ॥ आ० ॥ ४ ॥ तेरागच्छमें जन्म लीयो पण, ढुंढक जालमें फसीयो, कुलिंग वेष मुंडो बांधी, कर्मों आगे कसीयो ॥ आ० ॥ ५ ॥ मिथ्या मोहको दुर कर्यो, अब अन्तराय गइ भागी, चैतनबलीये कर्म हठाया, अन्तर शुद्ध मति जागी ॥ आ० ॥ ६ ॥ बहुत दिनोंसेथी

चिगैरह डालके रात्रि समय जल रखते है. शायद रात्रिमें टटी पैसावका काम पड जावे तो उस जलसे शुचि कर सके.*

(१६४) ,, टटी पैसाव जाके पाणीसे शुचि न करे, न करावे, न करते हुवेको अच्छा समझे. वह मुनि प्रायश्चितका भागी होता है.

(१६५) जिस जगहपर टटी पैसाव कीया है, उस टटी पैसावके उपर शुचि करे. ३

(१६६) जिस जगह टटी पैसाव कीया है, उससे अति दूर जाके शुचि करे. ३

(१६७) टटी पैसाव कर शुचिके लीये तीन पसली अर्थात् जरुरतसे अधिक पाणी खरच करे. ३

भावार्थ—टटी पैसावके लीये पेस्तर सुकी जगह हो, वह भी विशाल, निर्जिव देखना चाहिये. जहांपर टटी बैठा हो वहांसे कुछ पावोंसे सरक शुचि करना चाहिये. ताके समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति न हो. अशुचिका छांटा भी न लगे और जल्दी सुक भी जावे. यह विधि वादका कथन है.

(१६८) ,, प्रायश्चित्त सयुक्त साधु कभी शुद्धाचारी मुनिको कहे कि—हे आर्य ! अपने दोनों साथही में गोचरी चले, साथ हीमें अशनादि च्यार प्रकारका आहार लावे. फिर बादमें वह आहार भेट (विभाग कर) अलग अलग भोजन करेंगे. ऐसे वचनोंको शुद्धाचारी मुनि स्वीकार करे, करावे, करतेको अच्छा समझे, वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है.

---

* ढुंढीये और तेरापन्थी लोग रात्रि समय पाणी नहीं रखते है तो इस पाठका पालन कैसे कर सक्ते होंगे ? और रात्रिमें टटी पैसाब होनेपर क्या करते होंगे ?

मुजको दिजो, दातानाम धरावो तो तुम, दया दीनपे किजोरे॥ अ०॥ ५ ॥ हुकम आपको मेरे शिरपर, अच्छो आनन्द आयो, ज्ञानसुन्दर चाकर चरणोंको, आज अमरपद पायोरे ॥अ०॥६॥

नं १७ श्री पोकरण मंडन पार्श्वनाथ

पार्श्वप्रभु मुजने, पार उतारे तुं थारो विरुद विचारे ॥ पार्श्व० ॥टेर॥ बनारसीमें जन्म आपको, अश्वसेन कुलचन्दा, मूर्ति मोहन दर्शन पायो, रोमरोम आनन्दा ॥ पा० ॥ १ ॥ स्याद्वाद हे जो तुज वाणी, पांच अंगसे पुरी, जो पंचांगी माने नहि, तेहने मुक्ति हे दुरी ॥ पा० ॥ २ ॥ पांच अंगसे पुरुष पूरो, एक माने च्यार छेदे, ते तो दुश्मन घाती कहीये, निन्हव आज्ञाने भेदे ॥ पा० ॥ ३ ॥ क्रिया उपर करे आडम्बर, पेट भरा भंडसूरा, आप थापीने प्रतिमा उत्थापी, कृतघ्नी ने क्रूरा ॥ पा० ॥ ४ ॥ भगवती स्थानायांग बोले, अनुयोगद्वारने नन्दी, समवायांग पंचांगी माने, नहीं माने मोह फन्दी। पा०॥ ५ ॥ टीकासुं जिण टबो कीनो, मंगलाचरणमें बोले, टबो माने टीका नहीं माने, पापी कोन इणतोले ॥ पा० ॥ ६ ॥ करुणा मध्यस्थ प्रमोद मित्रए, भावना नित्य नित्य भावुं, ढुंढक बुद्धि सुधारो नाथजी, या बात सदा में चाउं ॥ पा० ॥ ७ ॥ लोदरवासे पाच्छा वलता, पोकरण यात्रा कीनी, एक चौकमें तीनो मन्दिर, तीन तीन प्रदच्चणा दीनी ॥ पा० ॥ ८ ॥ दोय मन्दिर पार्श्व प्रभुका, एक आदिश्वर केरो, ज्ञानसुन्दर जिन चरणकमलमें, एक रुप तेरो मेरो ॥ पा० ॥ ९ ॥ इति.

(८) एवं आगमोंकी वाचना देवे. ३

(९) एवं आगमोंकी वाचना लेवे. ३

(१०) एवं पढे हुवे ज्ञानकी आवृत्ति करे. ३

भावार्थ—वहस्थान जीव सहित है. वहां बैठके कोइ भी कार्य नहीं करना चाहिये, अगर ऐसे सचित्त स्थानपर बैठके उक्त कार्य कोइ भी साधु करेगा, तो प्रायश्चित्तका भागी होगा.

(११) „ अपनी चद्दर अन्य तीर्थी तथा उन्होंके गृहस्थोंके पास सीलावे. ३

(१२) एवं अपनी चद्दर दीर्घ-लंबी अर्थात् परिमाणसे अधिक करे. ३

(१३) „ निंबके पत्ते, पोटल वृक्षके पत्ते, बिल वृक्षके पत्ते शीतल पाणीसे, गरम पाणीसे धोके-प्रक्षालके साफ करके भोजन करे. ३ यह सूत्र कोइ विशेष अरणीयादिके प्रसंगका है.

(१४) „ कारणवशात् सरचीना रजोहरण लेनेका काम पडे.* मुनि गृहस्थोंको कहे कि—तुमारा रजोहरण हम रात्रिमें वापिस दे देंगे. ऐसा करार करनेपर रात्रिमें नहीं देवे. ३

(१५) एवं दिनका करार कर दिनको नहीं देवे ३

भावार्थ—इसमें भाषाकी स्खलना होती है. मृषावाद लगता है. वास्ते मुनिको पेस्तरसे ऐसा समय करार ही नहीं करना चाहिये.

---

* कोइ तस्कर मुनिका रजोहरण चुराके ले गया, खबर करनेसे चोर कहता है कि—मैं दिनको लज्जाका मारा दे नहीं सका परन्तु रात्रिके समय आपका रजोहरण दे जाऊंगा ऐसी हालतमें गृहस्थोंसे करार कर मुनि रजोहरण लावे कि—तुमारा रजोहरण रात्रिमें देदुंगा

नाम लेवे प्रभु पूजाकेरो, हृदय उठे शूल—छोडदो मिथ्या मतकी पाज । सुनो ॥ ५ ॥ छोडि कंइ कुमत्योंकि समाज, भया केइ जिनवरके मुनिराज, ढुंढकजी बाहीर नहीं आवे, गालोंका गोला चलावे । दोहा । वह जमाना अब नहीं, भोला पडे कोइ फन्द, अज्ञान अंधेरो नही रहे सरे, अब उगो छे चन्द, जराकुच्छ मनमांहे तुं लाज ॥ सुनो० ॥६॥ कहेताहु हितके तांही, समजलो मनके मांही, छोडदो कुलिंगीका संग, लगा-लो समकित केरा रंग । दोहा । फलोधीसे आवीया, संघ चतुर्विध लार; माघकृष्ण पडिवा तेहोत्तर, पूजा नीनाणु प्रकार, ज्ञानपे कर कृपा जिनराज । सुनो ॥ ७ ॥ इति.

नं० (१८) श्री लोहावट मंडन श्री पार्श्वनाथजी ।

सुनो पार्श्व प्रभुजी डंका वाजे रे तोरा नामका । सु० टेर । ग्राम लोहावट जाटावासे, मन्दिर बनियों भारी, में पण यात्रा भावे किनी, दर्शन कि वलीहारी हो सु० ॥ १ ॥ द्रव्य कषायने योग आतमा, चोथी है उपयोग, ज्ञान दर्शन चारित्र सातमी, वीर्य आतमा उपभोग हो सु० ॥ २ ॥ दोय चौर ने दोय बोलाउं, प्रभुके लाद्धे चार, निज आतम निहालतो सरे, योग कषाय प्रचार हो सु० ॥ ३ ॥ दोनों चौर आतमा सोतां, मेरे लारे लागी, लूंट लिया बोलाउं दोनों, आयो दोडके भागी हो सु० ॥ ४ ॥ मोहर छापका दो परवाना, लगे न किसका जोर, बोलावाको साथे करदो, पडिया रहेशी

कि—यह कोइ प्रतिपक्षीयोंकि तर्फसे तो न आया होगा? इत्यादि शंकाके स्थानोंको वर्जना चाहिये.

(३५) एवं लोहाके आगर, त्रंबाका, तरुवेके, सीसाके, चंदीके, सुवर्णके, रत्नोंके, वज्रके आगरकी नवीन स्थापना होती हो वहां जाके साधु अशनादि आहार ग्रहन करे. ३

(३६) ,, मुंहसे बजानेकी वीणा करे. ३

(३७) दांतोंसे बजानेकी वीणा करे. ३

(३८) होठोंसे बजानेकी वीणा करे. ३

(३९) नाकसे बजानेकी वीणा करे. ३

(४०) काखसे बजानेकी ,,

(४१) हाथोंसे बजानेकी ,,

(४२) नखसे बजानेकी ,,

(४३) पत्र वीणा ,,

(४४) पुष्प वीणा ,,

(४५) फल वीणा ,,

(४६) बीज वीणा ,,

(४७) हरी तृण्णादिकी वीणा करे. ३

इसी माफिक मुंह वीणा बजावे, यावत् हरि तृणादिकी वीणा बजावे के बारह सूत्र कहना. एव ५९.

(६०) ,, इसके सिवाय किसी प्रकारकी वीणा जो अनुदय शब्द विषयकी उदीरणा करनेवाले वार्जित्र बजावेगा, वह साधु प्रायश्चित्तका भागी होगा.

भावार्थ—स्वाध्याय ध्यानमें विघ्नकारक, प्रमादकी वृद्धि करनेवाला शब्दादि विषय है. इसीसे मुनियोंको हमेशां दूर ही रहना चाहिये.

तीज, ज्ञानसुन्दर शरणो लीयो, नहीं चाहे ओ कोइ दुजी चीज ॥ चं ॥ ७ ॥ इति.

न २१ श्री सिद्धचक्रजी महाराज

भवी पूजोरे सिद्धचक्र पदको ॥ भवी० ॥ पहिले पद श्रीअरिहंत देवा, चौसठ इन्द्र करे सेवारे ॥ भ० ॥१॥ दुजे पद श्री सिद्धको ध्यावो, मनःवंच्छित सब फल पावोरे ॥ भ० ॥ २ ॥ तीजे पद आचारज सोहे, च्यार तीर्थका मन मोहेरे ॥ भ० ॥ ३ ॥ चोथे पद पाठक गुणधारी, वाचना देवे अति सारीरे ॥ भ० ॥ ४ ॥ पांचमे पद साधु भगवन्ता, क्षम शम दम वली गुणवन्तारे ॥ भ० ॥ ५ ॥ छठे पद दरशनको पूजो, अनुभव रस नहीं कोइ दुजोरे ॥ भ० ॥ ६ ॥ सातमा पदमें ज्ञान प्रकाशे, लोकालोक जेहथी भासेरे ॥ भ० ॥ ७ ॥ आठमे पद चारित्र सोभागी, चक्रवरत धरी ऋद्धि त्यागीरे ॥ भ० ॥ ८ ॥ नवमे पद श्री तपको ध्यावो, कर्मकाट केवल पावोरे ॥ भ० ॥ ९ ॥ सिद्धचक्र पूजा फल केसो, श्रीपाल मयणा जेसोरे ॥ भ० ॥ १० ॥ रत्नप्रभसूरीश्वर प्रसादे, ज्ञानसुन्दर आतम साधेरे ॥ भ० ॥ ११ ॥ इति.

नं० २२ श्री सिद्धचक्र भगवान्।

आज रंग वरसेरे। आज रंग वरसे ये तो सिद्धचक्र महाराज पूज मन मेरो हरखेरे आज० ॥ टेर ॥ श्वेत वर्ण पहेले पद पूजो, अरिहंत श्रीवीतरागीरे, रक्त वर्ण दुजे पद

(६८) ,, परिमाणसे अधिक 'रजोहरण' अर्थात् चौवीश अंगुलकी डंडी और आठ अंगुलकी दशीयों एवं बत्रीश अंगुलका रजोहरणसे अधिक रखे, दुसरोंसे रखावे, अन्य रखते हुवेको अच्छा समझे, अथवा सहायता देवे. *

(६९) ,, रजोहरणकी दशीयोंको अति सुक्षम (बारीक) करे. ३ प्रथम तो करणेमें प्रमाद बढता है. और उसकी अन्दर जीवादि फँस जानेसे विराधना भी होती है.

(७०) रजोहरणकी दशीयोंपर एकभी बन्धन लगावे. ३

(७१) एवं ओघारीयामें डंडी और दशीयों बन्धनके लीये तीन बन्धसे ज्यादा बन्धन लगावे. ३

(७२) एवं रजोहरणको अविधिसे बन्धे. नीचा उंचा, शिथिल, सख्त इत्यादि. ३

(७३) एवं रजोहरणको काष्ठकी भारीके माफिक बिचमें बन्ध करे. जिससे पूर्ण तोरपर काजा नीकाला नहीं जावे. जीवोंकी यतना भी पूर्ण न हो सके इत्यादि.

(७४) ,, रजोहरणको शिरके नीचे (ओशीकाकी जगह) धरे. ३

(७५) ,, बहु मूल्यवालो तथा वर्णादिकर सयुक्त रजोहरण रखे. ३ चौरादिका भय तथा ममत्व भावकी वृद्धि होती है.

(७६) ,, रजोहरणको अति दूर रखे तथा रजोहरण विगर इधर उधर गमनागमन करे. ३

(७७) ,, रजोहरण उपर बैठे. ३ कारण रजोहरणको शास्त्रकारोंने धर्मध्वज कहा है. गृहस्थोंको पूजने योग्य है.

---

* ढूंढीये लोग इस नियमका पालन कैसे करते होंगे? कारणकि—वो दो हाथके लंबे रजोहरण रखते है. इस वीरवाणीपर कुछ विचार करना चाहिये

॥ वी ॥ टेर ॥ हुं अज्ञानी जीवडो, भजीयों नहीं तुज नाम ॥ वा । कुडकपट मद लोभमे, न किधो रुडो काम ॥ वा ॥ ॥ वीर ॥ १ ॥ तुं जाणे कृत्य माहरा, हुं सब जगत से निच ॥ वा ॥ अशुभ कर्म प्रयोगसे, फसीयों मोहके बीच ॥ वा ॥ ॥ वीर ॥ २ ॥ नियम व्रत नहीं आखडि, नहीं कल्प क्रिया-कीसार ॥ वा ॥ अधम उद्धारण साहबों, मुजपापीने तार ॥ ॥ वा ॥ वीर ॥३॥ धन माल मागुं नहीं, राज पाट देवलोक ॥ वा ॥ तुम कृपाथीं शुद्ध छे रे, आ--लोकने परलोक ॥ वा ॥ ॥ वीर ॥ ४ ॥ भवभव चाकर त्हारो, मुजे इतनो आधार, ॥ वा ॥ ज्ञानसुन्दर शरणोलियो, भवो दधिपार उतार ॥ वा ॥ वी ॥ ५ ॥ इति.

नं० २९ श्री ओशीया मंडन वीरप्रभु ।

अब शरणे वीरके आया, शुद्ध निर्मल समकित पायोंरे अब ॥ टेर ॥ प्रभुलक्ष चौरासी भमियो, में कर्म नाटीक संग रमियों, निज आतम नहीं दमियो, इम काल अनन्तो गमियोंरे । अब ॥ १ ॥ मारे कुंमति नार लारे लागी, या शुद्ध बुद्ध गई सब भागी, मोहराजाकी ल्हेरो जागी, सब जगमें में अभागीरे । अब ॥ २ ॥ प्रभु देखी मुद्राधारी, जद नाठी कुमति नारी, तब अनुभव जागी भारी, प्रगटी चेतनता मारीरे । अब ॥ ३ ॥ अब मेहर निजर कर लिंजे, अवगुणकी माफि दिजे, भूखोंतो धायों पतिजे, सुण साहब कृपा किजेरे ॥ अब ॥ ४ ॥ दिन

सम्यक्प्रकारसे जानना यह ज्ञानावरणीय कर्मका क्षयोपशम है. जाननेके बादमें कुसंगतका त्याग करना और सत्संगका परिचय करना यह मोहनीय कर्मका क्षयोपशम है. इस जगह शास्त्रकारोंने कुसंगतके कारणको जानके परित्याग करणेका ही निर्देश कीया है.

अगर दीर्घकालकी वासनासे वासित मुनि अपनी आत्मरमणता करते हुवे के परिणाम कभी गिर पडे तथा अकृत्य कार्य करे, उसको भी प्रायश्चित्त ले अपनी आत्माको निर्मल बनानेका प्रयत्न इस छठ्ठे और सातवे उद्देशामें बतलाया गया है. जिसको देखना हो वह गुरुगमता पूर्वक धारण कीये हुये ज्ञानवाले महात्मावोंसे सुने. इस दोनों उद्देशोंकी भाषा करणी इस वास्ते ही मुलतवी रख गइ है. इति ६-७

इस दोनों उद्देशोंके बोलोंको सेवन करनेवाले साधु साध्वीयोंको गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा.

इति श्री लघुनिशिथ सूत्रका छठ्ठा सातवां उद्देशा.

---

(८) श्री निशिथसूत्रका आठवां उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' मुसाफिरखाना, उद्यान, गृहस्थोंका घर यावत् तापसोंके आश्रम इतने स्थानोंमें मुनि अकेली स्त्री के साथ विहार करे; स्वाध्याय करे अशनादि च्यार प्रकारका आहार करे, टट्टी पैसाब जावे, और भी कोइ निष्ठुर विषय विकार संबंधी कथा वार्ता करे. ३

(२) एवं उद्यान, उद्यानके घर (बगला), उद्यानकी शाला, निज्ञाण, घर—शालामें अकेला साधु अकेली स्त्रीके साथ पूर्वोक्त कार्य करे. ३

अथ श्री

॥ स्तवन संग्रह भाग त्रीजो ॥

—०—

न० १ श्री पार्श्वनाथ अक्रोधी (असवारी)

नाथमोंको क्रोधसे क्युं न बचावे, अक्रोधी नाम धरावे । नाथ । टेर । स्व[1] पर[2] उभय[3] निर्थक[4] वत्थु[5] । क्षेत्र[6] शरीर[7] औपधि[8], जान[9] अजान[10] उपशम[11] अनोपशम[12], संज्वल[13] प्रत्य[14] अप्रत्य[15] अनन्तानुबंधि[16], । नाथ० ॥ १ ॥ समुचय जीव और चौविश दंडक, सोला गुण जो करिये, भांगा चारसो इणि परे होवे, क्रोध सदा परिहरिये नाथ० ॥ २ ॥ चिय[1] उपचिय[2] बन्ध[3] उदय[4] और, उदीरणा[5] निरजरीया[6], तीन कालसे गुणा करतों, अठारा उर धरिया ॥ नाथ० ॥ ३ ॥ एक वचन बहु वचनसे गणतों, संख्या छतीस दीजे, समुचय जीव और चौवीस दंडक, नवसो भांगा गीण लिजे नाथ० ॥४॥ पूर्व च्यार[400]सो मीलके सारा, तेरा[1300] सो भांगा जाणो, मान[1300] माया[1300] लोभ[1300] इणीपरे, बावन[5200]सो भांगा पिच्छाणो ॥ नाथ० ॥ ५ ॥ एक एक भांगे काल अनन्तो, चेतन चउगति रमीयो, अब तुज चरण शरण दो साहब, ज्ञानसुन्दर मन गमीयो ॥ नाथ० ॥ ६ ॥ इति.

रात्रिका कहैना ही क्या ? नीतिकारोंने भी सुशील बहनोंको रात्रि समय अपने घरसे बाहार जाना मना कीया है. ढुंढीये और तेरापन्थी साधु रात्रिमे व्याख्यानके लिये सेंकडो स्त्रीयोंको आमन्त्रण कर दुराचारको क्यों बढाते हैं ?

(११) „ स्वगच्छ तथा परगच्छकी साध्वीके साथ ग्रामानुग्राम विहार करते कबी आप आगे, कबी साध्वी आगे चले जाने पर आप चितारुप समुद्रमें गिरा हुवा आर्त्तध्यान करता विहार करे तथा उक्त कार्यो करते रहे. ३ यह ११ सूत्रोंमें जैसे मुनियोंके लीये स्त्रीयोंके परिचयका निषेध बतलाया है, इसी माफिक साध्वीयोंको पुरुषोंका परिचय नहीं करना चाहिये.

(१२) „ साधु साध्वीयोंके संसार संबंधी स्वजन हो चाहे अस्वजन हो, श्रावक हो चाहे अश्रावक हो, परंतु साधुके उपाश्रय आधीरात तथा संपूर्ण रात्रि उस गृहस्थोंको उपाश्रयमें रखे, रहने देवे. ३

(१३) एवं अगर गृहस्थ अपनेही दिलसे वहां रहा हो उसे साधु निषेध न करे, अनेरोंसे निषेध न करावे, निषेध न करते हुवे को अच्छा समझे वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है.

भावार्थ—रात्रिमें गृहस्थोंके रहनेसे परिचय वढता है, संघट्टा होता है, साधुवोंके मल मूत्र समय कदाच उन लोगोंको दुर्गंध होवे, स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न होवे-इत्यादि दोषोंका संभव है. वास्ते गृहस्थोंको अपने पासमे रात्रिभर नहीं रखना. अगर विशाल मकानमें अपनी निश्रायमें एकाद कमरा कीया हो, अपने उपभोगमे आता हो, उस मकानकी यह बात है. शेष मकानमें श्रावक लोग सामायिक, पौषध तथा धर्मजागरणा कर भी सकते हैं.

(१४) अगर कोइ ऐसा भी अवसर आ जावे, अथवा निषेध

न० ४ श्री नेमिनाथ प्रभु ।

कोंण जाने श्याम तौरा मनकि मनाकि तनाकि लगन-किरे कोंण ॥ टेर ॥ सिवा देविके नन्द कहाया, आ जांन धु-त्तसे लाया, रथ बेसी तोरण पे आयारे । को० ॥ १ ॥ पुकार सुनी पशुवनकी, प्रभु दया करी तुम तीनाकि, मेरी प्रीत तोडी नव भवकीरे । कोण ॥ २ ॥ कोण दुति कामन कीनो, शिव रमणीपे चित्त दीनों, सहसावन संयम लीनोरे ॥ कोण ॥ ३ ॥ विन अवगुण मुजकों त्यागी, लो-आप भये वैरागी, फिर कहां जावोगा भागीरे । कोण ॥ ४ ॥ आप पेहलीमें जाउं, शिव-पूरमें सेज विच्छाउं, मे अचल प्रेम बनाउंरे । कोण ॥५॥ यों वनीयों प्रेम मजारो, अपनोभि विरुद विचारो, प्रभु ज्ञानसुन्दर को तारोरे । कोण ॥ ६ ॥ इति

न० ५ श्री आदिनाथ भगवान् ।

हे प्रभु मोय दर्शन दे ॥ टेर ॥ में हुं प्यासा तुज दर्श-नका, दीनपे करुणा क्यों न करे ॥ हे० ॥ १ ॥ क्या नुकशान किया में तेरा, मेरी अरजी क्यों न सुने ॥ हे० ॥ २ ॥ जबर पापीकों तार दिया, अब भक्तकों क्यों विसारा ॥ हे० ॥ ३ ॥ आप नीरागी बनके बेठे, मुजे निरागी क्यों न करे ॥ हे० ॥ ४ ॥ रहीम दील उत्कृष्टा, होके अब क्यों हृदय निष्ठुर भये । हे० ॥ ५ ॥ जब होवेंगे आप रुपमें, तब तेरी गरजी कोन करे ॥ हे० ॥ ६ ॥ आदिनाथकों भेट लिया, फिर इच्छत

(१९) ,, खातों पीतों बचा हुवा आहार देतों, भेटतों, बचा हुवा आहार, नाग्रतों बचा हुवा आहार, अन्य तीर्थीयोंके निमित्त, कृपणोंके निमित्त, गरीब लोगोंके निमित्त—ऐसा आहारादि ग्रहन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. भावना पूर्ववत् पंद्रहवां सूत्रकी माफिक समझना.

उपर लिखे १९ बोलोसे कोइ भी बोल, साधु साध्वी सेवन करेगा, उसको गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा, प्रायश्चित विधि देखो वीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र—आठवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

(९) श्री निशिथसूत्रका नौवां उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' राजपिंड (अशनादि आहार) ग्रहन करे, ग्रहन करावे ग्रहन करते हुवेको अच्छा समझे

भावार्थ—सेनापति, प्रधान, पुरोहित, नगरशेठ और सार्थवाह—इस पांच अग संयुक्तको राजा कहा जाता है.

(१) उन्होंके राज्याभिषेक समयका आहार लेनेसे शुभाशुभ होनेमें साधुवोंका निमित्त कारण रहता है.

(२) राजाका बलिष्ठ आहार विकारक होता है, और राजाका आहार बचे, उसमें पंडा लोगोंका विभाग होता है. वह आहार लेनेसे उन लोगोंको अंतरायका कारण होता है. एव राजपिंड भोगवे. ३

(३) ,, राजाके अन्तेउर (जनानागृह) में प्रवेश करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

नवनिधिके दाता, शरणे आयो करे बहु ज्ञातारे ॥ जय० ॥ १३ ॥ नगर फलोधि साल सीतंतर, चौमासे चित आनन्दकर ॥ जय० ॥ १४ ॥ आषाढ आरंभ फागण पुरे, कृष्ण चोथ चउगति चुरेरे ॥ जय० ॥ १५ ॥ ज्ञानकल्प तरु आंगण फलीयो, सुन्दर आज मेलो मीलीयोरे ॥ जय० ॥ १६ ॥ इति.

नं० ७ भाव (होरी)

खेलो होरीरे ज्ञान बगीचेमें ॥ खेलो० ॥ टेर ॥ क्षमाको कोट ने श्रद्धाकी धरती, दयातणी बुरज फीरतीरे ॥ खे० ॥ १ ॥ तपकी तोपो उपशम साजे, दानादिक चउ दरवाजेरे ॥ खे० ॥ २ ॥ मन मोगरो चित चम्पेली, क्रिया केतकी बनी वेलीरे ॥ खे० ॥ ३ ॥ ज्ञान गुलाब जाइ जुइ जतना, ध्यान मंडप बनीया कीतनारे ॥ खे० ॥ ४ ॥ गुप्तीका गुच्छा समितिकी लता, शील सुगन्ध भरी सत्तारे ॥ खे० ॥ ५ ॥ नयननिक्षेप पुष्प हे निका, नवतत्त्व फल नम्या जीकारे ॥ खे० ॥ ६ ॥ हृदय होदने शुद्ध मन पाणी, शम संवेगनुं रंग जाणीरे ॥ खे० ॥ ७ ॥ स्याद्वादकी डोलची सारी, कुंट काडी कुमति नारीरे ॥ खे० ॥ ८ ॥ ज्ञान पीचकारी भरी भरी मारी, मोहकी छाकको निवारीरे ॥ खे० ॥ ९ ॥ सिद्धान्तकी भंग गुरु मुख गोटी, भर भर पीवो वडी लोटीरे ॥ खे० ॥ १० ॥ नसेकी तारमें माल मसाला, षट् द्रव्य ओडण दुसालारे ॥ खे० ॥ ११ ॥ राचे माचे नाचे सारी, चेतन संग सुमति नारीरे ॥ खे० ॥ १२ ॥ मरुधर नगर फलोधि भारी, साल सीतंतर सुखकारीरे

(७) " राजाका राज्याभिषेक हुवे, उसके धान्य-कोठारकी शाला, धन-खज्ञानाकी शाला, दुध, दहीं, घृतादि स्थापन करनेकी शाला, राजाके पीने योग्य पाणीकी शाला, राजाके धारण करने योग्य वस्त्र, आभूषणकी शाला, इस छे शालाओंकी याचना न करी हो, पूछा न हो, गवेषणा न करी हो, परन्तु च्यार पांच रोज गृहस्थोंके घर गौचरीके लीये प्रवेश करे. ३

भावार्थ-उक्त छे शालाओंकी याचना कीये विना गौचरी जावे ता कदाच अनज्ञानपणे उसी शालाओंमें चला जावे, तब राजादिको अप्रतीतिका कारण होता है. उस समय विषादिका प्रयोग हुवा हो तो साधुका अविश्वास होता है. इस वास्ते शास्त्रकारोंने प्रथमसे ही मुनियोंको सावचेत कीया है. ताके किसी प्रकारसे दोषका संभव ही न रहे.

(८) ,, राजा यावत् नगरसे बाहार जाता हुवा तथा नगरमें प्रवेश करते हुवेको देखनेको जानेके लीये एक कदम भरनेका मनसे अभिलाषा करे, करावे, करते हुवेको अच्छा समझे

(९) एवं स्त्रीयों सर्वांग विभूषित, शृंगार कर आती जातीको नेत्रोंसे देखने निमित्त एक कदम भरनेकी अभिलाषा करे. ३

(१०) ,, राजादिक मृगादिका शिकार गया, वहांपर अशनादि च्यार प्रकारका आहार बनाया उस आहारसे आप ग्रहन करे.

(११) ,, राजाके कोइ भेटणा-निजराणा आया है, उस समय राजसभा एकत्र हुइ है, मसलत कर रहे है, वह सभा विर्जन नहीं हुइ, विभाग नहीं पडा. अगर कोइ नवी जुनी होनेवाली है उस हालतमें साधु आहार पाणीके लीये गौचरी जावे, अशनादि च्यार आहार ग्रहन करे. ३

(१०) आशा औरनकी क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे । आशा ॥ भटके द्वार द्वार लोकनके, कूकर आशा धारी, आतम अनुभव रसके रसीया, उतरे न कबहु खुमारी ॥ आ० ॥ १ ॥ आशा दासी के जे जावे, ते जन जगके दासा, आशा दासी करी जे नायक, लायक अनुभव प्यासा ॥ आ० ॥ २ ॥ मनका प्याला प्रेम मसाला, ब्रह्म अग्निपर जाली, तन भाठी अवटाइ पीये कस, जागे अनुभव लाली ॥ आ० ॥ ३ ॥ आगम प्याला पीवो मतवाला, चिन्ही अध्यातम वासा, आनन्दघन चैतन वहै खेले, देखत लोक तमासा ॥ आ० ॥४॥

(११) अकल कला जगजीवन तौरी, अकल० । अनन्त उदाधिथी अनंत गुणो तुज, ज्ञान लघु बुद्धि ज्युं मेरी ॥ अकल० ॥१॥ नय अरू भंग निक्षेप विचारत, पुरवधर थाके गुण हेरी, विकल्प करत थाग नहीं पाये, निर्विकल्प होत लहरी ॥ अ० ॥ २ ॥ अंतर अनुभव विनतोय पदमें, युक्ति नही कोउ घटत अनेरी, चिदानन्द प्रभु करी कीरपा अब, दीजे ते रस रीझ भलेरी ॥ अ० ॥ ३ ॥ इति.

(१२) जोग जुगति जाण्या विना, कहा नाम धरावे. । रमापति कहे रंककुं, धन हाथ न आवे ॥ जो ॥ १ ॥ भेख धरी माया करी, जगकुं भरमावे, पूरण परमानन्दकी, सुधिरंचन पावे । जो ॥ २ ॥ मन मुंडये विन मूंडकुं, अति घेट मुंडावे, जटा जूठ शिर धारके, कउ कोन फरावे । जो ॥ ३ ॥ उर्ध्व-

बांसपर खेलनेवाले, मल्ल--मुष्टियुद्ध करनेवाले, भांड--कुचेष्टा कर-नेवाले, कथा कहनेवाले, पावडे जोड जोड गानेवाले, वांदरेकी माफिक कुदनेवाले, खेल तमासा करनेवाले, छत्र धरनेवाले—इन्होंके लीये अशनादि आहार बनाया हो, उस आहारसे साधु ग्रहन करे. ३ कारण—अन्तरायका कारण होता है

(२३) ,, राज्याभिषेक समय, जो अश्व पालनेवाले, हस्ती पालनेवाले, महिष पालनेवाले, वृषभ पालनेवाले, एवं सिंह, व्याघ्र, छाली मृग, श्वान, सूवर, भेड, कुकडा, तीतर, बटेवर, लावग, चर्ल, हंस, मयूर, शुकादि पोषण करनेवाले, इन्हीके मर्दन कर-नेवाले, तथा इनिको फिराने खीलानेवाले, इन्होंके लीये च्यार प्रकारका आहार निष्पन्न कीया हुवा आहार साधु ग्रहन करे, क-रावे, करतेको अच्छा समझे वह मुनि प्रायश्चितका भागी होता है.

(२४) ,, राज्याभिषेक समय, जो सार्थवाहकके लीये, पग चपी करनेवालोंके लीये, मर्दन करनेवालोंके लीये, तैलादिका मालीस करनेवालोंके लीये, स्नान मज्जन करानेवालोंके लीये, शृंगारसजानेवालोंके लीये, चम्मर, छत्र, वस्त्र, भूषण धारण करा-नेवालोंके लीये, दीपक, तरवार, धनुष्य, भालादि धारण करने-वालोंके लीये, अशनादि च्यार प्रकारका आहार बनाया, उस आहारसे मुनि आहार ग्रहन करे भावना पूर्ववत.

(२५) ,, राज्याभिषेक समय, जो वृद्ध पुरुषोंके लीये, कृत नपुंसकोंके लीये, कंचुकी पुरुषोंके लीये, द्वारपालोंके लीये, दंड धारकोंके लीये बनाया आहार साधु ग्रहन करे ३

(२६) ,, राज्याभिषेक समय जो कुब्ज दासीयोंके लीये, यावत् पारसदेशकी दासीयोंके लीये बनाया हुवा आहार, मुनि ग्रहन करे. ३ भावना पूर्ववत् अन्तराय होता है.

कोउ ठाणे, तिनमें भये अनेक भेद ते, अपनी अपनी ताणे। मा०। नय सरवंग साधना जांमे, ते सर्वज्ञ कहावे, चिदानन्द एसा जिन मारग, खोजी हो सो पावे। मा०। ५।

(१५) अपने पदकों तजके चैतन, परमें फसना ना चहिये, रंजमे रोना ओस असरतमें हसना ना चहिये। टेर। जगत वस्तु सब विनासीक, तीहु काल विसरना ना चहिये, राव रंक हो कवी अपशोप करना ना चहिये। सुखमें दुःख और दुःखमें सुख इनमें चित्त धरना ना चहिये, यह पौद्गलीक है उसका आपमें समझना ना चहिये; तेरा तो एक भेष निराला, कीसीमें वसना ना चहिये। रंज। १। भाइ बन्ध सुत दारासे कर प्रित हरखना ना चहिये, यह स्वार्थ साथी भरोसा इन्हका रखना ना चहिये, हुइ तेरी गफलत अनादकि अबतों रखना ना चहिये, यह दुःखदाइ है, भुल या भली नही, रखना ना चहिये, दर्शनज्ञान जो सभाव तेरा, जिसे विसरना ना चहिये। रंज। २। तु चैतन है सबसे न्यारा, भरममें आना ना चहिये, जडमें आपा आपमें जडका गाना ना चहिये। तूं अविनासी येहे विनासी, तुजे लोभाना ना चहिये, इन आतम रत्नको काचखंड मूल्य विकाना ना चहिये, निकल जलदी इन्ह अन्धकूपसे, पड्या तडफना ना चहिये। रंज। ३। राग द्वेष भट पाडासे निज विभव ठगाना ना चहिये, ज्ञानी होके कवी पर संग लगाना ना चहिये, तेरे और परमातममें कुच्छ फरक

(८) एवं वर्त्तमान कालका.

(९) एवं अनागत कालका निमित्त कहे, प्रकाश करे.

भावार्थ—निमित्त प्रकाश करनेसे स्वाध्याय ध्यानमें विघ्न होवे, राग द्वेषकी वृद्धि होवे, अप्रतीतिका कारण-इत्यादि दोषोंका संभव है.

(१०) ,, अन्य किसी आचार्यका शिष्यको भरममें (भ्रममें) डाल देवे, चित्तको व्यग्र कर अपनी तर्फ रखनेकी कोशीश करे. ३

(११) ,, एवं प्रशिष्यको भरम (भ्रम) में डाल, दिशामुग्ध बनाके अपने साथ ले जावे तथा वस्त्र, पात्र, ज्ञानसूत्रादिका लोभ दे, भरमाके ले जावे. ३

(१२) ,, किसी आचार्यके पास कोइ गृहस्थ दीक्षा लेता हो, उसको आचार्यजीका अवगुणवाद बोल (यह तो लघु है, हीनाचारी है, अज्ञान है-इत्यादि) उस दीक्षा लेनेवालाका चित्त अपनी तर्फ आकर्षित करे. ३

(१३) एवं एक आचार्यसे अरुचि कराके दुसरोंके साथ भेजवा दे.

भावार्थ—ऐसा अकृत्य कार्य करनेसे तीसरा महाव्रतका भंग होता है. साधुवोंकी प्रतीति नहीं रहती है. एक ऐसा कार्य करनेसे दुसरा भी देखादेखी तथा द्वेषके मारे करेंगा, तो साधुमर्यादा तथा तीर्थंकरोंके मार्गका भंग होगा

(१४) ,, साधु साध्वीयोंके आपसमें क्लेश हो गया हो तो उस क्लेशका कारण प्रगट कीये विना, आलोचना कीया विगर, प्रायश्चित लीये विगर, खमतखामणा कीया विगर तीन रात्रिके उपरांत रहे तथा साथमें भोजन करे ३

अनुपम रुपहै प्रभुजी, बतादोगे तो क्या होगा ॥ टेर ॥ प्रभु तुमदीनके रक्षक, करो मूझ दीनकी रक्षा, चौराशीलक्ष कि फेरी, मिटादोगे तो क्या होगा ॥ १ ॥ अनादि कालसे भमता, नहि अभी अंत आया है, शरण अब आपका लीना, हटादोगे तो क्या होगा ॥२॥ अनादि कालसे रुलिया, बन्यो मिटी, कभी पानी, तेउ वायु हरीकाया, बचादोगे तो क्या होगा ॥ ३ ॥ बि-ति-चउजाती पंचेन्द्री, पशु परवश दुःखपाया, अमर नरना-रकी रुपे, छुडादोगे तो क्या होगा ॥ ५ ॥ इसी संसार साग-रमे, मेरी प्रभु डूबती नईयां, करी करुणा किनारेपर, लगादोगे तो क्या होगा ॥ ५ ॥ करो प्रभुपार भवोदधिसे, निजातम सम्पदा दीजे, सेवकको अपना वल्लभ, बनालोगे तो क्या होगा ॥ ६ ॥ इति.

(१६) भर लावोरे कटोरा चन्दनका, नव अंग पूजो परमेश्वरका । भ० १ । सति द्रौपदी चन्दन चरच्यो, ज्ञान सुनो सूत्र ज्ञाताका । भ० २ । नर नारी मीलमील के पूजो, पावो अचल सुख मुक्तिका । भ० ३ । आज आनन्द रंग मंगल गावो, सेवक चाकर चरणोंका । भ० ४ । इति.

(२०) भर लावोरे चंगेरी फूलनकि, आंगी रचावो ना भिकुलनकि । टेर । चंपो चंपेली मरवो मोगरो, विचविच छ-डियो गुलाबनकि । भ० १ । केवडो केतकि गन्ध सुवासीत, खुब खुली छबी हारनाकि । भ० । २ । गेंद गुलाबको हृदय

(२२) ,, एवं सुनलेने पर तथा स्वयं जानलेनेपर आलोचना करने योग्य प्रायश्चित्तकी आलोचना नहीं करे. यह हेतु उसके साथ आहारपाणी करे. ३

(२३) संकल्प—अमुक दिन आलोचना कर प्रायश्चित्त लेवेगा. परन्तु जबतक आलोचना कर प्रायश्चित्त नहीं लीया है, वहांतक उसे दोषित साधुके साथ आहार पाणी करे, करावे, करतेको अच्छा समझे. जैसे च्यार सूत्र लघु प्रायश्चित्त आश्रित कहा है, इसी माफिक च्यार सूत्र (२४-२५-२६-२७) गुरुप्रायश्चित्त आश्रित कहना. इसी माफिक च्यार सूत्र (२८-२९-३०-३१) लघु और गुरु दोनों सामेलका कहना. ×

(३२) ,, लघु प्रायश्चित्त तथा गुरु प्रायश्चित्त, लघु प्रायश्चित्तका हेतु, गुरु प्रायश्चित्तका हेतु, लघु प्रायश्चित्तका संकल्प, गुरु प्रायश्चित्तका संकल्प. सुनके, हृदयमें धारके फिर भी उस प्रायश्चित्त संयुक्त साधुके साथ एक मंडलपर भोजन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—कोइ साधु प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर आलोचना नहीं करते है. उसके साथ दुसरे साधु आहार पाणी करते हो, तो उसे एक कीस्मकी सहायता मिलती है दुसरी दफे दोष सेवनमें शंका नहीं रहेती है. दुसरे साधु भी स्वच्छंदी हो प्रायश्चित्त सेवन करनेमें शंका नहीं लावेंगा तथा दोषित साधुवोंके साथ भोजन करनेवालोंमे एकांश व्याप्त होगा, इत्यादि इसी वास्ते

× एक प्राचीन प्रतिमें गुरु प्रायश्चित्त और लघु प्रायश्चित्तसे भी च्यार सूत्र लिखा हुवा है विकल्पके सबबसे यह भी च्यार विकल्प हो सक्ते है तथा लघु प्रा०का हेतु, गुरु प्रा० सकल्प, लघु प्रा० सकल्प, गुरु प्रा० हेतु लघु गुरु दोनोंका हेतु तथा दोनोंका संकल्प यह भी च्यार सूत्र है.

नीरासी । भमरा० । २ । आनन्दघन प्रभु तुमारे मीलनकों । जाय करवत ज्यूं कासी । भमरा० । ३ ।

(२४) वारोरे कोइ परघर रमवानो ढाल, न्हानी वहुने परघर रमवानो ढाल । वारोरे । टेर । परघर रमतों थई जूठाबोली, देशे धणीजीने गाल । वारो । १ । अलवे चाला करति हींडे, लोकडा कहे छे छीनाल । ओलंवडा जण जणना लावे, हैडे उपासे शाल । वारो । २ । बाईर पाडोसण जुओने लगारक । फोकट खासे गाल । आनन्दघन प्रभु रंगे रमतों, गोरे गाल झबुके झाल । वारो । ३ । इति ।

(२५) ऐसे जिनचरने चित्त लाउंरे मना एसे अरिहंतके गुन गाउंरे मना । टेर । उदर भरनके कारनेरे गौआं वनमें जाय । चारो चरे चिहुं दिश फीरे, वाकी सुरति वछरुआ मांहेरे । मना । १ । पांच सात साहेलीयां रे, हील मील पाणी जाय, ताली दीये खडखड हसेरे, वाकी सुरति गगरुआ मांहेरे । मना ॥ २ ॥ नटुआ नाचे चोकमेंरे, लोक करे लख सोर । वांसग्रही वरते चढे । वाकों चित्त न चले कहुं ठोररे मना ।३। जूआरी मनमें जूवारे, कामिनीके मन काम । आनन्दघन प्रभु युं कहे, तुमे ल्यो भगवन्तको नामरे मना । ४ । इति ।

॥ इति श्री स्तवनसंग्रह भाग तीजा समाप्तम् ॥

आदि लेनेका काम पडे, उस अपेक्षा यह विधि बतलाइ है. सा-मान्यतासे तो साधु दुसरी तीसरी पौरुषीमें ही भिक्षा करते है.

(३७) ,, कोइ साधु साध्वीयोंको रात्रि समय तथा वैकाल (प्रतिक्रमणका वखत) समय अगर आहार पाणी संयुक्त उगालो (गुचलको) आवे, उसको निर्जीव भूमिपर परठ देनेसे आज्ञाका भंग नहीं होता है. अगर पीछे भक्षण करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(३८) ,, किसी वीमार साधुको सुनके उसकी गवेषणा न करे. ३

(३९) अमुक गाममें साधु वीमार है, ऐसा सुन आप दुसरे रहस्तेसे चला जावे, जाने कि—मैं उस गाममें जाउगा तो वीमार साधुकी मुझे वैयावच्च करना पडेगा.

भावार्थ—ऐसा करनेसे निर्दयता होती है. साधुकी वैयावच्च करनेमें महान् लाभ है. साधुकी वैयावच्च साधु न करेंगा, तो दुसरा कौन करेंगा ?

(४०) ,, कोइ साधु वीमार साधुके लीये दवाइ याचनेको गृहस्थोंके वहां गया, परन्तु वह दवाइ न मिली तो उस साधुने आचार्यादि वृद्धोंको कह देना चाहिये कि—मेरे अन्तरायका उदय है कि इस वीमार मुनिके योग्य दवाइ मुझे न मिली. अगर वापिस आयके ऐसा न कहे वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है. कारण-आचार्यादि तो उस मुनिके विश्वासपर वैठे है

(४१) ,, दवाइ न मिलनेपर साधु पश्चात्ताप न करे. जैसे—अहो ! मेरे कैसा अन्तराय कर्मका उदय हुवा है कि—इतनी याचना करनेपर भी इस वीमार साधुके योग्य दवाइ न मिली इत्यादि.

॥२॥ शब्द रूप रस गन्ध फन्दमें मोहो छो सही। या पर-पुद्गल संग बेठ बेठ किम खोवो छो सही ॥ खोवो० ॥ या बीज० ॥३॥ तृष्णा मच्छर मान विषय विष होवो छो सही। या देख पराइ नार लार किम जोवो छो सही ॥ जोवो० ॥ या बीज० ॥४॥ सुमति विच्छाइ सेज मेजपर पोडो तो सही। या अनुभव ज्ञानकी प्रीत रीत घर मांडो तो सही ॥ मांडो० ॥ या बीज० ॥ ५ ॥

नं० ३ पांचमकी सझाय.

तप वडोरे संसारमें जीव उज्वल थावेरे । कर्मरुपी इंधन जले, वेलो मुक्तिमें जावेरे ॥ तप० ॥ टेर॥ शासनपति श्री वीरजी, कर्म काटण जगसूरारे। साढा बारा वर्ष भूजीया, वाजा तप कारण तूंरारे ॥ तप० ॥ १ ॥ कठिन कर्मको छेदके, पाम्या केवल नाणोरे । छठ छठ तप कीया पारणा, गणधर गौतम जाणोरे ॥ तप० ॥ २ ॥ छठ तप अंबिलपारणे, अरस निरस आहारोरे । वीर जिनन्द-वखाणीयो, धन्य धन्नो अण-गारोरे ॥तप०॥३॥ काली आदि दश जाणजो, श्रेणिक नृपनी नारोरे । एकावली मुक्तावली, पोया तपस्याना हारोरे ॥ तप० ॥ ४ ॥ आनन्दआदि श्रावक हुवा, धरी प्रतिमा इग्यारोरे । तप करी काया शोषवी, हुवे एका अवतारोरे ॥ तप० ॥ ५ ॥ कोटी संचित हुवे, किधा कर्म विकरालोरे। क्षमा सहित तपस्या करे, देवे छीनमें प्रज्वालोरे ॥ तप० ॥ ६ ॥ आराधो

भावार्थ—जैसे जैन मुनियोंके पर्युषण होते है, इसी माफिक अन्य तीर्थी लोग भी अपनी ऋषि पंचमी आदि दिनकों मुकर कीया है. वह अन्यतीर्थी कहे कि—हे मुनि ! तुमारा पर्युषण हमको करावे और हमारा पर्युषण तुम करो. एसा करना साधु साध्वीयोंको नहीं कल्पै

(४८) „ आषाढी चातुर्मासीके बाद साधु साध्वी वस्त्र, पात्र ग्रहन करे. ३

भावार्थ—जो वस्त्रादि लेना हो, वह आषाढ चातुर्मासी प्रतिक्रमण करनेके पेस्तर ही ग्रहन कर लेना. बाद में कार्तिक चातुर्मासी तक वस्त्र नहीं ले सक्ते है.+

उपर लिखे ४८ बोलोंसे कोइ भी बोल सेवन करनेवाले साधु साध्वीको गुरु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो बीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र-दशवा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(११) श्री निशिथसूत्र—इग्यारवां उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' लोहाका पात्र करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(२) एवं लोहाका पात्राको रखे.

+ समवायांगसूत्र—"समणे भगवं महावीरे सवीसइ राइ मासं वइक्कंते सत्तरिएहिं राइदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसमेइ" अर्थात् आषाढ चातुर्मासीसे पचास दिन और कार्तिक चातुर्मासिके सीत्तर दिन पहला सांवत्सरिक प्रतिक्रमण करना साधुवोंको कल्पै.

न० ५ इग्यारा अगकि सझाय ।

अंग इग्यारे पूजो प्राणी, इम कह्यो केवलनाणीरे । अंग० । टेर । प्रथम अंग आचारंग जीणरा, दो श्रुत स्कन्ध वाजेरे, अध्ययन पैंचवीस उदेशा पीच्यासी, मुनि क्रियासु छाजेरे ॥ अंग० ॥ १ ॥ तीम सूयघडायांग दो श्रुत स्कन्धे, अ-तेवीस उ-तेतीसरे । स्वमत मंडन परमत खंडन, न्याय युक्ति विशेषरे ॥ अंग० ॥ २ ॥ ठाणायंग दशठाणा उदेशा, एकवीस कह्या न्यारान्यारारे । एक से दश बोलोंको संग्रह, संचेपे कह्या सारारे । अंग ॥ ३ ॥ सामवायंगमें एक से लेके, क्रोडाक्रोडी तांई रे । अरिहंत चक्री हरी हलधर सब, सूत्र सुंधज आइ रे । अंग ॥ ४ ॥ पंचम अंग भगवती सूत्र, शतक इगतालीस सारा रे । उगणीसो पचवीस उदेश, प्रश्न छत्तिस हजारा रे । अंग ॥ ५ ॥ ज्ञाता धर्मकथा छे जिणमें, अध्ययन कह्या उगणीसो रे । साढा तीन क्रोड छे कथा, नव नव रंगवणीसोरे । अंग ॥ ६ ॥ उपासक दशांग सातमे, श्रावकोंका अधिकार रे । प्रतिमा साधी व्रत आराधी, हुवे एका अवतार रे । अंग ॥ ७ ॥ अन्तगढमें मुनिवर नेउ (९०), अन्तमें केवलनाणो रे । अनुत्तरोववाइमें मुनि तेतीस, गया अनुत्तर वैमाणो रे । अंग ॥ ८ ॥ प्रश्न व्याकरण दशमे अंगे, विद्या अनेक प्रकारो रे । अंगुष्टादि उत्तर आपे, संवरासंवर विचारो रे । अंग ॥ ९ ॥ दोय भेद विपाक लहीजे, सुख दुःखको अधिकाररे । द्रष्टिवाद

(१०९) ,, पात्रा याचने निमित्त दोय कोश उपरांत गमन करे, गमन करावे, गमन करनेको अच्छा समझे. ३

(११०) एवं दोय कोश उपरांतसे सामने दोय कोशकी अन्दर लायके देवे, उस पात्रको मुनि ग्रहन करे. ३

(१११) ,, श्रीजिनेश्वर देवोंने सूत्रधर्म (द्वादशांगरुप), चारित्रधर्म (पंचमहाव्रतरुप), इस धर्मका अवगुणवाद बोले, निंदा करे, अयश करे, अकीर्ति करे. ३

(११२) ,, अधर्म, मिथ्यात्व, यज्ञ, होम, ऋतुदान, पिंड-दान, इत्यादिकी प्रशसा-तारीफ करे. ३

भावार्थ—धर्मकी निन्दा ओर अधर्मकी तारीफ करनेसे जी-वोंकी श्रद्धा विपरीत हो जाती है. वह अपनी आत्मा और अनेक पर आत्मावोंको डुबाते हुवे और दुष्कर्म उपार्जन करते है.

(११३) ,, जो कोइ साधु साध्वी, जो अन्यतीर्थी तापसा-दि और गृहस्थ लोगोंके पावोंको मसले, चपे, पुंजे. यावत् तीसरा उद्देशामें पावोंसे लगाके ग्रामानुग्राम विहार करते हुवेके शिरपर छत्र करनेतक ५६ सूत्र वहांपर साधु आश्रित है, यहांपर अन्यती-र्थी तथा गृहस्थ आश्रित है. इति १६८ सूत्र हुवे,

(१६९) ,, साधु आप अन्धकारादि भयोत्पत्तिके स्थान जाके भय पामे.

(१७०) अन्य साधुवोंको भयोत्पत्तिके स्थान ले जाय के भयोंत्पन्न करावे.

(१७१) स्वयं कुतूहलादि कर विस्मय पामे

(१७२) अन्य साधुवोंको विस्मय उपजावे.

(१७३) स्वयं संयमधर्मसे विपरीत बने.

मझार। पोखली त्यां आवी करीजी, वन्दन करे नमस्कार ॥ भ० ॥ ९ ॥ चालो पौषध कीजीयेजी, भोजन विविध तैयार, आज मुझे कल्पे नहींजी, तुम छन्दे करो विचार ॥भ०॥१०॥ विस्मय पामी पोखलीजी, आया निज पौषधशाल। खाता पीतां पौषध करेजी, निज आतम उज्वाल ॥ भ० ॥ ११ ॥ प्रातः उठी गया वीरपेजी, सुनी उपदेश रसाल। संख हीले पोखलीजी, भापे दीनदयाल ॥ भ० ॥ १२ ॥ प्रिय द्रढ धर्मि संख छेजी, निंदतां लागे कर्म। भय पामे अति पोखलीजी, वीर बतायो मर्म ॥भ०॥१३॥ अपराध खमायो आपणोजी, वन्दन कर नमस्कार। संखजी प्रश्न पुछीयोजी, कीसो कषायको सार ॥ भ० ॥ १४ ॥ उत्तर आपे जगधणीजी, सुनजो सहु नरनार। कर्म बांधे चीकणांजी, रूले अनन्त संसार ॥भ० ॥ १५ ॥ विषय कषाय निवारजोजी, धरजो आतम ध्यान। स्वामिवत्सल भावसेजी, करलो सुन्दर ज्ञान ॥ भ० ॥ १६ ॥ संख श्रावक व्रत पालनेजी, जाशे स्वर्ग मझार। विदेहक्षेत्रमें सीझसेजी, करशे भवनो पार ॥ भ० ॥ १७ ॥ भगवती शतक चारमेजी, प्रथम उदेशे मझार। एकासणे पौषध करोजी, भाषे जगदाधार ॥ भ० ॥ १८ ॥ उगणीसे इठांतरेजी, माघ कृष्ण सोमवार, फलवृद्धि एकादशीजी, ज्ञान सदा जयकार ॥ भ० ॥ १९ ॥ इतिशम्.

नं० ७ तुंगीया नगरीके श्रावकोंकी सझाय (झला)

श्रावक तुंगीया तणा श्री वीरना रागी हो राज ॥ आ-

(१८१) रात्रिमें अशनादि च्यार आहार ग्रहन कर दिनका भोजन करे ३

(१८२) एवं रात्रिमें अशनादि च्यार आहार ग्रहन कर रात्रिमें भोजन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—रात्रिमें आहार ग्रहन करनेमें तथा रात्रिमें भोजन करनेमें सुक्ष्म जीवोंकी विराधना होती है. तथा प्रथम पोरसीमें लाया आहार, चरम पोरसीमें भोगवनेसे कल्पातिक्रम दोष लगता है.

(१८३) „ कोइ गाढागाढी कारण विगर अशनादि च्यार प्रकारका आहार, रात्रिमें वासी रखे, रखावे, रखतेको अच्छा समझे

(१८४) अति कारणसे अशनादि च्यार आहार, रात्रिमें वासी रखा हुवाको दुसरे दिन विन्दुमात्र स्वयं भोगवे, अन्य साधुको देवे. ३

भावार्थ-कबी गोचरीमें आहार अधिक आगया, तथा गोचरी लानेके बाद साधुवोंको बुखारादि बेमारीके कारणसे आहार बढ गया, वखत कमती हो, परठनेका स्थान दूर है, तथा घनघोर वर्षाद वर्ष रही है. ऐसे कारणसे वह बचा हुवा आहार रह भी जावे तो उसको दुसरे दिन नहीं भोगवना चाहिये, रात्रि समय रखनेका अवसर हो, तो राखसें मसल देना चाहिये. ताकि उसमें जीवोत्पत्ति न हो. अगर रात्रिवासी रहा हुवा अशनादि आहारको मुनि खानेकी इच्छा भी करे, उसे यह प्रायश्चित बतलाया है.

(१८५) „ कोइ अनार्यलोक मांस, मदिरादिका भोजन स्वयं अपने लीये तथा आये हुवे पाहुणे (महिमान) के लीये

शालामें आयो, एसा वचन उच्चारी । ध० ॥ २ ॥ धर्म छोडणो नहीं तुझ कल्पे, हुं रे छुडावण आयो, खंड खंड तुझ तनका करशुं, श्रावक नहीं गभरायो । ध० ॥ ३ ॥ अडग देख गज-रुप बनायो, सर्प रुप अरु कीनो । दान्ताशुल ओर डंक मा-रिया, उपसर्ग सुर वहु दीनो । ध० ॥ ४ ॥ ध्यान अखंड आत्मरमणता, देखी सुर सरमायो, देवरुप असली कर अपना, सब अपराध खमायो । ध० ॥ ५ ॥ चरम तीर्थकर चम्पा नगरी, समोसरण सुर ठायो । कामदेव पौषद पारीने, जिन चरणोंमे आयो ॥ ध० ॥ ६ ॥ कामदेवकी करी प्रशंसा, मुनि-गण वीर बुलावे । उपसर्ग सह्या श्रावक मेरा, एक भव करी शिव जावे । ध० ॥ ७ ॥ तुमे तो द्वादश अंगके पाठी, अधिक रखो मजबुती । कर्मशत्रुका नाश करीने, जलदिवरों वरमुक्ति । ध० ॥ ८ ॥ उगणीसे इठान्तर माघकी, शुक्र तीज भोमवारो, आतम ज्ञान सदा सुखकारी, फलोधी नगर मझारो । ध० ॥ ९ ॥ इतिशम् ।

नं ९ आनंद श्रावककी सझाय ।

हाथ जोडी आनन्द कहे, नीचो शिष नमाय हो । स्वामी मारी उठणरी शक्तिकों नहीं, आगाचरण कराय हो । स्वामी हुं अर्ज करुं थांसे विनति । टेर । ॥ १ ॥ गौतम चरण आगा कीया, वांद्या गणे हुलास हो । स्वामी मारो धन्य दहाडो धन्य घडी, सफल हुई मुझ काय हो । स्वा० ॥ २ ॥ आनन्द प्रश्न पुछीयो, गौतम बोले एम हो, आनन्द प्रायश्चित लो

(१९२) , वस्त्र सहित साधु, वस्त्र सहित साध्वीयोंकी अन्दर निवास करे. ३

(१९३) एवं वस्त्र सहित, वस्त्र रहित

(१९४) वस्त्र रहित, वस्त्र सहित.

(१९५) वस्त्र रहित, वस्त्र रहितकी अन्दर निवास करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—साधु, साध्वीयोंको किसी प्रकारसे सामेल रहना नहीं कल्पै कारण-अधिक परिचय होनेसे अनेक तरहका नुकशान है. और स्थानांगसूत्रकी चतुर्भंगीके अभिप्राय-अगर कोइ विशेष कारण हो-जैसे किसी अनार्य ग्रामकी अन्दर अनार्य आदमीयोंकी बदमासी हो, ऐसे समय साध्वीयों एकतर्फसे आइ हो, दुसरी तर्फसे साधु आये हो, तो उस साध्वीके ब्रह्मचर्य रक्षण निमित्त, धर्मपुत्रके माफिक रह भी सकते है. तथा वस्त्रादि चौर हरण कीया हो एसा विशेष कारणसे रह भी सक्ते हैं.

(१९६) ,, रात्रिमें वासी रखके पीपीलिका उसका चूर्ण, सुठी चूर्ण, बलवालुणादि पदार्थ भोगवे ३ तथा प्रथम पोरसीमें लाया चरम पोरसीमें भोगवे. ३

(१९७) ,, जो कोइ साधु साध्वी-बालमरण-जैसे पर्वतसे पडके मरजाना, मरुस्थलकी रेतीमें खुचके मरना, खाड-खाइमें पडके मरना इस च्यारोंमें फस कर मरना, कीचडमें फस कर मरना, पाणीमें डूबके मरना, पाणीमें प्रवेश करना, कूपादिमें कूदके मरना, अग्निमें प्रवेश कर तथा कूद कर अग्निमे पडके मरना, विषभक्षण कर मरना, शस्त्रसे घात कर मरना, पांच इन्द्रियोंके वश हो मरना, मनुष्य मरके मनुष्य होना.

नंत काल तें प्राणी, सो हम काल हरेंगे ॥ अव० ॥ २ ॥ देह विनाशी मैं अविनाशी, अपनिगति पकरेंगे। नासी जासी हम थिरवासी, चाखे व्है निखरेंगे ॥ अव० ॥ ३ ॥ मर्यो अनंतवार विन समज्यों, अब सुख दुःख विसरेंगे। आनंदघन निपट निकट अक्षर दो, नहीं समरे सो मरेंगे ॥ अव० ॥ ४ ॥ इति ।

नं० ११ निद्रासे जागृत होना ।

अवधू खोली नयन अब जोवो, द्रिग मुद्रीत काहा सोवो । अव० । मोह निंद्रा सोवत तुं खोया, सर्वस्व माल अपना, पंचचोर अजहुं तोय लूंटत, तास मर्म नहीं जाना ॥ अव० ॥ १ ॥ मीली च्यार चंडाल चोकडी, मंत्री नाम धराया । पाइ केफ प्याला तोहे, सकल मुलक ठगखाया ॥ अव० ॥ २ ॥ शत्रुराय महाबल जोद्धा, निजनिज सैन्य सजाये । गुणठाणेमें बन्ध मोरचे, घेरिया तुम पुर आये ॥ अव० ॥ ३ ॥ परमादी तुं होय पियारे, परवशता दुःख पावे । गया राजपुर सारथ सेंती, फीर पाछा घर आवे ॥ अव० ॥ ४ ॥ सांभली वचन विवेक मित्तका, छिनमे निज दल जोड्या । चिदानंद एसी रमत रमतां, ब्रह्म वंक गढ तोड्या ॥ अव० ॥ ५ ॥ इति ॥

नं० १२ आपस्वभावनि सझाय ।

आप स्वभावमां रे अवधू सदा मगनमें रहेना । टेर । जगत जीवहे करमाधिना, अचरिज कच्छुअ न लिना ॥ आप० ॥ १ ॥ तुं नहीं केरा कोइ नहीं तेरा, क्या करे मेरा मेरा,

जंगलसे आजावे, तो यह रसी (दोरी) यहां रखता हु तुम उस पशुवोंको बांध देना, तथा यह बंधे हुवे गौ, भैसादि पशुवोंको छोड देना. उस समय मुनि, मकानमें रहनेके कारण ऐसी दीनता लावे कि-अगर इसका कार्यमें नहीं करुंगा, तो मुजे मकानमें ठेरनेको न देंगा, तथा मकानसे निकाल देंगा, तो मैं कहां ठेरुगा ? ऐसी दीनवृत्तिको धारण कर, मुनि, उस गृहस्थका वचन स्वीकार कर, उक्त रसीयोंसे त्रस-प्राणी जीवोंको बांधे तथा छोडे तो प्रायश्चित्तका भागी होता है. तात्पर्य यह है कि—मुनियोंको सदैव निःस्पृहता-निर्भयता रखना चाहिये. मकान न मिले तो जगलमें वृक्ष नीचे भी ठेर जाना, परन्तु ऐसा पराधीन हो, गृहस्थोंका कार्य न करना चाहिये.*

---

* इस पाठका तेराहपन्थी लोग बिलकुल मिथ्या अर्थ कर जीवदयाकी जड पर कुठार चलाते हैं. वह लोग कहते है कि —'कालूग' अनुकम्पा लाके मुनि जीवोंको बांधे नहीं, और छोडे नहीं, तथा गृहस्थ लोग मरते हुवे जीवोंको छोडावे, उसको अच्छा समझनेमें मुनिको पाप लगता हैं, तो छोडानेवाले गृहस्थोंको पुन्य कहांसे ? वहांतक पहुच गये हैं कि—हजारों गौसे भरा हुवा मकानमें अग्नि लग जावे तथा कोइ महात्माओंको दुष्ट जन फांसी लगावे, उसे बचानेमें भी महापाप लगता है ऐसा तेराहपन्थीयोंका कहना है

बुद्धिमान् विचार कर सक्ते है कि—भगवान् नेमिनाथ तीर्थंकर, अपने विवाह समय हजारों पशु, पक्षीयोंकी अनुकम्पा कर, उन्होंको जीवितदान दीया था परमात्मा पार्श्वप्रभुने अग्निसे जलता हुवा नागको बचाया भगवान् शान्तिनाथने पूर्वभवमें परेवाका प्राण बचाया भगवान् वीरप्रभुए गोशालाको बचाया और तीर्थंकरोंने खुद अपने मुखारविंदसे अनुकम्पाको सम्यक्त्वका चौथा लक्षण बतलाया है तो फिर पन्थी लोग किस आधारसे कहते है कि—अनुकम्पा नहीं करना अगर वह लोग मिथ्यात्वके प्रबल उदयसे कह भी देवे, तो आर्य मनुष्य उसे कैसे मान सकेगा ? विशेष खुलासा अनुकम्पाछत्तीसीसे देखो

बाह्य क्रिया सब त्याग परिग्रह, द्रव्यलिंग धर तीनो। देवचन्द्र कहे आविधतो हम बहुतवार कर लीनो ॥ सम० ॥ ५ ॥ इति.

न० १४ लघुताकी सज्झाय.

लघुता मेरे मन मानी, लेइ गुरुगम ज्ञान निशानी ॥ लघु० ॥ टेर ॥ मद अष्ट जिनोने धारे, ते दुर्गति गये बि- चारे। देखो जगतमें प्रानी, दुःख लहत अधिक अभिमानी ॥ लघु० ॥ १ ॥ शशी सूरज बडे कहावे, ते राहुके वश आवे। तारागण लघुता धारी, स्वर भानु भीति निवारी ॥ लघु० ॥ २ ॥ छोटी अति जोयण गन्धी, लहे खटरस स्वाद सुगन्धी। करटी मोटाइ धारे, ते छार शीश निज डारे ॥ लघु० ॥ ३ ॥ जब बालचन्द्र होय आवे, तब सहु जग देखण जावे। पूनम दिन बडा कहावे, तब चीण कला होय जावे ॥ लघु० ॥ ४ ॥ गुरुवाइ मनमें वेदे, उपश्रवण नासिका छेदे। अंग मांहे लघु कहावे, ते कारण चरण पूजावे ॥ लघु० ॥ ५ ॥ शिशु राज धाममें जावे, सखी हिलमिल गोद खेलावे। होय बडा जाण नहीं पावे, जावे तो शिश कटावे ॥ लघु० ॥ ६ ॥ अंतरमद भाव वहावे, तब त्रिभुवन नाथ कहावे। इम चिदानंद ए गावे, रहणी विरला कोउ पावे ॥ लघु० ॥ ७ ॥ इति.

नं० १५ कथणी.

कथणी कथे सहु कोइ, रहेणी अति दुर्लभ होइ ॥ टेर ॥ शुकरामको नाम वखाणे, नवि परमारथ तस जाणे। या विध

(१६) ,, गृहस्थोंके पलंग, पथरणे आदिपर सुवे—शयन करे ३

(१७) ,, गृहस्थोंको औषधि बतावे, गृहस्थोंके लीये औषधि करे.

(१८) ,, साधु भिक्षाको आनेके पेस्तर साधु निमित्त हाथ, चाटुडी, कडछी, भाजन कच्चे पाणीसे धोकर साधुको अशनादि च्यार आहार देवे. ऐसे साधु ग्रहन करे.

(१९) ,, अन्यतीर्थी तथा गृहस्थ, भिक्षा देते समय हाथ, चाटुडी, भाजनादि कच्चे पाणीसे धो देवे और साधु उसे ग्रहन करे. ३

भावार्थ—जीवोंकी विराधना होती है.

(२०) ,, काष्ठके बनाये हुवे पुतलीयें, अश्व, गजादि. एवं वस्त्रके बनाये. चीढेके बनाये. लेप, लीप्टादिसे दांतके बनाये खीलुने, मणि, चन्द्रकांतादिसे बनाये हुवे भूषणादि, पत्थरके बनाये मकानादि, ग्रथित पुष्पमालादि, वेष्टित—बीटसे बीट मिलाके पुष्पदडादि. सुवर्णादि धातु भरतसे बनाये पदार्थ, बहुत पदार्थ एकत्र कर चित्र विचित्र पदार्थ, पत्र छेदन कर अनेक मोदक (मादक) पदार्थ, जिसको देखनेसे मोहनीय कर्मकी उदीरणा हो ऐसा पदार्थ देखनेकी अभिलाषा करे, करावे. करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—ऐसे पदार्थको देखनेकी अभिलाषा करनेसे स्वाध्याय ध्यानमे व्याघात, प्रमादकी वृद्धि, मोहनीय कर्मकी उदीरणा, यावत् संयमसे पतित होता है.

(२१) ,, काकडीयों उत्पन्न होनेके स्थान, 'काच्छा' बेले आदि फलोत्पत्तिके स्थान, उत्पलादि कमलस्थान, पर्वतका

न. १७ क्रोधकी शान्ति।

क्रोध मत करीये तुम सेणारे, क्रोध मत करीये तुम सेणा। धारधार संतोष जरा रस समताका लेणा ॥ टेर ॥ क्रोध प्रीतकों तोडे छीनमें, वैर करे जगसे। तप संयमकों दव लगावे, ताप होय तनसे। क्रोध० ॥ १ ॥ कल्पवृक्ष सम मुनिपद धारी, क्रोध बहुत कीनो। तीर्यंच गति नाग योनिमें, जाय जनम लीनो। क्रोध० ॥२॥ चालीस क्रोडाकोड उदयमें, स्थितिबन्ध थावे। उदय रस विपाक विपाके, चैतन्य दुःख पावे। क्रोध० ॥ ३ ॥ गजसुखमाल मेतारज मुनिवर, खंधक ऋषि जाणो। एवन्ती सुकुमाल खमा करी, प्रदेशी राणो। क्रोध० ॥ ४ ॥ निज रिपुके सनमुख होके, खमा खडग लीजे, ज्ञान सुधासम रसके प्याले, भर भरके पीजे। क्रोध० ॥ ५ ॥ इति।

नं० १ गहुंली श्री चिदानन्दजी कृत।

चंद्रवदनी मृगलोचनी, ए तो सजी शोला शणगाररे। एतो आवी जगगुरु वन्दवा, धरी हियडे हरख अपाररे ॥चं०॥ १ ॥ हांरे एतो मुक्ताफल मुठी भरी, रचे गहुंली परम उद्धाररे। जिहां वाणी जोजन गामिनी, धन वरसे अखंडित धाररे ॥ चं० ॥ २ ॥ हांरे जिहां रजत कनक रतनना, सुर रचित त्रय प्रकाररे। तस मध्य मणि सिंहासने, शोभित जगदाधाररे ॥ चं० ॥ ३ ॥ हांरे जिहां नरपति खगपति लक्षपति, सुरपति युत परखदा बाररे। लब्धि निधान गुण आगररे,

(३३) चौर, वील, पारधीयोंका उपद्रवस्थान, वैर, ग्वार, क्रोधादिसे हुवा उपद्रव युद्ध, महासंग्राम, क्लेशादिके स्थानोंको.

(३४) नाना प्रकारके महोत्सवकी अन्दर बहुतसी स्त्रीयों. पुरुषों, युवक, वृद्ध, मध्यम वयवाले, अनेक प्रकारके वस्त्र, भूषण. चंदनादिसे शरीर अलंकृत बनाके केइ नृत्य, केइ गान, केइ हास्य, विनोद, रमत, खेल, तमासा करते हुवे, विविध प्रकारका अशनादि भोगवते हुवेको देखने जानेका मनसे अभिलाष करे, करावे. करतेको अच्छा समझे.

(३५) ,, इस लोक संबंधी रुप (मनुष्य-स्त्रीका), परलोक संबंधी रुप, (देव-देवी, पशु आदि) देखे हुवे, न देखे हुवे, सुने हुवे, न सुने हुवे, ऐसे रुपोंकी अन्दर रंजित, मूर्च्छित, गृद्ध हो देखनेकी मनसे भी अभिलाषा करे. ३

भावार्थ—उपर लिखे सब किसमके रुप, मोहनीय कर्मकी उदीरणा करानेवाले है जैसे एक दफे देखनेसे हरसमय यह ही हृदयमें निवास कर ज्ञान, ध्यानमें विघ्न करनेवाले बन जाते हैं. वास्ते मुनियोंको किसी प्रकारका पदार्थ देखनेकी अभिलाषा तक भी नहीं करना चाहिये.

(३६) ,, प्रथम पोरसीमें अशनादि च्यार प्रकारका आहार लाके उसे चरम पोरसी तक रखे ३

(३७) ,, जिस ग्राम, नगरमें आहार ग्रहन कीया है, उसको दो कोशसे अधिक ले जावे. ३

(३८) ,, किसी शरीरके कारणसे गोबर लाना पडता हो, पहले दिन लाके दुसरे दिन शरीरपर बांधे.

(३९) दिनको लाके रात्रिमें बांधे.

लाय, राजग्रही समोसरयाए ॥ १ ॥ श्रेणकनृप थइ तैयार, सैना च्यार प्रकार, सुनजो चित्तलाय । चेलना चाली चुपसेए ॥ २ ॥ देई प्रदित्तणासार, वन्दे वारंवार, सुनजो चित्तलाय, योगस्थान बेठी परिषदाए ॥ ३ ॥ गौतम दे उपदेश, जीवा-जीव विशेष, सुनजो चित्तलाय, षट्द्रव्य भिन्न भिन्नसांभलोए ॥ ४ ॥ धर्माधर्म आकाश, जीवपुद्गल त्रिकाश, सुनजो चित्त लाय, कालद्रव्य छट्ठो कह्योए ॥ ५ ॥ चलन थिर अवगहान, उपयोग पुरणजाण, सुनजोचित्तलाय, वरतनगुण कह्यो काल-नोए ॥ ६ ॥ पंच अरूपी अजीव, एकरूपी एक जीव, सुनजो चित्तलाय, स्व स्वगुण क्रिया करेए ॥ ७ ॥ अगुरु लघु पर्याय, साधारण कहेवाय, सुनजो चित्तलाय, हानि वृद्धि षट्गुण हु-वेए ॥ ८ ॥ गहुंली अध्यातम ज्ञान, गावे चतुर सुजान, सु-नजो चित्तलाय, अत्तय ज्ञान आनन्द करोए ॥ ९ ॥ इति ॥

नं० ४ वीरप्रभु आगे जयन्तीबाइकी गहुंली ।

दरसन करसोजी दरशन करसोजी म्हारे पुन्यजोगसे प्रभुजी पधारयाजी दरशन० ॥ टेर ॥ ग्रामनगरपुर पाटण विचरत । प्रभुजी आज पधारयारे, सोना केरो सूरज ऊगो, कारज सारयारे ॥ दर० ॥ १ ॥ नगरी कौसंबी खुब शृंगारे, सैना च्यार प्रकारेरे । राय उदाइ वन्दन जावे, बहुपरिवारेरे ॥ दर० ॥ २ ॥ कहे जयन्ति सुनो भोजाइ, चालो वन्दन जा-वोरे । स्नान मज्जन वस्त्र भूषण, धर भाव उमावोरे ॥ दर० ॥ ३ ॥ एक रथपर नणंद भोजाइ, बेसी वन्दन जावेरे । मध्य

उपर लेखे ४८ बोलोंसे एक भी बोल सेवन करनेवाले साधु, साध्वीयोंको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्रके बारहवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

---

(१३) श्री निशिथसूत्र–तेरहवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' अन्तरा रहित सचित्त पृथ्वीकायपर बैठ–सुवे खडा रहै, स्वाध्याय ध्यान करे ३

(२) सचित्त पृथ्वीकी रज उडी हुइ पर बैठ, यावत् स्वाध्याय करे. ३

(३) एवं सचित्त पाणीसे स्निग्ध पृथ्वीपर बैठ, यावत् स्वाध्याय करे. ३

(४) एवं सचित्त–तत्काल खानसे निकली हुइ शिला, तथा शिलाका तोडे हुवे छोटे छोटे पत्थरपर बैठे, तथा कीचडसे, कचरासे जीवादिकी उत्पत्ति हुइ हो, काष्ठके पाट–पाटलादिमें जीवोत्पत्ति हुइ हो, इंडा, प्राणी (बेइंद्रियादि) बीज, हरिकाय, ओसका, पाणी, मकडीजाला, निलण–फूलण, पाणी, कची मट्टी, मांकड, जीवोंका झाला संयुक्त हो, उसपर बैठे, उठे, सुवे, यावत् स्वाध्याय करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(५) ,, घरकी देहलीपर, घरके उंबरे (दरवाजाका मध्य भाग) उखलपर, स्नान करनेके पाटेपर, बैठे, सुवे, शय्या करे, यावत् वहां बैठके स्वाध्याय–ध्यान करे ३

(६) एवं ताटी, भींत, शिला, छोटे छोटे पत्थरे विगेरेसे आच्छादित भूमिपर शयन करे, यावत् स्वाध्याय ध्यान करे ३

उद्यान । चौदा पूर्व श्रुत केवली, कांई चोथो हो मनःपर्यव ज्ञान । सूत्र० ॥ १ ॥ मुनि मत्तंगज शोभता, कांई पांचसो हो जेहनो परिवार । उत्तम जाति कुलतणा, कांइ पाले हो सुन्दर आचार । सूत्र० ॥ २ ॥ छठ अठम तपस्या करे, कांइ मास हो करे दोय मास । क्षम शम दम शस्त्र करी, कांइ करे हो करमोंको नाश । सूत्र० ॥ ३ ॥ सूत्र अर्थकी वाचना, लेवे देवे हो मुक्तिके काज । भक्ति विनय वैयावच करे । कांइ चढीया हो शिवपुरकी पाज । सूत्र० ॥ ४ ॥ कनक कमल पर बेठके, पंचम गणधर हो देवे उपदेश, ज्ञान सुधारस देशना, कांइ श्रोता हो पीवे हमेश । सूत्र० ॥ ५ ॥ इति ।

नं० ७ गहुंली (बलीहारी हो सत्गुरुजी आपरे ज्ञानकीजी.)

व्याख्यान सुनो शुद्ध भावसेजी । संसार तीरो सूत्र नावसेजी ॥ व्याख्या० ॥ टेर ॥ वाणी अर्थरूपी जिनवर कहीजी, गुंथी गणधर सूत्ररूपी सहीजी (छूट) उपर निर्युक्तिका सार, टीका कीनी टीकाकार, भाष्य चुरणी विस्तार (मीलत) श्रोता सुनके आनन्द लावसेंजी ॥ व्या० १ ॥ वाणी नय निक्षेप प्रमाणसेजी जाणो स्याद्वाद गुण खाणसेजी (छूट) समझो उत्सर्ग ओर अपवाद, ज्यामें गुणपर्यायको स्वाद, ज्ञानी कर रह्या सिंहनाद. (मीलत) सुरनरवर सुणे उत्सावसेजी ॥ व्या० २ ॥ गुरु ज्ञान सुधारस देशनाजी, मीटे राग द्वेष कलेशनाजी (छूटे) वाणी सुनतों कुमति जावे, सुमति सुन्दर निज घर आवे, चैतन्य भवोभवमें सुख पावे, (मीलत) कर्मशत्रु जीतों इण

(१३) कौतुक कर्म (दोरा राखडी).

(१४) भूतिकर्म, रक्षादिकी पोटली कर देना.

(१५) ,, प्रश्न, हानि-लाभका प्रश्न पूछे.

(१६) अन्यतीर्थी गृहस्थ पूछनेपर ऐसे प्रश्नोंका उत्तर, अर्थात् हानि लाभ वतावे.

(१७) एव प्रश्न, विद्या, मंत्र, भूत, प्रेतादि निकालनेका प्रश्न पूछे.

(१८) उक्त प्रश्न पूछनेपर आप वतलावे तथा शीखावे.

(१९) भूतकाल सबन्धी.

(२०) भविष्यकाल सबन्धी.

(२१) वर्त्तमानकाल सबन्धी निमित्त भाषण करे. ३

(२२) लक्षण—हस्तरेखा, पगरेखा, तिल, मसा, लक्षण आदिका शुभाशुभ वतावे.

(२३) स्वप्नके फल प्ररुपे.

(२४) अष्टापद—एक जातकी रमत, जैसे शेत्रजी आदिका खेलना शीखावे.

(२५) रोहणी देवीको साधन करनेकी विद्या शिखावे.

(२६) हरिणगमैषी देवको साधन करनेका मंत्र शिखावे.

(२७) अनेक प्रकारकी रससिद्धि, जडीबुट्टी, रसायन वतावे.

(२८) लेपजाति—जिससे वशीकरण होता हो.

(२९) दिग्मूढ हुवा अन्यतीर्थी, गृहस्थोंको रहस्ता वतलावे, अर्थात् क्लेशादि कर कितनेक आदमी आगे चले गये हो, और

अथश्री

उपकेश (कमला) गच्छ लघुपट्टावली ।

कविताकर्ता.

श्रीमदुपकेश (कमला) गच्छाचार्य परमपूज्य भट्टारक
श्री श्री सिद्धसूरिजी महाराज.

(१)

छन्द छप्पय.

प्रथम पट्ट अधिरूढ पार्श्वजिन ज्ञान प्रकाशक ।
सयम श्रुत संपन्न अखिल अज्ञान विनाशक ॥
अहि बालक प्रतिपाल कमट कुत सित मुनि त्रासक ।
सरणागत भयहरण भय भवि जन भय नाशक ।
वसुवेद संख्य जिण पट्ट अवराजत शुभ जिन धर्मधर ।
सचियाय चरण सेवन निरत सिद्ध सूरि श्रीपूज्यवर ॥ १ ॥
द्वितिय पट्ट शुभदत्त तृतिय हरदत्त सुजानहु ।
चतुर्थ आर्य समुद्र सकल गुन सागर मानहु ॥
पंचम केशीकुमार भूप परदेशीय बुद्धे ।
षष्ट स्वयंप्रभसूरि यत्त के तन मन शुद्धे । वसुदेव ॥ २ ॥

(३७) तैलमें देखे

(३८) ढीलागुलमें देखे

(३९) चरवीमें देखे.

भावार्थ—उक्त पदार्थोंमें मुनि अपना शरीर मुह) को देखे, 'देखावे, देखतोंको अच्छा समझे. देखनेसे शुश्रूषा वढती है. सुन्दरता देख हर्ष, मलिनता देख शोकसे रागद्वेष उत्पन्न होते है. मुनि इस शरीरको नाशवन्त ही समझे. इसकी सहायतासे मोक्षमार्ग साधनेका ही ध्यान रखे.

(४०) ,, शरीरका आरोग्यताके लीये वमन (उलटी) करे. ३

(४१ , एव विरेचन (जुलाव) लेवे. ३

(४२) वमन, विरेचन दोनों करे. ३

(४३) आरोग्य शरीर होनेपर भी दवाइयों ले कर शरीरका वल-वीर्यकी वृद्धि करे. ३

भावार्थ—शरीर है, सो संयमका साधन है उसका निर्वाहके लीये तथा वेमार्गी आनेपर विशेष कारण हो तो उक्त कार्य कर सके. परन्तु आरोग्य शरीर होनेपर भी प्रमादकी वृद्धि कर अपने ज्ञान—ध्यानमें व्याघात करे, करावे, करतेको अच्छा समझे, वह मुनि प्रायश्चित्तका भागी होता है.

(४४) ,, पासत्था साधु, साध्वीयों (शिथिलाचारी) संयमको एक पास रखके केवल रजोहरण, मुखवस्त्रिका धारण कर रखी हो, ऐसे साधुवोंको वन्दन-नमस्कार करे. ३

(४५) एवं पासत्थावोंकी प्रशंसा-तारीफ श्लाघा करे ३

(४६) एवं उसन्न-मूलगुण पंचमहाव्रत, उत्तरगुण पिंडविशुद्धि आदिके दोषित साधुवोंको वन्दन करे. ३

चन्द नन्द पट्ट कक्कसूरि गुन ग्यान प्रविनहु ।
देवगुप्तसूरि सु विशय वर्तति छिन्नहु ।
सिद्धसूरि पट्ट एकवीस सिद्ध संपत्त पूरिय ।
नेत्र नेत्र पट्ट पूज्य विज्ञ रत्नप्रभसूरिय ॥ वसु० ॥८॥
यक्षदेवसूरि सुनयन गुन पट्ट भनीजै ।
अग्निवेद पट्ट कक्कसूरि गुनवन्त गनीजै ।
लोचनसर पट्ट देवगुप्तसूरि सुखदायक ।
सिद्धसूरि पट्विंश पट्टमुनि जन गन नायक ॥ वसु० ॥६॥
श्रीरत्नप्रभसूरि नवत्रीति सतावीस पट्ट पूजित जानिये ।
यक्षदेवसूरिसु अष्टविंशति पट्ट मानिये ।
उनत्रिस पट्ट कक्कसूरि गुन गन गंभीरहु ।
देवगुप्तसूरिसु पट्ट गुननभ अति धीरहु ॥ वसु० ॥१०॥
शिव लोचन शशिपट्ट सिद्धसूरि सुखकारिय ।
श्रीरत्नप्रभसूरि सकल भविजन भवहारिय ।
द्वात्रिंशत पट्ट पूज्य प्रखर पंडित अवधारिय ।
यक्षदेवसूरि सुदेवादि गुन पट्ट विचारिय ॥ वसु० ॥११॥
कक्कसूरि चउतीस पट्टमें अति तप धारिय ।
जिन बंधन पुन विपत्त सेठ सोमाकी टारिय ।
देवी दर्शन प्रत्यक्ष छंड भंडारसु डारिय ।
नाम उपकेशवंश अपर गण साख निकारिय वसु० ॥१२॥
देवगुप्तसूरि सुपट्ट गुन सर वर जानिय ।

(६३) ,, दूतीकर्म आहार—उधर इधरका समाचार कहे के आहार ग्रहन करे. ३

(६४) ,, निमित्त आहार—ज्योतिष प्रकाश करके आहार. ३

(६५) ,, अपने जाति, कुलका अभिमान करके आहार. ३

(६६) ,, रक भिखारीकी माफिक दीनता करके ,, ३

(६७) ,, वैद्यक-औषधिप्रमुख बतलायके आहार लेवे. ३

(६८-७१) ,, क्रोध, मान, माया, लोभ करके आहार लेवे. ३

(७२) ,, पहला पीछे दातारका गुण कीर्त्तन कर आहार लेवे ३

(७३) ,, विद्यादेवी साधन करनेकी विद्या बताके ,, ३

(७४) ,, मंत्रदेव साधन करनेका प्रयोग बताके ,, ३

(७५) ,, चूर्ण—अनेक औषधि सामेल कर रसायण बताके ,, ३

(७६) ,, योग—वशीकरणादि प्रयोग बतलायके ,, ३

भावार्थ—उक्त १५ प्रकारके कार्य कर, गृहस्थोंकी खुशामत कर आहार लेना निःस्पृही मुनिको नहीं कल्पे.

उपर लिखे, ७६ बोलोंसे एक भी बोल सेवन करनेवालोंको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो बीसवां उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र—तेरहवां उद्देशाका संक्षिप्त सार.

—⁂—

तातें कोटि न कोट द्रव्य ताकों गुरु दिन्नो ।
सर शशि पट्टारूढ सिद्धसूरि सवपुव चिन्नो । वसु० ॥१८॥
कक्कसूरि बावन पट्ट पूजित जब धारैं ।
नृप वचने हेमाचार्य शिष्य निर्दयी निवारैं ॥
देवगुप्तसूरि सुपट्ट तेपन विराजै ।
लच्छन धन निज त्याग साधु साधन सब सजैं । वसु ॥१६॥
बाण वेद पट्ट सिद्धसूरि पूरण गुन पूजहु ।
चाण बाण पट्ट कक्कसूरि कारत कि कुंजहु ॥
जिन किय कोट मरोट प्रगट अत्यन्त सुशोभत ।
देवगुप्तसूरि सुपात्रि रस पट्ट अलोभत । वसु० ॥ २० ॥
सायक मुनि पट्ट सिद्धसूरि शरनागत त्राता ।
कक्कसूरि सर सिध्दि पट्ट गुन ग्यान विधाता ॥
देवगुप्तसूरि पट्ट इषु निधि गुन सिद्धाता ।
रस नभ पट्टारूढ सिद्धसूरि जगत विख्याता । वसु० ॥ २१ ॥
ऋतु विधु पट्टारूढ कक्कसूरि जिन मंडन ।
देवगुप्तसूरि सुपट्ट रस भूभ्र अज्ञानहु खंडन ॥
राग राम पट्ट सिध्दसूरि पुरण गुनवन्तहु ।
शास्त्रवेद पट्ट कक्कसूरि जपतप जसवन्तहु । वसु० ॥ २२ ॥
देवगुप्तसूरि सु पट्ट रस शर शुभ धारेउ ।
तीर्थाटन कर देशलादि भक्तनकों तारेउ ॥
दर्शन दर्शन पट्ट सिद्धसूरि जब लीनो ।

(७) कथंचित् हाथ, पग, कान, नाक, होठ छेदाया हुवा है, किसी प्रकारकी अति बेमारी हो, उसको परिमाणसे अधिक पात्र नहीं देवे, नहीं दिलावे, नहीं देते हुवेको अच्छा समझे.

भावार्थ—आरोग्य अवस्थामें अधिक पात्र देनेसे लोलूपता वढे, उपाधि वढे. 'उपाधिकी पोट समाधिसे न्यारी,' अगर रोगादि कारण हो, तो उसे अधिक पात्र देनाही चाहिये. बेमार रोगवालाको महायता देना, मुनियोंका अवश्य कर्त्तव्य है.

(८) ,, अयोग्य, अस्थिर, रखने योग्य न हो, स्वल्प समय चलने कावील न हो, जिसे यतना पूर्वक गौचरी नहीं लासके, ऐसा पात्रको धारण करे. ३

(९) अच्छा मजबूत हो, स्थिर हो. गौचरी लाने योग्य हो, मुनिको धारण करने योग्य हो, ऐसा पात्रको धारण न करे. ३

भावार्थ—अयोग्य, अस्थिर पात्र सुन्दर है तथा मजवूत पात्र देखनेमे अच्छा नहीं दीसता है. परन्तु मुनियोंको अच्छा खराबका ख्याल नहीं रखना चाहिये.

(१०) ,, अच्छा वर्णवाला सुन्दर पात्र मिलने पर वैराग्यका ढोंग देखानेके लीये उसे विवर्ण करे. ३

(११) विवर्णपात्र मिलनेपर मोहनीय प्रकृतिको खुश करनेको सुवर्णवाला करे. ३

भावार्थ—जैसा मिले, वैसेसे ही गुजरान कर लेना चाहिये.

(१२) ,, नवा पात्रा ग्रहन करके तैल, घृत, मक्खन, चरवी कर मसले लेप करे. ३

(१३) ,, नवा पात्रा ग्रहन कर उसके लोद्रव द्रव्य, कोकण

वसुवेद संख्य जिण पट्ट अवराजत शुभ जिन धर्मधर ।
सचियाय सेवन निरत सिद्धसूरि श्रीपूज्यवर ॥ वसु० ॥२८॥

दोहा-सोरठा ।

सिद्धसूरि श्रीपूज्यवर । कमलागच्छाधिश ॥
विरची यह पट्टावली । जासु वचन धर शिस ॥ १ ॥
जो नर या पट्टावली पढहि सुनहि चित्त धार ॥
सो पावत संसारमें । शीघ्र पदारथ च्यार ॥ २ ॥
गीनियत वहुत ग्रन्थनमहिं । वक्रगति तै अङ्क ।
या मै तो ऋजु रीत तै । गुनि गन गनो निशङ्क ॥ ३ ॥
चैत्र शुक्ल तृतिया सुदिन । चन्द नन्द रस व्योम ॥
लिखी यह पट्टावली । वत्सर वासर भोम ॥ ४ ॥

(२) श्रीओसवंश स्थापक श्रीरत्नप्रभसूरिजी महाराजकी स्तुति ।

कमले गच्छनायक श्रीरत्नप्रभसूरि पूजसो । कमले ॥टेर॥
रत्नचुड विद्याधर नायक, जा रहे वेठ वैमान । पार्श्वनाथके पाट पंचमे, स्वयंप्रभसूरि करे व्याख्यान हो कमले ॥ १ ॥
अटक गयो वैमान नभमें । सुनवा आये वाणी ॥ चार महाव्रत दीक्षा लीनी । अनन्त सुखोंकी खाणी हो कमले ॥ २ ॥
वीर निर्वाण वर्ष बावनसे । आचारज पद पाया ॥ तेथी वर्ष

(३७) कुट्टीपर, भींतपर, शिलापर, खुले अवकाशमें पात्रोंको आताप लगानेको रखे ३

(३८) आदि भींतके मदपर, छत्रीके शिखरपर, मांचापर, मालापर, प्रासादपर, हवेलीपर और भी किसी प्रकारकी उंची जगाहपर, विषमस्थानपर, मुश्कीलसे रखा जावे, मुश्कीलसे उठाया जावे, लेने रखते पडजानेका सभव हो, ऐसे स्थानोंमें पात्रोंको आताप लगानेको रखे. ३

भावार्थ—पात्रा रखते उतारते आप स्वयं पीसलके पडे, तो आत्मघात, संयमघात तथा पात्रा तूटे फूटे तो आरंभ बढे, उसको अच्छे करनेमें वखत खरच करना पडे इत्यादि दोषका सभव है.

(३९) „ गृहस्थके वह पात्रामें पृथ्वीकाय (लूणादि) भरा हुवा है उसको निकालके मुनिको पात्र देवे, उस पात्रको मुनि ग्रहन करे. ३

(४०) एवं अप्काय.

(४१) एवं तेउकाय. (राख उपर अंगार रख ताप करते है)

(४२) वनस्पति.

(४३) एवं कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल, बीज निकाल पात्रा देवे, उस पात्रको मुनि ग्रहन करे. ३ जीव विराधना होती है.

(४४) „ पात्रामें औषधि (गहुं, जव, जवारादि) पडी हो, उसे निकालके पात्र देवे, वह पात्र मुनि ग्रहन करे. ३

(४५) एवं त्रस पाणी जीव निकाले ३

(४६) , पात्रको अनेक प्रकारकी साधुके निमित्त कोरणी कर देवे, उसे मुनि ग्रहन करे. ३

(४७) „ मुनिके गृहस्थावासके न्यातीले अन्यातीले, श्रावक

(३) परमपूज्य कक्कसूरिजी महाराज गुणअष्टकम्।

जे आराध्या तुम एक चित्ते। निश्चय हुवा ते सव संघफत्ते॥
हिव म्हारी प्रभु आश पुरे। सुण विनति सदा गुरु कक्कसूरे॥१॥
कदाची बांध्या मइ कर्म कोइ। उपार्ज्यों आगल अन्तराइ।
तीणे करिये प्रभु पाप दुरे। सुण विनति सदा गुरु कक्कसूरे॥२॥
नर नारी निश्चय आपने वखाणु। प्रभु तेहना पुन्यनो पार न जाणुं।
नित्य नमे उगमतेय सूरे। सुण विनती सदा गुरु कक्कसूरे॥३॥
कलीकालनो नीर अछे अथागे। तेण पीडीयो न न्है न स्यागे।
लोलो अछु हु प्रभु तेण पुरे। सुण विनति सदा गुरु कक्कसूरे॥४॥
प्रभु तारवानो प्रतिपन्न पाले। भय डूबताने म मेल निराले।
विवेकनो वहान वेग पूरे। सुण विनति सदा गुरु कक्कसूरे॥५॥
जाणु अमारो भव अप्रमाणे। प्रभु देशनानो न सुणीयो वखाणे।
नही पुजीयों पुस्तके मइ एक पूरे। सुण विनति सदा गुरु कक्कसूरे॥
ते उधर्यों गच्छ उएस भारे। नही तुमारे गुणनो कोई पारे।
ते आठ आगे किया कर्म दूरे। सुन विनति सदा गुरु कक्कसूरे॥७॥
यह विनति सुन गुरु कक्कसूरे। पढ सुणे जिम मन रंग पूरे।
तीहां तणी तुं प्रभु आश पूरे। सुण विनति सदा गुरु कक्कसूरे॥८॥

॥ श्रीगुरुगुणाष्टकम् ॥

पार्श्वपाट सुभदत्त गणी हरिदत्त आर्यसमुद्र।
केशीश्रमण प्रतिबोधीया दोय दश नरेन्द्र॥ १ ॥

(१५) श्री निशिथसूत्र—पंदरहवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' अन्य साधु साध्वी प्रत्ये निष्ठुर वचन बोले.

(२) एवं स्नेह रहित कर्कश वचन बोले.

(३) कठोर, कर्कश वचन बोले, बोलावे, बोलतेको अच्छा समझे.

(४) एवं आशातना करे. ३

भावार्थ—ऐसा बोलनेसे धर्म स्नेहका नाश और क्लेशकी वृद्धि होती है. मुनियोंका वचन प्रियकारी, मधुर होना चाहिये.

(५) „ सचित्त आम्रफल भक्षण करे, ३

(६) एवं सचित्त आम्रफलको चूसे ३

(७) एवं आम्रफलकी गुटली, आम्रफलके टुकडे (कातली) आम्रफलकी एक शाखा, (डाली) छनु आदिको चूसे. ३

(८) आम्रफलकी पेसी मध्यभागको चूसे. ३

(९) सचित्त आम्र प्रतिबद्ध अर्थात् आम्रफलकी फांकों काटी हुइ, परन्तु अबीतक सचित्त प्रतिबद्ध है, उसको खावे. ३

(१०) एवं उक्त जीव सहितको चूसे ३

(११) सचित्त जीव प्रतिबद्ध आम्रफल डाला, शाखादि भक्षण करे. ३

(१२) एवं उसे चूसे. ३

भावार्थ—जीव सहित आम्रफलादि भक्षण करनेसे जीव विराधना होती है, हृदय निर्दय हो जाता है. अपने ग्रहन किया हुवा नियमका भंग होते हैं.

(१३) „ अपने पाव, अन्यतीर्थी, अन्यतीर्थी गृहस्थोंसे

है लारी, ओशीयां आपके चरणा ॥ रत्न० ॥ २ ॥ मंत्रीका पुत्र बचाया, नगर सब जैन बनाया, देवी समकित शुद्ध धरना ॥ रत्न० ॥ ३ ॥ उपकेशगच्छ आपसे बाजे, गौत्र अढार है ताजे, गुरुका समरन नित्य करना ॥ रत्न० ॥ ४ ॥ ढुंढक और पन्थी है किधर, शिखरबन्ध वीरका मन्दिर, सीतर वर्ष वीरसे गीनना ॥ रत्न० ॥ ५ ॥ नामसे दुःख सब जावे, पूजासे सम्पदा पावे, अक्षयसुख मोक्षका वरना ॥ रत्न० ॥६॥ तीर्थ जग ओशीया चावो, गुरुगुण मीलके गावो, ज्ञानका ध्यान तुम चरना ॥ रत्न० ॥ ७ ॥ इति.

श्रीफलोधीमंडन श्रीरत्नप्रभसूरिजी म०

पूजो रत्नसूरी महाराज, मोक्षकि राह बताने वाले। । पूजो० । नगर ओशीयां आये, सबकों जैनी आप बनाये, जिन्होंका वंस ओश थपाये गौत्र अठारे बनाने वाले । पू० । ॥ १ ॥ जग तारण गुरूराज, सुधारो भक्तों के सब काज, शरणे आयोंकि रखो लाज, दुःख सब दुर हटाने वाले । पू० । ॥२॥ तुमहो दीन दयाल, करीये सेवक कि प्रतिपाल, मीटादो कर्मोंका जंजाल, ज्ञानकों अमर बनाने वाल ।पू०। ॥३॥ इति.

(७६) करियाणागृह—शाला, दुकान, धातुके वरतन रखनेका गृह—शाला.

(७७) वृषभ बांधनेका गृह, शाला तथा बहुतसे लोक निवास करते हो ऐसा गृह, शालामें टटी. पैसाव परठे, अर्थात् उपर लिखे स्थानोमें टटी, पैसाव करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—गृहस्थोंको दुगंछा, धर्मकी हीलना, यावत् दुर्लभ बोधीपणा उपार्जन करता है. मुनियोंको टटी, पैसाव करनेको जंगलमें खुब दूर जाना चाहिये. जहांपर कोइ गृहस्थ लोगोंका गमनागमन न हो, इसीसे शरीर भी निरोगी रहता है.

(७८) ,, अपने लाइ हुइ भिक्षासे अशनादि च्यार आहार, अन्यतीर्थी और गृहस्थोंको देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे

(७९) एवं वस्त्र, पात्र, कवल, रजोहरण देवे ३ भावनापूर्ववत्.

(८०) ,, पासत्थे साधुवोंको अशनादि च्यार आहार

(८१) वस्त्र, पात्र, कवल, रजोहरण देवे ३

(८२-८३) पासत्थासे अशनादि च्यार आहार और वस्त्र, पात्रा, कंवल, रजोहरण ग्रहन करे. ३

एवं उसन्नोंका च्यार सूत्र ८४ ८५-८६-८७.

एवं कुशीलीयोंका च्यार सूत्र ८८-८९-९०-९१.

एवं नितीयोंका च्यार सूत्र ९२-९३-९४-९५

एवं संसक्तोंका च्यार सूत्र ९६-९७-९८-९९.

एवं कथगोंका च्यार सूत्र १००-१०१-१०२-१०३,

एवं ममत्ववालोंका च्यार सूत्र १०४-१०५-१०६-१०७.

जलं ॥ बहुविधभोगं अंगनिरोगं, तापकुशोकं अनिलटल । मारविडारं कुष्टकुठारं, वचघनधारं सुमनखिलं ॥ ५ ॥ नवग्रह-तुष्टं हरिकरिदुष्टं, विषधररुष्टं शान्तिकरं । प्रेतपिशाचं आवैना-पासं, लीलविलासं ध्यानधरं ॥ पगपगमानं ज्ञानसुज्ञानं, आव-तध्यानं प्रातधरं । हयगयउज्जलं मनिधनविपुलं, गुनगनविमलं ज्ञातवरं ॥ ६ ॥ संकटचूरं अनधनपूरं, अघतमदूरं पीरहरं । विद्यापीठं सुगुनगरिष्टं, भाजतादिष्टं धीरकरं ॥ अशरणशरणं भवभयहरणं, भविसुखकरणं तीरपरं । स्वयंप्रभपाटं शिवपुर-वाटं, अद्वयठाठं चीरभरं ॥ ७ ॥ ओएशगच्छं रयणप्रभसच्चं, बिरुदसुलच्छं जानमनं । भणयविलासं श्रीधरवासं, दालिद्र-नासं जानमन ॥ जगमयुवरं सिद्धगुरुसुगुरं, खेवतअगरं जान-मनं । कविशुभकथनं लस्करवसनं, मुनिश्रुतवरपं जानमनं ॥ ८ ॥ इति मंगलाष्टक सम्पूर्णम् ॥

॥ दादाजी महाराज श्रीजिनरत्नप्रभसूरीश्वर छन्दाष्टकम् ॥

आदित्य तेज प्रताप निशिकर वाणी जलधर गाजहिं । नय सप्तधारक पूर्वपारक सूरि पद गुरु गाजहिं ॥ भव जीव सहायक कर्मघायक तरणि भव सम छाजहिं । शुभ लेत जो प्रभरत्नसूरि नाम अघदल भाजहिं ॥१॥ कुल राज सम्पत त्याग

(१७१) एवं वस्त्रादि धोवे, साफ करे, उज्वल करे. घटा मटा उस्तरी दे, गडीबन्ध साफ करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

(१७२) एवं वस्त्रादिको सुगंधि पदार्थ लगावे, धूप देकर सुगन्धि बनावे ३

भावार्थ—विभूषा कर्मबन्धका हेतु है. विषय उत्पन्न करनेका मूल कारण है. संयमसें भ्रष्ट करनेमें अग्रेसर है. इत्यादि दोषोंका सभव है

उपर लिखे १७२ बोलोंमे एक भी बोल सेवन करनेवाले मुनियोंको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होता है. प्रायश्चित्त विधि देखो बीसवा उद्देशासे.

इति श्री निशियसूत्र—पंदरवा उद्देशाका संक्षिप्त सार.

(१६) श्री निशिथसूत्र—सोलवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' गृहस्थ शय्या—जहांपर दपती क्रीडाकर्म करते हो, ऐसे स्थानमें प्रवेश करे, करावे, करतेको अच्छा समझे.

भावार्थ—वहां जानेसे अनेक विषय विकारकी लेहरों उत्पन्न होती हैं. पूर्व कीये हुवे विलास स्मृतिमें आते हैं इत्यादि दोषका संभव है.

(२) " गृहस्थोंके कचापाणी पडा हो, ऐसे स्थानमें प्रवेश करे. ३

(३) एवं अग्निके स्थानमें प्रवेश करे.

॥ श्रीरत्नप्रभसूरीश्वराष्टकम् ॥

भव्यावली मकलकानन राजहंसं, श्रेयः प्रवृत्ति मुनि मानस राजदंसं। श्रीपार्श्वनाथ पदपंकज चिंचिरकं, रत्नप्रभु गुणधरं सततं स्तवीमि ॥ १ ॥ विद्याधरेन्द्र, पदवी कलितोपिकामं, श्रीमत् स्वयंप्रभुगिरः परिपीय योऽत्र। दीक्षा वधुमुदवदव मुदमादधानो, रत्नप्रभुःस दिशतात् कमलाविलासं ॥२॥ मंत्रीश्वरोहड सुतो भुजंगेन दृष्टः, संजीवितः सकल लोक सभा समक्षं। यस्याङ्घ्रि वारिसह पुष्कर सिंचनेन, रत्नप्रभुःस दिशतात्कमलाविलासं ॥ ३ ॥ मिथ्यात्व मोह तिमिराणी विधूययेन, भव्यात्मनां मनसि तिग्मरुचेव विश्वे। संदर्शितं सकल दर्शन तत्वरुपं ॥ रत्न० ॥ ४ ॥ येनोपकेश नगरे गुरु दिव्य शक्त्या, कोरंटके च विदधे महती प्रतिष्ठा। श्रीवीर बिंबयुगलस्य वरस्य येन ॥ रत्न० ॥ ५ ॥ श्रीसत्यिका भगवती समभूत प्रसन्ना, सर्वज्ञ शासन समुन्नति वृद्धिकर्त्री। यद्देसना रस रहस्य मवाप्य समाक ॥ रत्न० ॥ ६ ॥ गृह्णंति यस्य सुगुरोर्गुरुनाममंत्रं सम्यक्त्व तत्त्व गुणगौरेव गर्भिताये तेषां गृहे प्रतिदिनं विलसंति पद्मा ॥ रत्न० ॥ ७ ॥ कल्पद्रुमः करतले सुर कामधेनु, श्चिंतामणिः स्फुरति राज्य रमाभि रामा। यस्योल्लसत् क्रमयुगांबुज पूजनेन ॥ रत्न० ॥ ८ ॥ इत्थं भक्तिभरेण देवतीलकश्चातुर्ये लीलागुरोः। श्रीरत्नप्रभसूरिराज सुगुरोः स्तोत्रं करोतिस्मयः प्रातः काम्यमिदं पठत्य

(१७) ,, कोइ साधु एक गच्छसे क्लेश कर वहांसे विगर खमतखामणा कर, निकल दुसरे गच्छमें आवे, दुसरे गच्छवाले उस क्लेशी साधुको अपनेपास अपने गच्छमे रखे, उसे अशनादि च्यार आहार देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे

भावार्थ—क्लेशवृत्तिवाले साधुवोंके लीये कुछ भी रोकावट न होगा, तो एक गच्छमें क्लेशकर, तीसरे गच्छमें जावेगा, एक गच्छका क्लेशी साधुको दुसरे गच्छवाले रखलेंगे तो उस गच्छका साधुको भी दुसरे गच्छवाले रखलेंगे इससे क्लेशकी उत्तरोत्तर वृद्धि होगी, शासनकी हीलना, आत्मकल्याणका नाश, क्षांत्यादि गुणोंका उच्छेद आदि अनेक हानि होगी

(१८) एवं क्लेशी साधुवोंका आहार ग्रहन करे

(१९-२०) वस्त्रादि देवे, लेवे.

(२१--२२) शिक्षा देवे, लेवे.

(२३--२४) सूत्र सिद्धांतकी वाचना देवे, लेवे.

भावार्थ—ऐसे क्लेशी साधुवोंका परिचयतक करनेसे, चेपी रोग लगता है. वास्ते दूरही रहना चाहिये. एक साधुसे दूर रहेगा, तो दूसदकों भी क्षोभ रहेंगा.

(२५) ,, साधुवोंके विहार करने योग्य जनपद--देश मौजुद होते हुवे भी वहुत दिन उलंघने योग्य अरण्यको उलंघ अनार्य देश (लाट देशादि) में विहार करे. ३

भावार्थ—अपना शारीरिक सामर्थ्य देखा विगर करनेसे रहस्तेमें आदाकर्मी आदि दोष तथा सयमसे पतित होनेका संभव है.

(२६) जिस रहस्तेमें चौर, धाडायती, अनार्य, धूर्तादि हो, ऐसे रहस्ते जावे. ३

चिन्तामणी फल सम देत अधिक वरदाई। सद्गुरु जगमें सुर तरुसरिषो मन इच्छित फल पाई ॥ स० ॥ ३ ॥ इह भव पर-भव अन धन लक्ष्मी सुखसम्पद ठकुराई। वंध्या पुतर गोद खिलावै निश्चय मन गुरु गुण गाई ॥ स० ॥ ४ ॥ धन धन रत्न प्रभुयुगराया देवो दरश गुरु आई। शुभको अविचल प्रेमसे दीजै येहीज बात समाई ॥ स० ॥ ५ ॥ इति ॥

॥ चाल होरीकी ॥

गुरु पद पूजा सुहाई मिलकर पूजो रे भाई ॥ गुरुमुख-चंद विलोकन सेती। जठर ताप टर जाई ॥ मिथ्या अना-दिकी मोहनी निद्रा। नासत लख अधिकाई ॥ लगन जद गुरुसें लगाई ॥ गु० ॥ १ ॥ गुरुगुण अमृत-श्रवण पानतें। विष निर्विष हो जाई ॥ दधि श्रुत लहर सुमत घट छावै। मोडत मान हरिकारि आई ॥ सुरत जद गुरुसे लगाई ॥ २ ॥ गु० ॥ गुरु कज धूलि चरन फरसनतें। कुमता मोरी पुलाई ॥ कहत करण शुभ दोई कर जोडी। सुभग दशा बडी आई ॥ निरख छबी रह्यो हुँ लुभाई ॥ गु० ॥ ३ ॥ इति ॥

॥ पुनः ॥

लगैरी मोकुं नाम गुरुजीका प्यारा। जाके रटे भव-पारा ॥ गुरुजीका नाम अमरफल देवै। जो जपै घटि च्यारा ॥ साचे मनसें जो कोई ध्यावै। टूटै करम जंजारा ॥ १ ॥लगै॥

ठावे, ऐसा पासत्था, हीणाचारी, आचार, दर्शनसे भ्रष्ट तथा अ-प्रतीतिवालाको ज्ञान ध्यान देना तथा उससे ग्रहन करना मना है. यहां प्रथम लोक व्यवहार शुद्ध रखना बतलाया है. साथमें योगायोग, और लाभालाभ, द्रव्य, क्षेत्रका भी विचार करनेका है.

(३७) „ अशनादि च्यार आहार लाके पृथ्वी उपर रखे. ३

(३८) पत्र संस्तारक पर रखे. ३

(३९) अधर खुंटीपर रखे, छीकापर रखे, छातपर रखे ३

भावार्थ—ऐसे स्थानपर रखनेसे पीपीलिका आदि जीवोंकी विराधना होवे. कीडीयों आवे, काग, कुता अपहरण करे, स्नि-ग्धता--चीकट लगनेसे जीवोत्पत्ति होवे-इत्यादि दोषका सभव है.

(४०) „ असनादि च्यार आहार, अन्यतीर्थी तथा गृहस्थोंके साथमें बेठके भोगवे ३

(४१) चोतरफ अन्य तीर्थी गृहस्थ, चक्रकी माफिक और आप स्वय उसके मध्य भागमे बेठके आहार करे. ३

भावार्थ—साधुको गुप्तपणे आहार करना चाहिये, जीनसे कोइकि अभिलाषही नहोवे.

(४२) „ आचार्योपाध्यायजीके शय्या, संस्तारकके पावोंसे संघट्टा कर विगर खमायों जावे. ३

(४३) „ शास्त्र परिमाणसे तथा आचार्योपाध्यायकी आज्ञासे अधिक उपकरण रखे ३

(४४) „ आन्तरा रहित पृथ्वीकायपर टटी, पेसाब परठे.

(४५) जहांपर पृथ्वीरज हो, वहांपर.

(४६) पाणीसे स्निग्ध जगाहपर.

वार हजारी ॥ टेर ॥ महेन्द्रचूड लक्ष्मीवति नंदा गौर वरण द्युति भारी । इक अवतारी कारज सीझा तीन भूवन यश जारी ॥१॥ चोखै भावै जोजन अरचित भाजै कलुषता सारी । ऋधसिध सम्पत सामी आवै ध्यान धरे इकतारी ॥ २ ॥ भीम भगंदर नामसे भाजै तुटै बंध अपारी । शौक मरी स्वपने नवि व्यापै डरपै कुमति विचारी ॥ ३ ॥ रतनप्रभुसूरि जंगम जुग-पति उपकेशगच्छ पटधारी । मिथ्याध्वंसक जैन दीपायो एसे गुरु अवतारी ॥ ४ ॥ देवि चामुंडा समकित कीनि कीने गोत्र अढारी । एसे सद्गुरु शुभ उठ नमतां वारि जाउं वार हजारी ॥ ५ ॥ इति ॥

॥ राग काफि–जिला ॥

सुगुरुजी अब मोहे पार उतारो, भवभव भटकत तुम पद पायो । लीनो शरण तिहारो ॥ सु० ॥ १ ॥ च्यारे लुटेरे मोहे नित घेरे ताते दूर निकारो ॥ सु० ॥ २ ॥ आस धरिने बहुली आयो चिंतित काज सुधारो ॥ सु० ॥ ३ ॥ मोहे भरोसो अतिही नीको जानत मम हियवारो ॥ सु० ॥ ४ ॥ शुभ उठ शुभ करजोडके नमतां कुमति कलुपता टारो ॥सु०॥५॥ इति ॥

॥ राग जिलाजोगीया तथा श्यामकल्याण ॥

सुगुरु तोरो दरश सरस अति नीको, दरश करतहिं पातिक भाजै मिट गयो फंद अरिको ॥ सु० ॥ १ ॥ याभव

(३) ,, कुतूहल निमित्त तृणमाला, पुष्पमाला, पत्रमाला, फलमाला, हरिकायमाला, बीजमाला करे ३

(४) धारे, धरावे, धरतेको अच्छा समझे.

(५ , भोगवे.

(६) पेहरे.

(७ कुतूहल निमित्त लोहा, तांबा, तरुवा, सीसा, चांदी, सुवर्णके खीलुने चित्र करे. ३

(८) धारण करे. ३

(९) उपभोगमें लेवे ३

(१०) एवं हार (अठारसरी) अद्दहार (नौसरी) तीनसरी सुवर्ण तारसे हार करे. ३

(११) धारण करे. ३

(१२) भोगवे ३

(१३) चर्मके आभरण यावत् विचित्र प्रकारके आभरण करे. ३

(१४) धारण करे. ३

(१५) उपभोगमें लेवे ३

भावार्थ—कुतूहल निमित्त कोइ भी कार्य करना कर्मबन्धका हेतु है. प्रमादकी वृद्धि, ज्ञान, ध्यान, स्वाध्यायमें व्याघात होता है.

(१६) ,, एक साधु दुसरा साधुका पाव अन्यतीर्थी तथ गृहस्थोंसे चंपावे, दबावे, यावत् तीसरे उदेशाके ५६ बोल यहां-पर कहना. एवं एक साधु, साध्वीयोंके पाव, अन्यतीर्थी तथा गृहस्थोंसे दबावे, चंपावे, मसलावे. एवं ५६ सूत्र. एवं एक साध्वी साधुके पाव अन्यतीर्थी गृहस्थोंसे दबावे, चंपावे, मसलावे. एवं

सगळा दुर पुलावे ॥ मन वंछीत कारज सीध थावे ॥ गु० ॥
॥ १ ॥ रोग दोहग दुःख सघला नासे ॥ पग पग पामे लील
विलासे ॥ भय भय रव सुपने नही भासे ॥ गु० ॥ २ ॥ श्री
श्री स्वयंप्रभ पट पर छाजो ॥ उपकेश गच्छके नायक
गाजो ॥ कुमति कुटील मद तज भाजो ॥ गु० ॥ ३ ॥ गुरु
नामे निर्धन धन पामे ॥ वंध्या पुत्र गोद खिलावे ॥ रण
बीच जीत सुगम घर आवे ॥ गु० ॥ ४ ॥ सुभ उठ जोजन
सद्गुरु रटते ॥ अनिल सलिल ज्वरसे नही डरते ॥ सुख मोद
प्रमोद हीयेमे बिचरंते ॥ गु० ॥५॥ मो मन गुरु नामा भावे ॥
गुरु विन दुजा याद न आवे ॥ शुभ कवी गुरु गुण गावे ॥
॥ गु० ॥ ६ ॥ इतिपपम्

सलूनाकी देशी.

सुगुरु चरण नीत भजीये सलूना ॥ मन इच्छित बहु
फलीये सलूना ॥ टेर ॥ सुगुरु मेहेरसे अन धन लखमी ॥
भरीय अखूटे भंडार सलूना ॥ सुगुरु चरनसे पाप जो नासे ॥
हरीये दुरीत प्रचार सलूना ॥ सु० ॥ १ ॥ सुगुरु जगतमे
पोत समाना ॥ सुगरु विना भव रुलीये सलूना ॥ सुगुरु
चिंतामणी रत्न समाना ॥ मन चींता सहु फलीये सलूना ॥
सु० ॥ २ ॥ सुगुरु चरण कज सुरतरु सरीखो ॥ मन वंछीत
फल देय सलूना ॥ अजर अमर पदवी सुख चाहो ॥ तो

भावार्थ—कची वस्तु लेते, रखते पीमके पडजानेसे आत्मघात, मयमघात, जीवादिका उपमर्दन होता है. पीच्छा लेप करनेमे आरंभ होता है.

(२४५) ,, पृथ्वीकायपर रखा हुवा अशनादि च्यार आहार उठाके मुनिको देवे, वह आहार मुनिग्रहन करे, ३

(२४६) एवं अप्कायपर

(२४७) एव तेउकायपर.

(२४८) वनस्पतिकाय पर रखा हुवा आहार देवे, उसे मुनि ग्रहन करे. ३

भावार्थ—ऐसा आहार लेनेसे जीवोंकी विराधना होती है. आज्ञाका भंग व्यवहार अशुद्ध है.

(२४९) ,, अति उष्ण, गरमागरम आहार पाणी देते समय गृहस्थ, हाथसे, मुंहसे, सुपडेसे, ताडके पंखेसे, पत्रसे, शाखाके, शाखाके खंडसे हवा, लगाके जिससे वायुकायकी विराधना होती है, ऐसा आहार मुनि ग्रहन करे. ६

(२५०) ,, अति उष्ण—गरमागरम आहार पाणी मुनि ग्रहन करे.

भावार्थ—उसमे अग्निकायके जीव प्रदेश होते है. जीससे जीव हिंसा का पाप लगता है

(२५१) , उसामणका पाणी, बरतन धोया हुवा पाणी, चावल धोया हुवा पाणी, बोर धोया हुवा पाणी, तिल० तुस० जव० मूसा० लोहादि गरम कर बुजाया हुवा पाणी, कांजीका पाणी, आम्र धोया हुवा पाणी, शुद्धोदक जो उक्त पदार्थों धोयोंको ज्यादा वखत नहीं हुवा है, जिसका रस नहीं वदला है, जिस

उठ शुभ करणे रटे । चाकर पद रजवासा रे ॥ भवभव सेवा चाकरी गुरु । आपो संयम स्वासारे ॥ रत्न० ॥७॥ शशी नव अब्दा वेहोत्तरा । वद आश्विन मासारे ॥ लस्कर संध्या माहने । गुरु विनती रची सुखशाता रे ॥ रत्न० ॥८॥ इति पदम् ।

यह पद हमेशां प्रतिक्रमण करनेके बाद बोलनेसे सब तरहका आनंद मंगल होता है । इत्यलम् ।

॥ दादासाहेबकी थुई ॥

आज दिवस मनोहर ए पेखे परम दयाल तो । जन्म कृतारथ मम थयो ए पाप गया पायालतो । सुरतरु घर आंगण फल्यो ए सरिया चिंतित काजतो । रत्नप्रभसूरि सेवताए भाजै कोटी फिसादतो ॥१॥ उकेश गच्छनायक दीपतां ए रवि सम ज्योत प्रकाशतो । ओएश गढ गुरु आवियाए मिथ्या ध्वंस निकासतो । चउदै पूर्व विद्यानिधिए चउनाणि तप स्वादतो । ॥२॥ सद्गुरु दीनी देशनाए टाल्या दुरित जंजालतो । पद्मा अम्म सिद्धादिकाए सुनके भई है निहालतो । समकित सुघसा-चल लह्योए तज कुमति परमादतो । ॥ ३ ॥ ताके पट्ट परं-पराए सिद्धसूरि महाराजतो । वलदेव गणी मुख शोभताए विद्यागुण भण्डारतो । शुभ उठ सद्गुरु शुभ नमेए मनमे धरी आनन्दतो ॥ ४ ॥ इति ॥

और भी किसी प्रकारके तालको यावत् श्रवण करनेकी अभिलाषा मात्र भी करे.

(२५७) ,, शंख शब्द, वांस वेणु, खरमुखी आदिके शब्द सुननेकी अभिलाषा करे. ३

(३५८) ,, केरा (गाहुवोंका) खाइ यावत् तलाव आदिका वहांपर जोरसे निकलाता हुवा शब्द.

(२५९) " काच्छा गहन, अटवी, पर्वतादि विषम स्थानसे अनेक प्रकारके होते हुवे शब्द "

(२६०) "ग्राम, नगर, यावत् सन्निवेशके कोलाहल शब्द."

(२६१) ग्राममें अग्नि, यावत् सन्निवेशमें अग्नि आदिसे महान् शब्द.

(२६२) ग्रामको वद-नाश, यावत् सन्निवेशका वदका शब्द.

(२६३) अश्वादिका क्रीडा स्थानमें होता हुवा शब्द.

(२६४) चौरादिकी घातके स्थानमें होता हुवा शब्द.

(२६५) अश्व, गजादिके युद्धस्थानमें "

(२६६) राज्याभिषेकके स्थानमें, कथगोंके स्थान, पटहादिके स्थान, होते हुवे शब्द.

(२६७) "बालकोंके विनोद विलासके शब्द"

उपर लिखे सब स्थानोंमें श्रोत्रेद्रियसे श्रवण कर, राग द्वेष उत्पन्न करनेवाले शब्द, मुनि सुने, अन्यको सुनावे, अन्य कोइ सुनताहो उसे अच्छा समझे.

भावार्थ—ऐसे शब्द श्रवण करनेसे राग द्वेषकी वृद्धि, प्रमा-

वैठे. ३ एवं दो मनुष्योंके विभागमें है, एककादिल न होनेवाली नौकापर चढे. ३ साधुके निमित्त सामने लाइ हुइ नौकापर चढे.३

(७) जलमें रही हुइ नौकाको खैंचके साधुके लीये स्थलमें लावे, उस नौकापर चढे. ३

(८) एवं स्थलमें रही नौकाको जलकी अंदर साधुके निमित्त लावे, उस नौकापर चढे. ३

(९) जिस नौकाकी अन्दर पाणी भरागया हो, उस पाणीको साधु उलचे (बाहार फेंके) ३

(१०) कादवमें खुंची हुइ नौकाको कर्दमसे निकाले. ३

(११) किसी स्थानपर पडी हुइ नौकाको अपने लीये मगवाके उसपर चढे ३

(१२) उर्ध्वगामिनी नौका पाणीके सामने जानेवाली, अधोगामिनी नौका, पाणीके पूरमें जानेवाली नौकापर चढे. ३

(१३) नौकाकी एक योजनकी गतिके टाइममें आदा योजन जानेवाली नौकापर वैठे

(१४) रसी पकड नौकाको आप स्वयं चलावे.

(१५) न चलती हुइ नौकाको दडाकर, वेत्तकर, रसीकर आप स्वयं चलावे. ३

(१६) नौकामें आते हुवे पाणीको पात्रासे, कमंडलसे उलच वाहार फेंके. ३

(१७) नौकाके छिद्रसे आते हुवे पाणीको हाथ, पग और कोइ भी प्रकारका उपकरण करके रोके. ३

भावार्थ—प्रथम तो जहांतक रहस्ता हो, वहांतक नौकामें

यद्यपि स्थलमें साधु और स्थलमें दातार होतो कल्पे; परन्तु नौकामें बैठते समय साधु स्थलमें आहार पाणी चुकाके वस्त्र, पात्रकी एकही पेट (गांठ) कर लेते है. वास्ते उस समय आहार पाणी लेना नहीं कल्पें भावना पुर्ववत्. यहां पन्थीलोग कीतनीक कुयुक्तियों लगाते है वह सब मिथ्या है. साधु परम दयावन्त होते है. सब जीवोंपर अनुकंपा है.

(४६) ,, मूल्य लाया हुवा वस्त्र ग्रहन करे, ३

(४७) एवं उधारा लाया हुवा वस्त्र.

(४८) सलट पलट कीया हुवा वस्त्र.

(४९) निर्बलसे सबल जबरदस्तीसे दिलावे, दो विभागमें एकका दिल न होनेपर भी दुसरा देवे, और सामने लाके देवे ऐसा वस्त्र ग्रहन करे. ३

भावार्थ—मूल्यादिका वस्त्र लेना मुनिको नहीं कल्पे.

(५०) ,, आचार्यादिके लीये अधिक वस्त्र ग्रहन कीया हो वह आचार्यको विगर आमंत्रण करके अपने मनमाने साधुको देवे. ३

(५१) ,, लघु साधु साध्वी, स्थविर (वृद्ध) साधु साध्वी जिसका हाथ, पग, कान, नाक आदि शरीरका अवयव छेदा हुवा नहीं, बेमार भी नहीं है, अर्थात् सामर्थ्य होनेपर भी उसको प्रमाणसे[1] अधिक वस्त्र देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे.

(५२) एवं जिसके हाथ, पांव, नाक, कानादि छेदा हुवा हो, उसे अधिक वस्त्र न देवे, न दिलावे, न देतेको अच्छा समझे.

---

१ तीन वस्त्रका परिमाण है एक वस्त्र २४ हाथका होता है साध्वीके च्यार (४) वस्त्रका परिमाण है

(७७) „ अन्तरारहित पृथ्वी (सचित्त) ऐसे स्थानमें वस्त्रको आताप देवे. ३

(७८) एवं सचित्त रजपर वस्त्रको आताप देवे.

(७९) कच्चे पाणीसे स्निग्ध पृथ्वीपर वस्त्रको आताप देवे.३

(८०) सचित्त शिला, कांकरा, कालडीये जीवोंकाझाला, काष्टसगृहीत जीव, इंडा, बीजादि जीव व्याप्त भूमिपर वस्त्रको आताप देवे. ३

(८१) घरके उंबरेपर, देहलीपर.

(८२) भितपर छोटे खदोयापर यावत् आच्छादित भूमिपर वस्त्रको आताप देवे. ३

(८३) मांचा, माला, प्रासाद, शिखर, हवेली, निसरणी, आदि उर्ध्वस्थानपर वस्त्रको आताप देवे

भावार्थ—ऐसे स्थानोंपर वस्त्रको आताप देनेमें देते लेते स्वयं आप गिर पडे, वस्त्र वायुके मारा गिर पडे, उसे आतमघात, संयमघात, परजीवघात-इत्यादि दोषोंका संभव है

(८४) „ वस्त्रकीअन्दर पूर्वे पृथ्वीकाय बन्धी हुइथी, उसको निकाल कर देवे ३ उस वस्त्रको ग्रहन करे ३

(८५) एवं अप्काय कचा जलसे भींजा हुवा तथा पाणीके संघटेसे.

(८६) एवं तेउकाय संघटेसे.

(८७) एवं वनस्पतिकायसे.

(८८) एवं औषधि, धान्य, बीजादि.

(८९) एवं त्रस प्राणी-जीवोंसहित तथा गमनागमन कर वायके.

उपर लिखे ९३ बोलोंसे कोइ साधु साध्वी एक बोल भी सेवन करे. करावे करतेको अच्छा समझेगा, उसको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवा उद्देशामे.

इति श्री निशिथसूत्र—अठारवा उदेशाका संक्षिप्त सार.

—०○◎○०—

(१९) श्री निशिथसूत्र उन्नीसवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' बहु मूल्य वस्तु-वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण तथा औषधि आदि, कोइ गृहस्थ बहु मूल्यवाला वस्तुका मूल्य स्वयं लावे, अन्यके पास मूल्य मंगवाके तथा अन्य साधुके निमित्त मूल्य लाते हुवेको अच्छा समझे. वह वस्तु बहु मूल्यवाली मुनि ग्रहन करे, करावे, करतेको अच्छा समझे

भावार्थ—बहु मूल्यवाली वस्तु ग्रहन करनेसे ममत्वभाव बढे, चौरादिका भय रहे, इत्यादि.

(२) एवं बहु मूल्यवाली वस्तु उधारी लाके देवे, उसे मुनि ग्रहन करे. ३

(३) सलटा पलटाके देवे. उसे मुनि ग्रहन करे. ३

(४) निर्बलसे जबरदस्ती सबल दिलावे, उसे ग्रहन करे. ३

(५) दो भागीदारोंकी वस्तु, एकका दिल देनेका न होनेपर भी दुसरा देवे, उसे मुनि ग्रहन करे.

(६) बहु मूल्य वस्तु सामने लाके देवे, उसे ग्रहन करे. ३ भावना पूर्ववत्.

(७) „ अगर कोइ बेमार साधुके लीये बहु मूल्य औष-

(१२) ,, अस्वाध्यायके समय किसी विशेषकारणसे तीन पृच्छना (प्रश्न) से अधिक पूछे. ३

भावार्थ –अधिक पूछना हो तो स्वाध्यायके कालमें पूछना चाहिये.

(१३) ,, दृष्टिवाद--अगकी सात पृच्छना (प्रश्न) से अधिक पूछे. ३

(१४) , च्यार महान् महोंत्सवकी अन्दर स्वाध्याय करे ३ यथा—इन्द्र महोत्सव, चैत शुक्ल १५ का, स्कन्ध महोत्सव, आषाढ शुक्ल १५ का. यक्ष महोत्सव, भाद्रपद शुक्ल १५का, भूतमहोत्सव कार्तिक शुक्ल १५ का इस च्यार दिनोंमें मूल सूत्रोंका पठन पाठन करना साधुवोंको नही कल्पै. *

(१५) ,, च्यार महा प्रतिपदा—वैशाख कृष्ण १, श्रावण कृष्ण १, आश्विन कृष्ण १, मागशर कृष्ण १. इस च्यार दिनोंमें मूल सूत्रोंका पठन पाठन करना नहीं कल्पै.

(१६) ,, स्वाध्याय पोरसीमें स्वाध्याय न करे. ३

(१७) स्वाध्यायका च्यार काल है. उसमें स्वाध्याय न करे.३

भावार्थ—स्वाध्याय—' सव्व दुक्खविमुक्खाणं ' मुनिको स्वाध्याय ध्यानमें ही मग्न रहना चाहिये. चित्तवृत्ति निर्मल रहै. प्रमादका नाश कर्मोंका क्षय और सद्गतिकि प्राप्तीका मौख्य कारण स्वाध्यायही है.

---

* श्री स्थानागजी सूत्र—चतुर्थ स्थाने—आश्विन शुक्ल १५ को यक्ष महोत्सव कहा है उस अपेक्षा कार्तिककृष्ण प्रतिपदा महा पडिवा होती हैं इस वास्ते दोनों आगमोंको बहुमान देते हुवे दोनों पूर्णिमा, दोनों प्रतिपदाको अस्वाध्याय रखना चाहिये तत्त्व केवलीगम्य

रांगसूत्र ही पढना चाहिये, अगर ऐसा न पढावे, उन्होंके लीये यह प्रायश्चित्त बतलाया हुवा है

(२२) ,, 'अप्राप्त' वाचना लेनेको योग्य नहीं हुवा है. द्रव्यसे वालभावसे मुक्त न हुवा हो, अर्थात् काखमें रोम (वाल) न आया हो, भावसे आगम रहस्य समझनेकी योग्यता न हो, धैर्य, गांभीर्य, न हो, विचारशक्ति न हो, ऐसे अप्राप्तको आगमोंकी वाचना देवे, दिलावे, देतेको अच्छा समझे.

(२३) ,, 'प्राप्त' को आगमोंको वाचना न देवे, न दिलावे, न देतेको अच्छा समझे. द्रव्यसे वालभावसे मुक्त हुवा हो, काखमें रोम आगये हो, भावसे सूत्रार्थ लेनेकी, ग्रहन करनेकी, तत्व विचार करनेकी, रहस्य समझनेकी योग्यता हो, धैर्य, गांभीर्य, दीर्घदर्शिता हो, ऐसे प्राप्तको आगमोंकी वाचना न देवे. ३

भावार्थ—अयोग्यको आगमज्ञान देना, वह वडा भारी नुकशानका कारण होता है. वास्ते ज्ञानदाता आचार्योपाध्यायजी महाराजको प्रथमसे पात्र कुपात्रकी परीक्षा करके ही जिनवाणी रूप अमृत देना चाहिये. तां के भविष्यमें स्वपरात्माका कल्याण करे.

(२४) अति वाल्यावस्थावाला मुनिको आगम वाचना देवे ३ .

(२५) वाल्यावस्थासे मुक्त हुवाको आगम वाचना न देवे ३ भावना २२-२३ सूत्रसे देखो.

(२६) ,, एक आचार्यके पास विनयधर्मसंयुक्त दाय शिष्यों पढते है. उसमें एकको अच्छा चित्त लगाके ज्ञान-ध्यान शिखावे, सूत्रार्थकी वाचना देवे [रागके कारणसे], दुसरेको न शि-

(३०) ,, पासत्थावोंको सूत्रार्थकी वाचना देवे. ३

(३१) उन्होंसे वाचना लेवे. ३

(३२–३३) एवं उसन्नावोंको वाचना देवे, लेवे

(३४-३५) एवं कुशीलीयोंके दो सूत्र.

(३६–३७) एव दो सूत्र, नित्यपिंड भोगवनेवालोंका तथा नित्य एक स्थान निवास करनेवालोंका, उसे वाचना देवे—लेवे.

(३८- ३९) एवं संसक्ताको वाचना देवे तथा लेवे.

भावार्थ—पासत्थावोंको वाचना देनेसे उन्होंके साथ परिचय वढे, उन्होंका कुछ असर, अपने शिष्य समुदायमें भी हो तथा लोक व्यवहार अशुद्ध होनेसे शका होगाकि- इस दोनों मंडलका आचार--व्यवहार सदृश होगा. तथा पासत्थावोंसे वाचना लेनेमें वहही दोष है. और उसका विनय, भक्ति, वन्दन, नमस्कार भी करना पडे. इत्यादि, वास्ते ऐसा हीनाचारी पासत्थावोंके पास, न तो वाचना लेना, और न ऐसेको वाचना देना

उपर लिखे ३९ बोलोसे एक भी बोल कोइ साधु साध्वी सेवन करेगा, उसको लघु चातुर्मासिक प्रायश्चित्त होगा. प्रायश्चित्त विधि देखो वीसवा उद्देशामें.

इति श्री निशिथसूत्र—उन्नीसवा उद्देशाका संक्षिप्तसार.

—✼—

(२०) श्री निशिथसूत्र–वीसवा उद्देशा.

(१) 'जो कोइ साधु साध्वी' एक मासिक प्रायश्चित्त स्थानक (पहला उद्देशासे पांचवा उद्देशातकके बोल) सेवन कर माया

ना करी, उसे बहुतवार मासिक कहते है. अगर मायारहित नि-ष्कपट भावसे आलोचना करी हो, तो उसे मासिक प्रायश्चित्त देवे.

(१२) मायासंयुक्त आलोचना करनेसे दोमासिक प्रायश्चित्त होता है. भावना पूर्ववत्.

' (१३) एवं बहुतसे दोमासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर-नेसे मायारहितवालोंको दोमासिक आलोचना.

(१४) मायासहितको तीन मासिक आलोचना. यावत् बहु-तसे पांच मासिक, मायारहित आलोंचनासे पांच मास, मायास-हित आलोचना करनेसे छे मासका प्रायश्चित्त होता है. सूत्र २० हुवे. भावना प्रथम सूत्रकी माफिक समझना.

(२१) ,, मासिक, दो मासिक, तीन मासिक, च्यार मा-सिक, पांच मासिक, और भी किसी प्रकारके प्रायश्चित्त स्थानोंको सेवन कर मायारहित आलोचना करनेसे मूल सेवा हो, उतनाही प्रायश्चित्त होता है. जैसे एक मासिक यावत् पांच मासिक.

(२२) अगर माया-कपटसे संयुक्त आलोचना करे, उसे मूल प्रायश्चित्तसे एक मास अधिक प्रायश्चित्त होता है. यावत् माया-रहित हो, चाहे मायासहित हो, परन्तु छे माससे अधिक प्राय-श्चित्त नहीं है. अधिक प्रायश्चित्त हो, तो पहलेकी दीक्षा छेदके नवी दीक्षाका प्रायश्चित्त होता है. एवं दो सूत्र बहुवचनापेक्षा भी समझना. २३-२४ सूत्र हुवे.

(२५) ,, च्यार मासिक, साधिक चातुर्मासिक, पंच मा-सिक, साधिक पंच मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर मायार-हित आलोचना करे, उसे मूल प्रायश्चित्त देवे.

(२६) मायासंयुक्त आलोचना करनेसे पांच मास, साधिक

—अपने कल्याणके लीये विशुद्ध भावसे आलोचना करना, और आचार्य पास आके विशुद्ध भावसे ही आलोचना करी.

(२) आलोचना विशुद्ध भावसे करनेका विचार कीयाथा, फिर अधिक प्रायश्चित्त आनेसे, मान, पुजाकी हानिके ख्यालसे मायासंयुक्त आलोचना करे.

(३) पहले मायासंयुक्त आलोचना करनेका विचार कीया था, परन्तु मायाका फल संसारवृद्धिका हेतु जान निष्कपट भावसे आलोचना करे.

(४) भवाभिनन्दी-पहला विचार भी अशुद्ध और पीछेसे आलोचना भी कपटसंयुक्त करे कारण कर्मोंकी विचित्र गती है. यह आठ भांगा सर्व स्थान समझना. भव्यात्मा मुनि, अपने कीये हुवे कर्म (पापस्थान)को सम्यक् प्रकारसे समझके निर्मल चित्तसे आलोचना कर आचार्यादि शास्त्रापेक्षा प्रायश्चित्त देवे, उसे अपने आत्माकी शाखसे तपश्चर्या कर प्रायश्चित्तको पूर्ण करे.

(३०) एवं वहुवचनापेक्षा भी समझना

(३१) „ चतुर्मासिक, साधिक चतुर्मासिक, पंच मासिक साधिक पंचमासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर पूर्वोक्त आठ भांगोंसे आलोचना करे, उस मुनिको यथावत् प्रायश्चित्त तपमें स्थापन करे, उस तपमें वर्त्तते हुवेको अन्य दोष लग जावे, तो उसकी आलोचना दे उसी चल्लु तपमें वृद्धि कर देना अगर तप करते समय वह साधु असमर्थ हो तो अन्य साधु, उन्होंके वैयावच में सहायता निमित्त रखे, उसे तप पूर्ण कराना आचार्यका कर्तव्य है.

(३२) एवं वहुवचनापेक्षा भी समझना

(३५ एवं चातुर्मासिक.

(३६) एवं तीन मासिक

(३७) एवं दोय मासिक.

(३८) एक मासिक. भावना पूर्ववत् समझना.

(३९) जो मुनि छे मासी यावत् एक मासी तप करते हुवे अन्तरामें दो मासी प्रोयश्चित्त स्थान सेवन कर मायासयुक्त आलोचना करी, जिससे दोय मास, वीश अहोरात्रिका प्रायश्चित्त, आचार्यने दीया, उस तपको पहलेके तपके अन्तमें प्रारंभ कीया है उस तपमें वर्त्तते हुवे मुनिको और भी दोय मासिक प्रायश्चित्त स्थानका दोष लगजावे, उसे आचार्य पास आलोचना मायारहित करना चाहिये. तब आचार्य उसे वीश दिनका तप, उसे पूर्व तपश्चर्याके साथ वढा देवे. और उसका कारण, हेतु, अर्थ आदि पूर्वोक्त माफिक समझावे. मूल तपके सिवाय तीन मास दश दिन का तप हुवा.

(४०) ,, तीन मास दश रात्रिका तप करते अंतरे और भी दो मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन कर आलोचना करनेसे वीश रात्रिका तप प्रायश्चित्त देनेसे च्यार मासका तप करे भावना पूर्ववत्.

(४१) ,, च्यार मासका तप करते अन्तरेमें दोमासी प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे पूर्ववत् वीश रात्रिका प्रायश्चित्त पूर्व तपमें मिला देवे, तब च्यार मास वीश रात्रि होती है.

(४२) ,, च्यार मास वीश रात्रिका तप करते अंतरे दो मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे और वीश रात्रि तप उसके साथ मिला देनेसे, पांच मास दश रात्रि होती है.

(५२) ,, अढाइ मासवालाको मासिक प्रा० स्थान सेवन करनेसे पन्दरा दिनका तप देके पूर्वके साथ मिलाके तीन मास कर दे.

(५३) ,, एवं तीन मासवालाके साढा तीन मास.

(५४) साढा तीन मासवालाके च्यार मास.

(५५) च्यार मासवालाके साढा च्यार मास.

(५६) साढे च्यार मासवालाके पांच मास.

(५७) पांच मास वालाके साढा पांच मास.

(५८) साढा पांच मास वालाके छे मास. भावना पूर्ववत् समझना.

(५९) ,, दो मासिक प्रायश्चित्त तप करते अन्तरे एक मासिक प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे पन्दरादिनकी आलोचना दे के पूर्व दो मासके साथ मिला देनेसे अढाइ मास.

(६०) अढाइ मासका तप करते अन्तरे दो मास प्रायश्चित्त स्थान सेवन करनेसे वीश रात्रिका तप दे के पूर्व अढाइ मास साथ मिलानेसे तीन मास और पांच दिन होता है.

(६१) तीन मास पांच दिनका तप करते अंतरे एक मासिक प्रा० स्थान सेवन करनेसे पन्दरा दिनोंका तप, उस तीन मास पांच रात्रिके साथ मिलानेसे तीन मास वीश अहोरात्रि होती है.

(६२) तीन मास वीश अहोरात्रिका तप करते अन्तरेमें दो मासिक प्रा० स्थान सेवन करने वालेको वीश अहोरात्रिकी आलोचना देके पूर्वका तपके साथ मिला देनेसे ३-२०-२० च्यार मास दश दिन होते है.

(१) अतिशय ज्ञानी (केवली आदि) जो भूत, भविष्य, वर्तमान—त्रिकालदर्शी हो, उन्होंके पास निष्कपट भावसे आलोचना करते समय अगर कोइ प्रायश्चित्त स्थान, विस्मृतिसे आलोचना करना रह गया हो, उसे वह ज्ञानी कह देवे कि—हे भद्र! अमुक दोपकी तुमने आलोचना नहीं करी है. अगर कोइ माया—कपट कर किसी स्थानकी आलोचना नहीं करी हो, तो उसे वह ज्ञानी आलोचना न देवे, और किसी छद्मस्थ आचार्यके पास आलोचना करनेका कह देवे.

(२) छद्मस्थ आचार्य आलोचना सुननेवाले कितने गुणोंके धारक होते है ? यथा—

(१) पंचाचारको अखंड पालनेवाला हो, सत्तरा प्रकारसे संयम, पांच समिति, तीन गुप्ति, दश प्रकारका यतिधर्मके धारक, गीतार्थ, वहुश्रुत, दीर्घदर्शी-इत्यादि कारण-आप निर्दोष हो, वहही दुसरोंको निर्दोष वना सके, उसकाही प्रभाव दुसरे पर पड सके.

(२) धारणावन्त—द्रव्य, क्षेत्र, काल भावके जानकार, गुरुकुल वासको सेवन कर अनेक प्रकारसे धारणा करी हो, स्याद्वादका रहस्य, गुरुगमतासे धारण कीया हो.

(३) पांच व्यवहारका जानकार हो—आगमव्यवहार, सूत्र व्यवहार, आज्ञा व्यवहार, धारणा व्यवहार, जीत व्यवहार (देखो व्यवहार सूत्र उद्देशा १० वां) किस समय किस व्यवहारसे काम लीया जावे, या-प्रवृत्ति की जावे उसका जानकार अवश्य होना चाहिये.

(४) कितनेक ऐसे जीव भी होते है कि—लज्जाके मारे शुद्ध आलोचना नहीं कर सके; परन्तु आलोचना सुनने वालोंमे

उपर लिखे दश गुणोंको धारण करनेवाले आलोचना सु-नने योग्य होते हैं. वह प्रथम आलोचना सुने, दुसरी वखत और कहे—हे वत्स ! मैं पहला ठीक तरहसे नहीं सुनी, [1]अब दुसरी दफे सुनावे तब दुसरी दफे सुने. जब कुछ संशय हो तो, कहेकि-हे,भद्र ! मुझे कुछ प्रमाद आ रहाथा, वास्ते तीसरी दफे और सुनावें, तीन दफे सुननेसे एक सदृश हो, तो उसे निष्कपट शुद्ध आलोचना समझे. अगर तीन दफेमें कुछ फारफेर हो, तो उसे माया संयुक्त आलोचना समझना. (व्यवहारसूत्र)

मुनि अपने चारित्रमें दोष किसवास्ते लगाते है ? चारित्र मोहनीयकर्मका प्रबल उदय होनेसे जीव अपने व्रतमें दोष लगाते है यथा—

(१) 'कन्दर्पसे'—मोहनीय कर्मके उदयसे उन्माददशा प्राप्त हो, हास्यविनोद, विषय विकार—आदि अनेक कारणोंसे दोष लगाते है.

(२) 'प्रमाद' मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा—इस पांच कारणोंसे प्रेरित मुनि दोष लगाते है. जैसे पूंजन, प्रति-लेखन, पिंड विशुद्धिमें प्रमाद करे.

(३) 'अज्ञात' अज्ञानतासे तथा अनुपयोगसे, हलन, च-लनादि अयतना करनेसे—

(४) 'आतुरता' हरेक कार्य आतुरतासे करनेमें संयमव्र-तोंको बाधा पहुचती है,

(५) 'आपत्तदशा' शरीरव्याधि, तथा अरण्यादिमें आपदा आनेसे दोष लगावे.

---

1 शिष्यकी परिक्षा निमित्तदोष लगता है देखो उत्पातीकसूत्र

(५) सूक्ष्म दोषोंकी आलोचना करे, परन्तु स्थूल दोषोंको आलोचना न करे.

(६) बडे जोर जोरसे शब्द करते आलोचना करे. जिससे बहुत लोक सुने, एकत्र हो जावे.

(७) बिलकुल धीमे स्वरसे बोले. जिसमें आलोचना सुननेवालोंको भी पुरा शब्द सुनाया जाय नहीं.

(८) एक प्रायश्चित्त स्थान, बहुतसे गीतार्थोंके पास आलोचना करे. इरादा यहकि—कोनसा गीतार्थ, कितना कितना प्रायश्चित्त देता है.

(९) प्रायश्चित्त देनेमें अज्ञात (आचारांग, निशिथका अज्ञात) के समीप आलोचना करे. कारण यह क्या प्रायश्चित्त दे सके ?

(१०) स्वयं आलोचना करनेवाला खुद ही उस प्रायश्चित्त को सेवन कीया हो, उसके पास आलोचना करे. कारण—खुद प्रायश्चित्त कर दोषित है, वह दुसरोंको क्या शुद्ध कर सकेंगा ? उन्हसे सच बात कबी कही न जायगी.

(स्थानांगसूत्र.)

आलोचना कोन करता है ? जिसके चारित्र मोहनीय कर्मका क्षयोपशम हुवा हो, भवान्तरमें आराधक पदकी अभिलाषा रखता हो, वह भव्यात्मा आलोचना कर अपनी आत्माको पवित्र बना सके. यथा—

(१) जातिवान्.

(२) कुलवान्. इस वास्ते शास्त्रकारोंने दीक्षा देते समय ही प्रथम जाति, कुल, उत्तम होनेकी आवश्यकता बतलाइ है.

(१० प्रायश्चित्त ग्रहन कर, पश्चात्ताप न करे, वह आलोचना करनेके योग्य होते है.

(स्थानांगसूत्र.)

प्रायश्चित्त कितने प्रकारके है ? प्रायश्चित्त दश प्रकारके है. कारण—एक ही दोषको सेवन करनेवालोंको अभिप्राय अलग अलग होते है, तदनुसार उसे प्रायश्चित्त भी भिन्न भिन्न होना चाहिये. यथा—

(१) आलोचना—एक ऐसा अशक्त परिहार दोष होता है कि-जिसको गुरु सन्मुख आलोचना करनेसे ही पापसे निवृत्ति हो जाती है.

(२) प्रतिक्रमण—आलोचना श्रवण कर गुरु महाराज कहे कि-आज तो तुमने यह कार्य कीया है, किन्तु आइंदासे ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये. इसपर शिष्य कहे-तहत्त-अब मैं ऐसा कार्यसे निवृत्त होता हुं. अकृत्य कार्यसे पीछा हटता हुं.

(३) उभया—आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों करे. भावना पूर्ववत्.

(४) विवेग—आलोचना श्रवण कर ऐसा प्रायश्चित्त दीया जाय कि-दुसरी दफे ऐसा कार्य न करे. कुछ वस्तुका त्याग कराना तथा परिठन कार्य कराना

(५) कायोत्सर्ग—दश, वीश, लोगस्सका काउस्सग्ग तथा खमासणादि दिलाना.

(६) तप—मासिक तप यावत् छे मासिक तप, जो निशिथसूत्रके २० उद्देशोंमें बतलाया गया है.

(७) छेद—जो मूल दीक्षा लीथी, उसमे एक मास, यावत्

चाहे उठे, न उठे, आदर-सत्कार दे, न भी दे, वन्दन करे, न भी करे, खमावे, न भी खमावे, तो भी आराधिक पदके अभिलाषी मुनिको वहां जाके भी खमतखामणा करना. वृहत्कल्पसूत्र.)

आलोचना किसके पास करना ? अपना आचार्योपाध्याय, 'गीतार्थ, बहुश्रुत, उक्त दश (१०) गुणोंके धारकके पास आलोचना करना. अगर उन्होंका योग न हो तो उक्त १० गुणोंके धारक संभोगी साधुवोंके पास आलोचना करे. उन्होंका योग न हो तो अन्य संभोगी साधुवोंके पास आलोचना करे. उन्होंका योग न हो तो रुप साधु (रजोहरण, मुखवस्त्रिकाका ही धारक है) गीतार्थ होनेसे उसके पास भी आलोचना करना. उन्होंके अभावमे पच्छकाडा श्रावक (दीक्षासे गिरा हुवा, परन्तु है गीतार्थ), उन्होंके अभावमें सुविहित आचार्यसे प्रतिष्ठा करी हुइ जिनप्रतिमाके पास जाके शुद्ध हृदयसे आलोचना करे, उन्होंके अभावमें ग्राम यावत् राजधानीके वाहार, अर्थात् एकान्त जंगलमें जाके सिद्ध भगवानकी साक्षीसे आलोचना करे. (व्यवहारसूत्र.)

मुनि, गौचरी आदि गये हुवेको कोइ दोष लग जावे, वह साधु, निशिथसूत्रका जानकार होनेसे वहांपर ही प्रायश्चित्त ग्रहन कर लेवे, और आचार्यपर आधार रखे कि - मैं इतना प्रायश्चित्त लीया है, फिर आचार्य महाराज इसमें न्यूनाधिक करेंगा, वह मुझे प्रमाण हैं. ऐसा कर उपाश्रय आते वखत रहस्तेमें काल कर जावे तो वह मुनि आराधिक है,जिसका २४ भांगा है. भावार्थ— कोइ योग न हो तो स्वयं शास्त्राधारसे आलोचना कर प्रायश्चित्त ले लेनेसे भी आराधिक हो सक्ते है. (भगवतीसूत्र)

निशिथसूत्रके १९ उद्देशाओंमे च्यार प्रकारके प्रायश्चित्त वतलाये है.

देश निमित्त ? इत्यादि कारणोंसे दोष सेवन कर आलोचना क्या माया संयुक्त है ? माया रहित है ? लोक देखावु है ? अन्तःकरणसे है ? इत्यादि सबका विचार, आलोचना श्रवण करते वख्त करके यथा प्रायश्चित्तके योग्य हो, उसे इतनाही प्रायश्चित्त देना चाहिये प्रायश्चित्त देते समय उसका कारण हेतु, अर्थ भी समझा देनां जैसे कहेकि—हे शिष्य ! इस कारणसे, इस हेतुसे, इस आगमके प्रमाणसे तुमको यह प्रायश्चित्त दीया जाता है.

(व्यवहारसूत्र.)

अगर प्रायश्चित्त देनेवाला आचार्य आदि राग द्वेषके वश हो, न्यूनाधिक प्रायश्चित्त देवे तो, देनेवाला भी प्रायश्चित्तका भागी होता है, और शिष्यको स्वीकार भी न करना चाहिये तथा शास्त्राधारसे जो प्रायश्चित्त देनेपर भी वह प्रायश्चित्तीया साधु, उसे स्वीकार न करे तो, उसे गच्छमें नहीं रखना चाहिये. कारण—एक अविनय करनेवालेको देख और भी अविनीत बनके गच्छमर्यादाका लोप करता जावेंगा. (व्यवहारसूत्र.)

शरीरबल, संहनन, मनकी मजबुती—आदि अच्छा होनेसे पहले जमानेमें मासिक तपके ३० उपवास, चातुर्मासिकके १२० उपवास, छे मासीके १८० उपवास दीये जाते थे, आज बल, संहनन, मजबुती इतनी नहीं है वास्ते उसके बदल प्रायश्चित्त दाताओंने ' जीतकल्प ' सूत्रका अभ्यास करना चाहिये, गुरुगमतासे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका जानकार होना चाहिये. तांके सर्व साधु साध्वीयोंका निर्वाह करते हुवे, शासनका धोरी बनके शासन चलावे. (जीतकल्पसूत्र)

निशिथसूत्रके लेखक—धर्मधुरंधर, पुरुष प्रधान प्रबल प्रत

मुनिश्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज साहबके सदुपदेशसे श्री रत्नप्रभाकरज्ञान पुष्पमाला ऑफीस फलोधीसे आजतक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हुइ है.

संख्या	पुस्तकोंका नाम.	आवृत्ति	कुल संख्या.
(१)	श्री प्रतिमा छत्तीसी	४	२००००
(२)	,, गयवर विलास	२	२०००
(३)	,, दान छत्तीसी	३	४०००
(४)	,, अनुकम्पा छत्तीसी	३	४०००
(५)	,, प्रश्नमाल	३	३०००
(६)	,, स्तवन संग्रह भाग १	५	५०००
(७)	,, पैंतीस बोलोंको थोकडो	१	१०००
(८)	,, दादासाहबकी पूजा	१	२०००
(९)	,, चर्चाका पब्लिक नोटीस	१	१०००
(१०)	,, देवगुरु वन्दनमाला	२	६०००
(११)	,, स्तवन संग्रह भाग २	३	३०००
(१२)	,, लिंग निर्णय बहुत्तरी	३	३०००
(१३)	,, स्तवन संग्रह भाग ३	३	४०००
(१४)	,, सिद्धप्रतिमा मुक्तावली	१	१०००
(१५)	,, बत्तीससूत्र दर्पण	१	५००
(१६)	,, जैन नियमावली	२	२०००
(१७)	,, चौरासी आशातना	२	२०००
(१८)	,, डंकेपर चोट	१	५००
(१९)	,, आगम निर्णय	१	१०००
(२०)	,, चैत्यवंदनादि	२	२०००